मैंने डा. बेनी बहादुर सिंह के शोध प्रबन्ध "सूरसागर में अप्रस्तुत योजना" का अवलोकन किया। यह शोध प्रबन्ध बड़ा ही रोचक एवं महत्वपूर्ण है। वास्तव में अप्रस्तुत कवि की कसौटी है। अप्रस्तुतों के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व और परिवेश का अध्ययन इस ग्रन्थ की अपनी मौलिकता है। प्रस्तुत में तो कवि सजग रहता है, किन्तु अप्रस्तुत अचेतन मन की उपज है— अतः सूचना की दृष्टि से अप्रस्तुतों का अपने में विशिष्ट महत्व है। प्रस्तुत ग्रन्थ मध्यकालीन कवियों की और उनके कवि कर्म को समझने की कुंजी है। ऐसे गवेषणात्मक एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रणयन हेतु डा. सिंह बधाई के पात्र हैं। आशा है साहित्य प्रेमियों द्वारा इस ग्रन्थ का स्वागत किया जायगा तथा डा. सिंह भविष्य में भी इसी प्रकार मौलिक साहित्य सृजन में रत रहेंगे।

(वासुदेव सिंह)

सूरसागर
में
अप्रस्तुतयोजना

लेखक
डॉ० बेनी बहादुर सिंह
एम० ए०, डी० फिल्०
हंडिया डिग्री कालेज
हंडिया, इलाहाबाद

नीरज प्रकाशन

इलाहाबाद डी० फिल्०

उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

सूरसागर में अप्रस्तुतयोजना

प्रकाशक	डी० के० अग्रवाल नीरज प्रकाशन २१, विवेकानन्द, मार्ग इलाहाबाद
कापीराइट	लेखक
मूल्य	६०·०० (साठ रुपये मात्र)
संस्करण	प्रथम (१९८४)
मुद्रक	चन्दन प्रेस नई बस्ती, कीटगंज इलाहाबाद

प्राक्कथन

मुझे प्रसन्नता है कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिए स्वीकृत डॉ० बेनी बहादुर सिंह का शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है। सूरसागर का अध्ययन करते समय मैंने अनुभव किया था कि सूरदास ने मानवीय जीवन के सूक्ष्म अनुभवों, मनोभावों और चित्तवृत्तियों का चित्रांकन करते हुए प्राकृतिक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के जितने विस्तृत और सूक्ष्म पक्षों का उपयोग किया है, उतना सम्भवतः किसी दूसरे कवि में नहीं मिलता। कवि के इस प्रकार के चित्रांकन को अवर्ण्य कहा जाता है क्योंकि अपने विषय को पाठक के अनुभव का विषय बना देने के लिए वह उपकरण का कार्य करता है। परन्तु यदि सूक्ष्म विचार से देखा जाय तो काव्य का यही पक्ष वास्तव में किसी कवि को महान् बनाता है। सूरसागर परिमाण में तो हिन्दी के किसी भी कवि की रचना से अधिक विशाल और वृहत् है ही, परन्तु इससे भी अधिक उसका विस्तार जीवन और जगत् के बहुविध और सूक्ष्म अनुभवों को शब्द चित्रों में मूर्तिमान कर देने में है। काव्य में जिसे अप्रस्तुत कहा जाता है उसी को प्रस्तुत करके अपने वर्ण्य को आत्मसात् करा देना कवि की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण होता है।

मेरे प्रिय विद्यार्थी बेनी बहादुर सिंह ने सूरसागर के इस पक्ष का उद्घाटन करने के लिए जब मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया तो मैं बड़ी आशा और उत्सुकता के साथ उनके कार्य का निरीक्षण और निर्देशन करता रहा, परन्तु संयोगवश जब मैं इलाहाबाद से बाहर चला गया तो मैं यदा-कदा ही उसे देख सका। मेरे इस प्रिय विषय का अवलोकन मेरे परम सुहृद (अब स्वर्गीय पं० उमाशंकर शुक्ल) ने मेरी भावना का आदर करते हुए बड़े मनोयोग से किया।

काव्य के अप्रस्तुत विधान के सम्बन्ध में काव्य शास्त्रीय अलंकार दृष्टि जहाँ एक ओर कवि के पाण्डित्य का उद्घाटन करती है वहाँ उसके जीवन और जगत् के अनुभवों और अनुभूतियों से पाठक की दृष्टि हटाकर संकुचित भी कर देती है, परन्तु परम्परा से अनिवार्य रूप से जुड़े रहने के कारण शोध प्रबन्धों में इस पक्ष को भी सम्मिलित किया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बेनी बहादुर सिंह जी ने इसका भी योग्यतापूर्ण निर्वाह किया है। सूरसागर का यह अलंकार पक्ष भी असाधारण रूप में परिपुष्ट है, परन्तु मेरा प्रस्ताव है कि सूरसागर के उस विशाल और अनेक अर्थों में विराट पक्ष पर अधिक ध्यान देना चाहिए, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह कवि अपने भीतर संसार का कितना विस्तार समेटे हुए था।

और उस विस्तार में से विषय के अनुरूप चयन करने की और शब्दबिम्बों में रूपायित कर देने की उसमें कैसी योग्यता थी। सूरसागर के विविध और संख्यातीत शब्दबिम्बों में कैसा विस्तार और वैविध्य है—इसे देखने और परखने का जिन्हें अवकाश हो क्या वे क्षण भर के लिए भी सोच सकते हैं कि सूरदास समाज, सामाजिक जीवन और व्यक्ति के मनुष्य और प्रकृति के साथ अनेकानेक सम्बन्धों से विमुख थे और क्या वे आत्मलीन कवि थे ?

मुझे प्रसन्नता है कि सूरदास के सम्बन्ध में यह और इसी से जुड़ी हुई भ्रांतियाँ अब मिटती जा रही हैं। डा० बेनी बहादुर सिंह का यह शोध प्रबन्ध निश्चय ही ऐसी भ्रान्तियों को मिटाने में सहायता करेगा।

मुझे विश्वास है कि 'सूरसागर में अप्रस्तुत योजना' सूरदास के पाठकों को नई दृष्टि देगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि डॉ० बेनी बहादुर सिंह इससे भी अधिक लगन और अध्यवसाय के साथ शोध और समालोचना की मौलिक दिशाओं की ओर उन्मुख रहेंगे।

(व्रजेश्वर वर्मा)

अपनी बात

सन् १९६२ में एम० ए० करने के पश्चात् मेरे भीतर भी शोधकार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। मुझे डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा के सुयोग्य निर्देशन में 'सूरसागर में अप्रस्तुतयोजना विषय पर शोध कार्य मिला। अप्रस्तुत योजना की अवधारणा से पूर्व सूरसागर को भली भाँति समझना था। सूरसागर को समझने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

सूरसागर एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसकी टीका लिखने का प्रयास आज तक किसी ने नहीं किया। इसके दो कारण हैं— विशालता और क्लिष्टता। 'भ्रमरगीत सार' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरसागर के कुछ पदों के क्लिष्ट शब्दों का अर्थ दिया है। इसी प्रकार 'सूर पंचरत्न' में लाला भगवानदीन ने भी कुछ क्लिष्ट शब्दों का अर्थ टिप्पणी में दिया है। भ्रमरगीत—प्रसंग की कुछ टीकाएं भी इधर निकली हैं। सूरसागर की टीका के क्षेत्र में गीता प्रेस, गोरखपुर का भी योगदान सराहनीय है। उनकी यह योजना थी कि सम्पूर्ण सूरसागर के चुने हुए पदों के संग्रह भावार्थ सहित प्रकाशित किए जायं। फलतः 'सूर-विनय-पत्रिका' में विनय के, 'सूर-राम-चरितावली' में किशोर लीला के तथा 'अनुराग पदावली' में अनुराग सम्बन्धी कुछ पदों के संग्रह प्रकाशित किए गए इन संग्रहों के टीकाकार श्री सुदर्शन सिंह हैं। ये भी पांच भाग अभी तक प्रकाशित हुए हैं।

यद्यपि इन संग्रहों में सूरसागर के अनेक पदों को समाहित किया गया है, तथापि टीका की दृष्टि से संग्रहों का विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि एक तो कुछ क्लिष्ट पदों को इन संग्रहों में समाहित नहीं किया गया है, दूसरे कुछ स्थलों के अर्थ में विद्वान् अनुवादक चूक-सा गया है।

डॉ० हरदेव बाहरी ने इधर सूरसागर की एक टीका लिखी, किन्तु उसमें भी अनेक स्थलों पर सही अर्थ नहीं दिया गया है। इस प्रकार पूरे सूरसागर की किसी प्रामाणिक टीका के अभाव में सूर के अध्येताओं को बड़ी ही कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अर्थ-ग्रहण में कठिनाई अप्रस्तुत योजना के कारण ही होती है। इस शोधप्रबन्ध में सूरसागर के अप्रस्तुतों का विवेचन एवं विश्लेषण हुआ है। अतः इससे सूर-प्रेमियों की अर्थ सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों का समाधान निश्चित ही हो जायगा।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की मौलिकता मुख्यरूप से चौथे और पांचवें अध्याय मे अप्रस्तुत-प्रयोग के आधार पर किए गए सूरदास के व्यक्तित्व और उनके समाज के अध्ययन में है। किसी कवि द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों का सांगोंपाग अध्ययन हिन्दी साहित्य में आज तक नहीं किया गया है। अप्रस्तुतों का काव्य-शास्त्रीय अध्ययन तो प्रायः सभी कवियों का अनेक विद्वानों ने किया है, किन्तु अप्रस्तुत-विचार-सम्भावना के अन्तर्गत मात्र काव्यशास्त्रीय अध्ययन ही नहीं आता, अपितु प्रयोक्ता के व्यक्तित्व, प्रयोक्ता के परिवेश तथा सौन्दर्य-बोध का भी अध्ययन सम्भव है। ये अप्रस्तुत कवि के हृदय से अनायास निकलते हैं। अतः इनके आधार पर किया गया कवि के व्यक्तित्व और परिवेश का अध्ययन निश्चित ही अधिक प्रामाणिक होगा, किन्तु हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के अध्ययन का आज तक अभाव-सा है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए प्रस्तुत शोध-विषय चुना गया।

सूरसागर के अप्रस्तुतों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध 'सूरदास के और वर्णन-वैचित्र्य' अध्याय

मे सूर द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतो का शास्त्रीय विवेचन किया है । एक ही अध्याय मे सूर के समस्त मार्मिक अप्रस्तुतों की झांकी दे दी गई है, किन्तु अप्रस्तुत-विचार की अन्य सम्भावनाओं पर विचार नहीं किया गया है । डा० मनमोहन गौतम का शोधप्रबन्ध 'सूर की काव्यकला' सूर के कलापक्ष से ही सम्बद्ध है और इसमें भी सूरदास द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों का आलंकारिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, किन्तु अन्य सम्भावनाओं की ओर यहाँ भी ध्यान नहीं दिया गया है । इसी प्रकार डा० ओमप्रकाश के शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य' में भी सूर के अप्रस्तुतों का सौन्दर्य-विश्लेषण हुआ है । सूरदास से सम्बद्ध कुछ अन्य शोध-प्रबन्धों में भी सूर द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन किया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के अप्रस्तुतों का शास्त्रीय अध्ययन तो पर्याप्त मात्रा मे हुआ है, किन्तु अप्रस्तुत विचार की अन्य सम्भावनाओं का क्षेत्र आज तक अछूता है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इस दिशा में पहला कदम है ।

इस शोध-प्रबन्ध की अपनी एक सीमा है । अप्रस्तुत विचार की सम्भावनाएँ अनेक हो सकती है, किन्तु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में प्रयोक्ता के व्यक्तित्व, सौन्दर्य-बोध, परिवेश और काव्य के अलंकरण का ही अध्ययन किया गया है । दूसरी सीमा अप्रस्तुतों की व्यापकता से सम्बद्ध है । अप्रस्तुतयोजना का क्षेत्र बड़ा विशाल है । समस्त कलात्मक अभिव्यंजनायें इसी के अन्तर्गत आती हैं । सारे अर्थालंकार, सूक्ष्म अलंकार, शब्दशक्तियाँ, कहावतें, मुहावरे, मानवीकरण, शकुन विचार आदि अप्रस्तुत योजना के ही पेट के जीव-जन्तु हैं, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में मात्र उपमान रूप में प्रयुक्त अप्रस्तुतों को ही ग्रहण किया गया है । जो लोकोक्तियाँ और मुहावरे उपमा के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, उन्हें भी अध्ययन सीमा में समाहित कर लिया गया है । शेष मुहावरों, कहावतों, शकुन-विचारों और सूक्ष्म अलंकारों की सूची मात्र परिशिष्ट में दे दी गई है ।

इस शोध-प्रबन्ध का महत्व इस बात में है कि यह अप्रस्तुत विचार की अनन्त सम्भावनाओं का मुखद्वार है । इसकी प्रेरणा से विद्वज्जन अप्रस्तुत विचार की कुछ अन्य मौलिक सम्भावनाओं का चिन्तन-मनन और अध्ययन करेंगे । दूसरी बात यह है कि यह शोध-प्रबन्ध अन्य कवियों की अप्रस्तुतयोजनाओं के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त करेगा । इसी प्रकार का अध्ययन हिन्दी साहित्य के अन्य कवियो की अप्रस्तुतयोजनाओं का भी किया जा सकेगा । इस शोध-प्रबन्ध का तीसरा महत्व इस बात में है कि इससे सूर-प्रेमियों के लिए अर्थबोध सुगम हो जायगा तथा सूर के काव्य सौन्दर्य का रसास्वादन सरल हो जायगा ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का आधार नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित सूरसागर का संवत् २००९ विक्रमी का द्वितीय संस्करण है । इस शोध-प्रबन्ध में सर्वत्र सूरसागर की पूर्ण संख्या ही उद्धत की गई है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई है, जिनसे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ, किन्तु परिस्थितिवश उन्हें दूर करने में असमर्थ हूँ । शोध-प्रबन्ध का विषय शास्त्रीय और गम्भीर है अतः भाषा का रूप सरलतम बनाने का मैंने भरसक प्रयास किया है । यह कहने में मुझे कोई भी संकोच नहीं है कि शोध-प्रबन्ध का विषय बड़ा ही रुचिकर है । अप्रस्तुतों द्वारा प्रयोक्ता के व्यक्तित्व और परिवेश का अध्ययन बड़ा ही कुतूहलवर्द्धक और जिज्ञासापूर्ण है ।

(हंडिया मार्च १९८४ ई०) (बेनीबहादुर सिंह)

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १

सूरसागर और अप्रस्तुतयोजना

(१) सूरसागर का संक्षिप्त परिचय :

सूरसागर सूरदास की अमर कृति है और हिन्दी साहित्य का अनमोल रत्न। सूर के मानस-रत्नों के इस सागर में विविध कृष्ण-लीलाओं की तरंगें उठ रही है, भ्रमरगीत का मोती उसके अन्तराल में समाहित है और अलंकार, लक्षणा, व्यंजना, मुहावरा, कहावत, प्रतीक, मानवीकरण आदि के जीव-जन्तु उसमें उत्था लगा रहे हैं। पाठक बुद्धि की नौका पर सवार होकर, इस सागर को मापने का, अन्तराल में पहुँचने का और जीव-जन्तुओं से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करता है, किन्तु उसकी दशा होती है—'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै'।

सूर के इस सागर का साँचा तो श्रीमद्भागवत् का है, किन्तु इसमें जो द्रव भरा है, वह भागवत से नितान्त भिन्न है। विषय की दृष्टि से सूरसागर के तीन वर्ग किए जा सकते हैं— विनय, भागवत के आधार पर पौराणिक कथाओं का वर्णन और कृष्ण लीला। सूरसागर बारह स्कन्धों में लिखा गया है। स्कन्ध-क्रम में कथावस्तु का परिचय इस प्रकार है—

प्रथम स्कन्ध :

इसका मुख्य विषय 'विनय' है। विनय के पदों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के निर्माण का प्रयोजन, शुकदेव-उत्पत्ति, व्यास-अवतार, महाभारत की कथा का संक्षिप्त परिचय, सूत-शौनक-संवाद, भीष्म की प्रतिज्ञा और देह त्याग, श्रीकृष्ण-द्वारिका-गमन, युधिष्ठिर का वैराग्य, पाँडवों का हिमालय-गमन, परीक्षित-जन्म, कलियुग को दंड देना आदि प्रसंगों का वर्णन इस स्कन्ध में हुआ है।

द्वितीय स्कन्ध :

इस स्कन्ध के प्रारम्भ में भक्ति-महिमा, नाम-महिमा, सत्संग-महिमा तथा आत्मज्ञान का वर्णन है, तत्पश्चात् सृष्टि की उत्पत्ति, विराट् रूप, चौबीस अवतार, ब्रह्मा की उत्पत्ति और चार श्लोक का वर्णन है।

तृतीय स्कन्ध :

इसमें मैत्रेय-विदुर संवाद, विदुर जन्म, सनकादिक अवतार, रुद्र उत्पत्ति, देवासुर जन्म, वाराह-अवतार, जय-विजय की कथा, कपिलदेव अवतार, देवहूति कपिल संवाद, भक्ति महिमा, भगवान् का ध्यान आदि प्रसंगों का वर्णन है।

चतुर्थ स्कन्ध :

यज्ञपुरुष-अवतार, पार्वती-विवाह, ध्रुवकथा, पृथु-अवतार और पुरंजन कथा का वर्णन इस स्कन्ध में हुआ है।

पंचम स्कन्ध :

इसमें ऋषभदेव-अवतार, जड़भरत-कथा तथा जड़भरत-रहूगण संवाद का वर्णन है।

षष्ठ स्कन्ध :

परीक्षित-शुक-प्रश्नोत्तर, अजामिल-उद्धार, नहुष की कथा तथा अहिल्या की कथा का वर्णन इस स्कन्ध के अन्तर्गत हुआ है।

सप्तम स्कन्ध :

इसमें नृसिंह-अवतार, भगवान द्वारा शिव को सहायता और नारद-उत्पत्ति का चित्रण है।

अष्टम स्कन्ध :

गजमोचन,कूर्मावतार, सुन्द-उपसुन्द-बध, वामन-अवतार और मत्स्य-अवतार का वर्णन इसमें हुआ है।

नवम स्कन्ध :

इसमें राजा पुरुरवा और उर्वशी का आख्यान, च्यवन ऋषि-कथा, हलधर-विवाह, राजा अम्बरीष तथा सौभरि ऋषि की कथा, गंगावतरण, परशुराम-अवतार तथा रामावतार का वर्णन हुआ है।

दशम स्कन्ध :

यह दो भागों में विभाजित है— (१) पूर्वार्द्ध तथा (२) उत्तरार्द्ध।

पूर्वार्द्ध :

सूर की प्रतिभा और कवित्व, रमणीयता और कला, विनय और भक्ति, भावुकता और भव्यता तथा व्यंग्य और विदग्धता सब का आधार यही दशम स्कन्ध

पूर्वार्द्ध है। इसमें भगवान् कृष्ण की जन्म लीला, पूतना-शकटासुर-तृणावर्त्त का व नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेदन, घुटनों के बल चलना, बाल-वेश, चन्द्र-प्रस्ता कलेवा, माटी खाना, माखन चोरी, उलूखल- बन्धन और यमलार्जुन-उद्धार, गोदोह वत्स-बक-अघासुर-बध, कालिय-दमन, दावानल-पान, राधा-कृष्ण प्रथम-मिलन, परस्प एक-दूसरे के घर जाना, गोचारण, मुरली, चीरहरण, गोवर्द्धन-धारण, वरुण-मोचन रासलीला, वृन्दावन-विहार, मुरली-गोपी संवाद, वृषभासुर, व्योमासुर, केशी का ब पनघट, दान-लीला, ग्रीष्मलीला, अक्रूर-आगमन, कृष्ण का मथुरागमन, रजक, कुवलय हस्ती-वध, मल्लयुद्ध, वसुदेव, व्रजदशा, गोपी-विरह, चन्द्रोपालम्भ, स्याम रंग पर त भ्रमरगीत आदि प्रसंगों का वर्णन हुआ है।

उत्तरार्द्ध :

इसमें कालयवन-दहन, द्वारिका-प्रवेश, रुक्मिणी-विवाह, प्रद्युम्न-जन्म, पचप रानी-विवाह, प्रद्युम्न-विवाह, अनिरुद्ध-उषा-विवाह, नृगराज-उद्धार, बलराम का ब्रज आगमन, साम्ब-बिवाह, जरासंध-बध, सुदामा-चरित्र, कुरुक्षेत्र-आगमन, वेद, नार स्तुति, सुभद्रा-अर्जुन-विवाह, भस्मासुर-बध, भृगुपरीक्षा आदि विषयों का वर्ण हुआ है।

एकादश स्कन्ध :

इसमें नारायण-अवतार और हंस-अवतार का वर्णन है।

द्वादश स्कन्ध :

इसमें बुद्ध-अवतार, कल्कि-अवतार तथा राजा परीक्षित और जन्मेजय कथा है।

सूरसागर के इस द्वादशस्कन्धीय क्रम तथा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता'[1] अ सूरदास के स्वयं के कथन[2] के अनुसार कुछ विद्वान् इस ग्रन्थ को भागवत का अनुव मानते रहे हैं, किन्तु उपर्युक्त बाह्य और आन्तरिक साक्ष्यों के होते हुए भी य

---

१. 'तब सूरदास जी को सम्पूर्ण भागवत स्फूर्तना भई, पाछे जो पद f सो भागवत प्रथम स्कन्ध तें द्वादश स्कन्ध पर्यन्त (ताई) किए।'

—चौरासी वैष्णवन की वार्ता, वार्ता-प्रसग—

२. श्रीमुख चारि स्लोक दए, ब्रह्मा कौं समुझाइ।
ब्रह्मा नारद-सों कहे, नारद व्यास सुनाइ॥
व्यास कहे सुकदेव सों द्वादश स्कन्ध बनाइ।
सूरदास सोई कहै, पद भाषा करि गाइ॥—पद २२५

भागवत और सूरसागर का तुलनात्मक विवेचन किया जाय तो दोनों में ऊपरी साम्य की अपेक्षा आन्तरिक भिन्नता अधिक है। भागवत का मुख्य विषय भगवान् विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है। भागवत के प्रथम दो स्कन्ध भूमिका स्वरूप हैं। तीसरे स्कन्ध से अवतारों का वर्णन होता है और आठवें स्कन्ध तक शूकर, ऋषभदेव, नृसिंह, बामन, मत्स्य आदि अवतारों का वर्णन हुआ है। नवें में राम और दसवें में कृष्णावतार का विस्तृत वर्णन है। ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धों में हंस तथा कल्कि अवतार का उल्लेख है। इस प्रकार भागवत तथा सूरसागर में अवतारों की सूची तथा क्रम में कोई बड़ा अन्तर नहीं है। पहला अन्तर अवतारों के महत्त्व के सम्बन्ध में है। भागवत में कृष्णावतार सर्वोपरि है, किन्तु अन्य अवतारों की भी उपेक्षा नहीं की गयी है, किन्तु सूर के लिए कृष्ण ही सब कुछ हैं। भागवत में ३३५ अध्यायों में से ९० अध्याय कृष्णावतार से सम्बन्धित हैं, किन्तु सूरसागर में ४९३६ पदों में से ४३०९ पदों में कृष्ण का वर्णन है। शेष केवल ६२७ पदों में अन्य २३ अवतारों की गणनामात्र कराई गई है। दशम स्कन्ध में पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध भागवत मे भी है। पूर्वार्द्ध में ४९ अध्याय और उत्तरार्द्ध में ४१ अध्याय हैं, जब कि सूरसागर में पूर्वार्द्ध में ४१६० और उत्तरार्द्ध में केवल १०९ पद हैं। तात्पर्य यह कि सूर का अभीष्ट मात्र ब्रजवासी कृष्ण का ही चित्रण है।

इस प्रकार सूरसागर का प्राण दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध ही है, किन्तु यह भी भागवत के दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध से भिन्न है। भागवत में पूतना, अघ, बक, प्रलम्ब आदि असुर-संहार की अलौकिक लीलाओं का विस्तृत वर्णन है, किन्तु सूर का मन इनके चित्रण में तनिक भी नहीं रमा है। उनका मन तो कृष्ण की वात्सल्य और प्रेम लीलाओं में ही रमता है। सूर के इन मनोहारी प्रसंगों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—वात्सल्य-लीला, राधा-कृष्ण-मिलन और गोपी-विरह या भ्रमरगीत। भागवत में इन विषयों का चित्रण या तो मिलता ही नहीं या अत्यन्त संक्षेप में। कृष्ण की बाललीला का चित्रण भागवत में केवल दो-तीन पृष्ठों में किया गया है, जब कि सूर ने बाललीला में अन्नप्राशन, वर्षगांठ, चांद के लिए मचलना, घुटनों के बल चलना आदि अनेक नये विषयों का समावेश किया है तथा मिट्टी खाना माखनचोरी आदि भागवत के प्रसंगो को मौलिक विस्तार देकर वात्सल्य को रस की कोटि तक पहुँचा दिया। भागवत में कृष्ण-गोपी-प्रेम का वर्णन तो है, किन्तु राधा का नाम भी नहीं आया है। सूरसागर में राधा-कृष्ण के प्रेम का आरम्भ और विकास अत्यन्त रमणीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उद्धव-सन्देश की कथा भी भागवत में अत्यन्त नीरस है, किन्तु सूर ने इसे रस से लबालब भर दिया है। प्रथम स्कन्ध के विनय सम्बन्धी पद भी सूरदास के अपने मौलिक पद हैं। दास भाव की

ये रचनाएं शायद वल्लभाचार्य के सम्पर्क में आने से पूर्व ही कवि ने की हो। अत-
"कथावस्तु के विवेचन से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी अर्थ में सूरसागर भागवत का अनुवाद नहीं कहा जा सकता और न सम्पूर्ण भागवत की यथातथ्य कथा कहना ही कवि का उद्देश्य जान पड़ता है[1]।"

सूरसागर का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय कृष्णलीला है। यह लीला कुछ स्फुट पदों द्वारा और कुछ प्रवाहिक पदों द्वारा निर्मित है। स्फुट पद कृष्ण के शैशव, बाल्य और किशोर काल की विभिन्न दिनचर्यायों से सम्बद्ध हैं। चन्द्र-प्रस्ताव, माखनचोरी, ग्रीष्मलीला, यमुना-विहार, अनुराग समय, आंख समय के पद, नैन समय के पद, फाग-होली तथा पूतना, शकटासुर, व्योमासुर, धेनुक, वृषभ, केशी, भौमासुर आदि के संहार सम्बन्धी पदों का रसास्वादन स्फुट पदों के रूप में किया जा सकता है। प्रवाहिक पदों के अन्तर्गत यमलार्जुन-उद्धार, राधा-कृष्ण प्रथम-मिलन, कालीदमन, चीरहरण, पनघट-प्रस्ताव, गोवर्द्धन-धारण, दानलीला, रासलीला, मानलीला, खण्डिता-समय, बसन्त-लीला, उद्धव-व्रज आगमन, भ्रमरगीत आदि प्रसंग हैं।

सूरसागर की कृष्णलीला दो धाराओं में विभाजित है—एक में कृष्ण के अलौकिक कार्यो का वर्णन है, जो पूतना-वध से प्रारम्भ होकर कंस-वध में समाप्त होती है। दूसरी धारा में कृष्ण के रंजक कार्यों का वर्णन है, जो राधा-कृष्ण प्रथम मिलन से प्रारम्भ होकर भ्रमरगीत में समाप्त होती है। यही दूसरी धारा सूरदास की प्रतिभा की सच्ची कसौटी है। कृष्ण की इन क्रीड़ाओं का विकास तीन दिशाओं में होता है—एक ओर नन्द-यशोदा तथा अन्य वृद्धों में कृष्ण के प्रति स्नेह-वृद्धि होती है, दूसरी ओर ग्वालबालो में प्रेमभाव बढ़ता है और तीसरी ओर गोपियों में रति भाव जाग्रत होता है। प्रेम के इन तीनों रूपों के चरम विकास के साथ जहां एक ओर सूर की परमभक्ति प्रदर्शित होती है, वही दूसरी ओर काव्यकला की दृष्टि से भी ये पद अतुलनीय हैं। संयोग में विनोद और रंजन तथा वियोग में दुःख और पीड़ा की अभिव्यक्ति सूर ने जिन शत-सहस्र भावों, बिम्बों और अप्रस्तुतों के माध्यम से की है, वह आज तक सचमुच बेजोड़ है।

सूरसागर का दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय विनय है। इन पदों में सूर का कृष्ण के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण है। संसार की असारता के चित्रण द्वारा वैराग्य-भावना को प्रबल किया गया है तथा भक्ति की अनिवार्यता सिद्ध की गई है। मन को भक्ति की ओर खींचने के लिए सत्संग महिमा और हरि-विमुखों की निन्दा की गई है। सूर ने संसार के सभी दोषों को अपने सिर ओढ़कर विनय को चोटी पर पहुँचा दिया है।

---

१ डा० व्रजेश्वर वर्मा सूरदास' पृ० १०३ १०४।

अप्रस्तुतों की दृष्टि से विनय के पद लीला के पदों से नितान्त भिन्न हैं। लीला में जहाँ अप्रस्तुत प्रकृति से ग्रहण किए गये है, वहां विनय में लोकजीवन से। इन अप्रस्तुत योजनाओं में सूर का समाज झांक रहा है। विनय का कवि पापों के बोझ से दबा है, आत्मग्लानि से पीड़ित है, उमंग के तो दर्शन भी नहीं होते।

सूरसागर का तीसरा महत्त्वपूर्ण विषय रामकथा है। जैसे पथिक प्रकृति की मनोहारी छटा को देखकर क्षण भर विश्राम कर ही लेता है, उसी प्रकार सूर के लिए कृष्णलीला के मार्ग में रामकथा एक विश्रामस्थल है। इस रामकथा में रामजन्म, बालकेलि, धनुर्भंग, केवट-प्रसंग, भरत-भक्ति, राम-विलाप, हनुमान-सीता संवाद, सीता की अग्नि परीक्षा आदि मार्मिक स्थल हैं। करुण और कोमल भावों के चित्रण में सूर की प्रवृत्ति विशेष रमी है। इन पदों में दैन्यभाव की प्रधानता है। सूर की इस राम कथा के ऋण-भार से मुक्त होने के लिए ही शायद गोस्वामी तुलसीदास रामकथा लिखते-लिखते 'कृष्णगीतावली' भी लिख गए। सूरसागर के अन्य विषय भाव और कला दोनों दृष्टियों से नगण्य हैं।

(२) अप्रस्तुतयोजना—

(क) भाषा में अप्रस्तुतों के प्रयोग तथा उनके प्रयोजन

भाषा से यहाँ तात्पर्य दैनिक बोलचाल की भाषा से है। अप्रस्तुतयोजना न केवल शास्त्रीय विषय है और न इसका सम्बन्ध मात्र कवियों और साहित्यकारों से ही है, अपितु यह एक सामान्य विषय भी है, और इसका सम्बन्ध अत्यन्त सामान्य जनता से भी है। यहां तक कि अबोध बालकों में भी अप्रस्तुतयोजना की भावना विद्यमान रहती है। शहर से गाँव आये हुए एक अबोध बालक ने पहली बार सुअर देखकर उसे 'छोटी भैंस' कहा। इसी प्रकार एक दूसरे अबोध बालक ने पहली बार जामुन फल देखने पर उसे 'छोटा बैंगन' कह दिया। इन दोनों उदाहरणों में छोटी भैंस और छोटा बैंगन अप्रस्तुत के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। हम भी दैनिक बोलचाल की भाषा में जाने-अनजाने में शत-सहस्र अप्रस्तुतों का प्रयोग करते ही रहते हैं। सत्यनिष्ठ व्यक्ति को युधिष्ठिर, झगड़ा लड़ाने वाले को नारद, बलिष्ठ व्यक्ति को भीम, कपटी को वामन, दानी को हरिश्चन्द्र, पतिव्रता को सावित्री, तेज स्त्री को चामुण्डा, सुन्दर, गुण सम्पन्न स्त्री को लक्ष्मी, कहते ही रहते हैं। इसी प्रकार निष्कपट, सरल व्यक्ति को गऊ, मूर्ख को गधा या बैल, स्वामिभक्त को कुत्ता, लम्बे व्यक्ति को ऊंट या जिराफ, लम्बी टांगवाले को शुतुर्मुर्ग, मीठा बोलने वाले को कोयल और घाती व्यक्ति को बगुला कहते हैं। भाषागत इन अप्रस्तुतों के नाना रूप रंग होते हैं भाषा के इन अप्रस्तुतों में कुछ तो मानवीय संसार से ग्रहण किए जाते हैं मानव के संस्कार कार्य गुण रोग आदि

को भाषा में अप्रस्तुत बनाया जाता है। बिना नेता के भीड़ को हम बिना दूल्हे की बारात कह देते हैं तथा नीरस सुनसान स्थान को श्मशान की संज्ञा दे देते हैं अथवा विधवा की माँग कहते हैं। मानव सुख-दुःख का समन्वय है। एक दुःख को दूसरे सुख में भूल जाता है—इस भाव के लिए हम लड़के का मिठाई पाकर कनछेदन का दर्द भूल जाने की अप्रस्तुतयोजना लाते हैं। दुःख में मनुष्य एक-एक लमहा गिनता है, जैसे रोजा रखने वाला मुसलमान एक-एक दिन गिनता रहता है। एकाएक आपत्ति आ जाने के भाव को हम फ़ालिज गिरने की अप्रस्तुतयोजना द्वारा व्यक्त करते हैं। भाषागत अप्रस्तुतों में सबसे अधिक संख्या पौराणिक, ऐतिहासिक पुरुषों और घटनाओं से सम्बन्धित अप्रस्तुतों की होती है। ऐसे अप्रस्तुतों में रामकथा का विशेष महत्त्व है। भ्रातृ-प्रेमी के लिए लक्ष्मण और भ्रातृद्रोही के लिए विभीषण अप्रस्तुत प्रयुक्त होते हैं। बड़ों की रंचमात्र कृपा से छोटों का उद्धार हो जाने के भाव को राम के चरणस्पर्श से शिला तर जाने की अप्रस्तुतयोजना द्वारा व्यक्त किया जाता है। अप्रतिम प्रेम के लिए दशरथ-प्रेम का दृष्टान्त लाया जाता है। अत्याचारी, अहंकारी और दम्भी व्यक्ति को रावण की उपाधि दी जाती है। भीमकाय व्यक्ति के लिए कुम्भकरण अप्रस्तुत लाया जाता है। घर में फूट पैदा करने वाली नारी को कैकेयी कहा जाता है। आदर्श पातिव्रत के लिए सीता अप्रस्तुत लाया जाता है। दुष्कर कार्य के लिए लक्ष्मण-रेखा तथा माया-मोह के लिए सोने का मृग अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। भाषा के अप्रस्तुतों के लिए रामकथा की भाँति महाभारत की कथा भी एक प्रमुख स्रोत है। असीम गुरु भक्ति के लिए एकलव्य की गुरुभक्ति का दृष्टान्त लाया जाता है। कठिन प्रण के लिए भीष्म-प्रतिज्ञा का प्रयोग होता है। गृहस्थी के झंझटों के लिए चक्रव्यूह अप्रस्तुत लाया जाता है। महाभारत के अतिरिक्त कुछ अन्य पौराणिक व्यक्तियों से सम्बन्धित अप्रस्तुत भी उल्लेखनीय हैं। असीम पितृभक्ति के लिए श्रवणकुमार और अतिशय क्रोधी के लिए दुर्वासा या परशुराम अप्रस्तुत लाया जाता है। विकृत वेशभूषा वाले को शंकर, अतिकृपालु को विष्णु और छैला को कृष्ण की उपाधि दी जाती है। इसी प्रकार और भी अनेक पौराणिक व्यक्तियों को अप्रस्तुत बनाकर बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्ति की जाती है। ऐतिहासिक पुरुषों और घटनाओं में चरम कूटनीतिज्ञ के लिए चाणक्य अप्रस्तुत लाया जाता है। मुहम्मद तुगलक का पागलपन और भिश्ती द्वारा चलाए गए चमड़े के सिक्के का भी भाषाई अप्रस्तुतों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। असीम देशभक्ति के लिए राणाप्रताप और शिवाजी के दृष्टान्त लाए जाते हैं।

नक्षत्र, ग्रह और प्रकृति से भी भाषा में कुछ अप्रस्तुत ग्रहण किए जाते हैं। अशुभ व्यक्ति या वस्तु को शनि ग्रह या राहु-केतु कहा जाता है। अमित तेज के लिए सूर्य प्रयुक्त होता है असंख्य के लिए और गम्भीरता के लिए सागर अप्रस्तुत

लाए जाते हैं। पवित्र व्यक्ति को गंगा कहा जाता है। आदर्श पातिव्रत के लिए सूर्यमुखी पुष्प प्रयुक्त होता है। कोमलता और नाजुकता के लिए छुईमुई अप्रस्तुत उल्लेखनीय है। मिथ्या-मोह के लिए सेमर फल या कुष्मांड पुष्प लाया जाता है। कृषि जगत से भी भाषा में अनेक अप्रस्तुत ग्रहण किये जाते हैं। अनमेल व्यक्तियों या वस्तुओं के लिए गेहूँ में मांड़ा अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। मिठास के लिए ईख का रस, कपट के लिए ईख की गांठ और अचानक की प्रसन्नता के लिए सूखे धान में जल अप्रस्तुत लाए जाते हैं।

भाषा के अप्रस्तुतों में पशु-पक्षी कीट जगत् का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। दिखावे के लिए हाथी का दाँत अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। छोटा व्यक्ति यदि बड़े के ऊपर नियन्त्रण करता है तो इस भाव के लिए ऊंट की नकेल अप्रस्तुत लाया जाता है। परम्परा की ही डगर पर चलने वाले को चक्की का बैल या तेली का बैल कहा जाता है। सुस्त और आलसी व्यक्ति के लिए भैंस अप्रस्तुत आता है। गन्दे और नालायक व्यक्ति को सुअर कहा जाता है। निर्बल व्यक्ति के लिए बछिया अप्रस्तुत लाया जाता है। निरर्थक वस्तु के लिए बकरी के गले का स्तन तथा मूर्ख समूह के लिए भेड़ी अप्रस्तुत जुटाया जाता है। लोभ-मोह के लिए बन्दर की मुट्ठी या मदारी का बन्दर अप्रस्तुत लाया जाता है। अल्पज्ञ व्यक्ति को कुएं का मेढक कहा जाता है। अति निर्बल व्यक्ति के लिए जिआई हत्या अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। असम्भव की अभिव्यक्ति के लिए खरगोश की सींग या गधे की सींग अप्रस्तुत लाए जाते हैं। वीरता के लिए सिंह, घाती के लिए वृक अप्रस्तुत प्रयुक्त होते हैं। पक्षियों में आदर्श प्रेम के लिए कपोत-कपोती का प्रेम, चकवा-चकई का प्रेम, तथा चकोर-चन्द्र का प्रेम प्रसिद्ध है। तेज दृष्टि के लिए गिद्ध-दृष्टि विख्यात है। अथक, असम्भव प्रयास के लिए टिटिहरी का प्रयत्न अप्रस्तुत प्रसिद्ध है। टिटिहरी के संदंभ मे दो जनश्रुतियां हैं। कहा जाता है, एक बार समुद्र ने टिटिहरी के अण्डे को वहा दिया, जिससे रुष्ट होकर टिटिहरी ने समुद्र को पाट देने का संकल्प किया और एक-एक कंकड़ लाकर समुद्र में डालने लगी। दूसरी बात यह है कि टिटिहरी जब सोती है तब टांग ऊपर करके, इसलिए कि यदि आसमान गिरे तो अपनी टांगों पर रोक ले। इन दोनों जनश्रुतियों को भाषा में अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया जाता है। झपटने के अर्थ मे बाज या चील अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। बिना समझे हाँ-में-हाँ मिलाने वाले को तोता कहा जाता है। तोते के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि बहेलिया जब तोते को पकड़ने के लिए लासा लगाकर नरसल रखता है, तब उस नरसल पर बैठते ही नरसल घूम जाती है और तोता उलट जाता है। तोता खुद नरसल को पकड़े रहता है, लेकिन समझता है कि उसे पकड़ लिया गया है। तोते का यह भ्रम भी भाषा मे अप्रस्तुत बनाया जाता

है। कुरूपता के लिए कौआ और गड्डूलर पक्षी लाये जाते हैं। छोटे और कमजोर व्यक्ति को मेंढ़की या गौरैया कहा जाता है। कोयल की वाणी और कौवे के साथ कपट प्रसिद्ध है। अप्रिय बोलने वाले को विषधर कहा जाता है, निरर्थक व्यक्ति या वस्तु को केंचुल की संज्ञा से भूषित किया जाता है। चंचलता और नेत्रों की सुन्दरता के लिए मछली प्रसिद्ध है। घड़ियाल की तेज और लोलुप दृष्टि को भाषा मे अप्रस्तुत बनाया जाता है। कछुआ अपनी कठोरता और लम्बी ग्रीवा के लिए अपनाया जाता है। पतिंगे का आदर्श प्रेम बदनाम है। परजीवी व्यक्ति के लिए खटमल अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार असम्भव कार्य के लिए मच्छर की पसुडी से समुद्र भाठने की अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है।

भाषा में कुछ अप्रस्तुत सामान्य जीवन से भी ग्रहण किये जाते हैं। निर्दय व्यक्ति को कठकरेजी कहा जाता है। अन्तर में गुबार भरे व्यक्ति के लिए बारूद अप्रस्तुत लाया जाता है। एकात्म भाव के लिए दूध और चीनी अथवा नमक और पानी के मिलन की अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है। निरुद्देश्य भटकने वाले को कटी पतंग कहा जाता है। तिल-तिल करके घुटने वाले के लिए सटीक अप्रस्तुत मोमबत्ती है। भ्रम के लिए काई अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। विज्ञान के विकास के साथ भाषा में कुछ वैज्ञानिक अप्रस्तुतों का भी प्रचार होता जा रहा है। इस प्रकार मानव अपने चतुर्दिक फैली हुई वस्तुओं को अप्रस्तुत बना कर भाषा में भावों की अभिव्यक्ति करता है।

भाषा में अप्रस्तुतों के लाने के कुछ निश्चित प्रयोजन होते है। अप्रस्तुतों के लाने का पहला उद्देश्य है, भाव को अभिव्यक्ति प्रदान करना। हम जिस भाव को जिस रूप में व्यक्त करना चाहते हैं, कभी-कभी हमारी भाषा और वाणी उस भाव की अभिव्यक्ति में पंगु हो जाती है। हम हृदयस्थ भावना को साधारण शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर पाते। भाव-प्रबलता के सामने भाषा का सांचा छोटा पड़ जाता है। हमारे अन्दर सन्देह प्रविष्ट हो जाता है कि हमारी वाणी हमारे अन्तर के भाव को उसी रूप में दूसरों पर प्रकट करने में असमर्थ हो रही है। ऐसी स्थिति में हम अप्रस्तुतों के अमोघ अस्त्र का सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए हम किसी व्यक्ति से बहुत प्रेम करते हैं, लेकिन हमें जब यह मालूम हो जाय कि वही व्यक्ति हमारा बहुत बहुत बड़ा शत्रु है, तब प्रेम और घृणा के संघर्ष से हमारे भीतर एक गुबार पैदा हो जाता है। इस भाव को व्यक्त करने के लिए जब साधारण वाणी असमर्थ हो जाती है तब हम विष से भरे बासुकि नाग का अप्रस्तुत लाकर भाव को वाणी प्रदान करते हैं। एक नन्हा-सा शिशु राज्य के संचालन का भार अपने हाथों में लेकर बड़े-बूढ़ों पर कैसे शासन करता है? इस भाव को वाणी प्रदान करने में जब हम असमर्थ हो जाते हैं,

तब अप्रस्तुतयोजना का सहारा लेते हैं और इस भाव को नकेल द्वारा ऊंट का संचालन अथवा भुनगे द्वारा दीपक को ढंक लेने की अप्रस्तुत योजना द्वारा व्यक्त करते हैं। त्यागी दो प्रकार के होते हैं—एक स्वेच्छापूर्वक त्याग करने वाले और दूसरे दिलजले त्यागी। इस भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति जब हम साधारण शब्दों द्वारा नहीं कर पाते, तब नीम की पत्ती चबाने की अप्रस्तुतयोजना लाते हैं। स्वस्थ आदमी नीम की पत्ती को शौक से रस लेकर चबाता है, किन्तु रोगी आदमी जहर की तरह निगलता है। दोनों प्रकार के त्यागियों की भी यही दशा होती है। मानव-मन में दैवी शक्तियां छिपी होती हैं, अवसर आने पर प्रकट हो जाती हैं, ये शक्तियां कैसे छिपी रहती हैं इस भाव को हम जब साधारण शब्दों मे व्यक्त करने में असमर्थ हो जाते है, तब अप्रस्तुतयोजना का सहारा लेते है और कहते हैं, जैसे जमीन में सूखी जड़ें पड़ी रहती हैं, पानी पाते ही पनप जाती हैं। उसी प्रकार ये दैवी शक्तियाँ भी मानव के अन्तर में छिपी रहती हैं, जो अवसर पाकर उभर आती है। स्त्रियां आभूषणप्रिय होती हैं, उनका गहना कितनी कठिनाई से लिया जा सकता है? इस भाव को रूप देने के लिए जब साधारण शब्द पूरे नहीं पड़ते, तब अप्रस्तुतयोजना का आश्रय ले कर हम कहते हैं, जैसे ऊख का रस पेरने पर ही निकलता है।

भाषा में अप्रस्तुत लाने का दूसरा उद्देश्य है भाव का स्पष्टीकरण। कभी-कभी हमारी वाणी अन्तर के भाव को तद्वत प्रस्तुत करने में अशक्त हो जाती है, ऐसी स्थिति में हम अप्रस्तुतयोजना का आश्रय लेकर अन्तर के भाव को स्पष्ट करते हैं। उदाहरण के लिए—सीताजी का दूसरे के घर में रहने का दोष अग्नि-परीक्षा से शमित हो गया था, किन्तु दुर्दैव के कारण वह फिर फैल गया। इस भाव को स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के लिए पागल कुत्ते का विष अप्रस्तुत लाया जाता है। पागल कुत्ते का विष एक बार शान्त हो जाने पर घनगर्जना होने पर पुनः उभर आता है। अच्छे विद्यार्थी ज्ञानवान् हो जाते हैं, मन्द बुद्धिवाले नहीं। इस भाव को स्पष्ट करने के लिए अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है—शीशे में छाया आ जाती है, किन्तु मिट्टी में नहीं। आदमी एक सुख के सामने दूसरे दुख को भूल जाता है, इस भाव का चित्र खींच देने के लिए अप्रस्तुत योजना प्रयुक्त की जाती है—बालक मिठाई पाकर कनछेदन का दर्द भूल जाता है। सुख में कोई कितना भी व्यंग्य क्यों न करे, हमारे ऊपर असर नहीं होता इस भाव को स्पष्ट बनाने के लिए हम अप्रस्तुत योजना लाते हैं—हवा भरी गेंद पर ठोकरों का असर नहीं होता। जो प्रेम गहरा होता है, उसमें दिखावे की जरूरत नहीं होती। इस भाव को बोधगम्य बनाने के लिए अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है—जिन वृक्षों की जड़ें गहरी होती हैं, उन्हें सींचने की जरूरत नहीं होती। बिना कष्ट के आराम नहीं मिलता—इस भाव के के लिए बिना धुए के आग भी नहीं

जलती अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है। थर-थर काँपने के भाव को हम सितार के तार अप्रस्तुत द्वारा स्पष्ट करते है। अपराध करके मौज कोई उड़ाए और सजा किसी को मिले, इस भाव को बोधगम्य बनाने के लिए हम अप्रस्तुत योजना लाते हैं—घी खाए दीवाली और पीटा जाए सूप।

भाषा में अप्रस्तुत प्रयोग का तीसरा प्रयोजन होता है भाव की सौन्दर्य-वृद्धि अप्रस्तुत भाव की अभिव्यक्ति में चार चांद लगा देते है। हम अपने भाव को दूसरों पर नगा नहीं, अपितु सजा-धजाकर प्रकट करना चाहते है। अप्रस्तुत इस कार्य में दक्ष होते हैं। खिचड़ी बालों को गंगा-जमुनी बाल कहने मे सौन्दर्य बढ़ जाता है। प्रियपात्र को हम गले का हार, सौन्दर्य वृद्धि के लिए ही कहते हैं। सर्वस्व समर्पण के लिए धूप नैवेद्य युक्त थाल अप्रस्तुत लाया जाता है। इससे प्रस्तुत के रूप में निखार आ गया। प्रेमी तथा अविश्वासी व्यक्ति को न अपनाते बनता है और न छोड़ते। इस भाव को अभिव्यक्ति के लिए अप्रस्तुतयोजना लाई जाती है—सोने की हंसिया न निगलते बनती है, न फेंकते। यहाँ भी अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत को संवारा गया है।

भाषागत अप्रस्तुतों का चौथा उद्देश्य कथन के प्रभाव को बढ़ाना है। अप्रस्तुत प्रयोग से हम अपनी उक्ति के प्रभाव के दायरे को और बड़ा देते हैं। गृहस्थी एक जंजाल है, परेशानी है—इस भाव को व्यक्त करने के लिए हम चक्रव्यूह अप्रस्तुत लाते हैं। इस अप्रस्तुत से प्रस्तुत का प्रभाव द्विगुणित हो जाता है। सुनसान स्थान को श्मसान या विधवा की मांग कहने में नीरवता का प्रभाव और बढ़ जाता है। चोरी को चोर की खेती कहने में चोर की आदत का भाव तीव्रतर हो जाता है। अल्पज्ञ व्यक्ति को कूप-मण्डूक कहने में उसकी अल्पज्ञता उभर आती है। अमीर, गरीबों का खून चूसकर जीते हैं, अतः उनके लिए खटमल अप्रस्तुत कहीं प्रभाववर्द्धक है। असम्भावना की अभिव्यक्ति के लिए खरगोश या गधे की सींग अथवा खेड़े की दूब अप्रस्तुत लाया जाता है। इन अप्रस्तुतों से पूर्णभाव का प्रभाव वृहत्तर हो जाता है। पतिव्रता को सूर्यमुखी और नाजुक को छुई-मुई कहने में भी प्रभाव तीव्रतर हो जाता है।

भाषा में अस्तुत प्रयोग का अन्तिम प्रयोजन कथन को पूर्ण बनाना या उक्ति पर मुहर लगाना होता है। हम अपनी बात को कहकर अप्रस्तुत द्वारा उसे समर्थित करके अकाट्य बना देते हैं। मुहर लगाने का काम अप्रस्तुत-शैलियों के अन्तर्गत मुख्यरूप से उदाहरण, दृष्टान्त और लोकोक्तियों से लिया जाता है। दैनिक बोलचाल की भाषा में कहावतों की बहुलता होती है। कहावतें पाणिनि के सूत्र के समान सूक्ष्म होती हैं। जैसे ये सूत्र विस्तृत व्याख्या के संक्षिप्त रूप हैं उसी प्रकार कहावतें भी बड़ी-बड़ी कथाओं की संक्षिप्त रूप हैं कहावत अपने में बड़ी भारी दलील होती हैं

कहावतों न्यायालय में निर्णय हो जाने के बाद उसकी कोई अपील कहीं नहीं हो सकती। वाणी में कहावत का वही स्थान है, जो भोजन में नमक का। जैसे न्यायालय में अपनी बात के समर्थन में साक्षी प्रस्तुत किया जाता है, और सही साक्षी हो जाने पर न्याय अपने पक्ष में आ जाता है, उसी प्रकार अपने कथन के साक्षी स्वरूप हम कहावतों का प्रयोग करके बाजी जीत लेते हैं। उदाहरणार्थ जो जैसे होता है, उसके साथी भी उसी स्वभाव के मिल जाते हैं—इस कथन के समर्थन के लिए हम लोकोक्ति लाते है—ऊँट के ब्याह में गवैया भये गदहा। कुपात्र के हाथ में वस्तु के चले जाने के कथन पर हम, छछूंदर के सिर चमेली का तेल, कहावत द्वारा मुहर लगाते हैं। दो कार्य एक साथ नहीं हो सकते, इस भाव के समर्थन में हम कहावत लाते हैं, चना का चबाना और बाँसुरी का बजाना। जो, जिसका भक्ष्य है, उसके पास वह वस्तु रख देने पर बच नहीं सकती—इस भाव का समर्थन हम, भैंस के घर में पुअरा की थाती, कहावत द्वारा करते हैं। इसी प्रकार की असंख्य कहावतों का प्रयोग हम दैनिक बोल-चाल की भाषा में करते रहते हैं।

(ख) काव्य में अप्रस्तुत प्रयोग के प्रयोजन :

काव्य में अप्रस्तुत निरुद्देश्य नहीं लाए जाते, अपितु उनके लाने के निश्चित प्रयोजन होते हैं। काव्य में अप्रस्तुत प्रयोग के मुख्य तीन प्रयोजन होते हैं—अभिव्यक्ति का स्पष्टीकरण, अभिव्यक्ति का सौन्दर्य साधन और प्रभावान्विति।

(१) अभिव्यक्ति का स्पष्टीकरण—

कवि अपने अन्तर के भाव को अधिक से अधिक स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के लिए अप्रस्तुतों का आश्रय लेता है। जहां उसे शंका होने लगती है कि कोरे कथन द्वारा उसका भाव स्पष्ट नहीं हो पा रहा है, वहीं वह अप्रस्तुतों की ओर दौड़ पड़ता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कुछ भाव बिना अप्रस्तुतों के बोधगम्य हो ही नहीं पाते। ऐसे भावों की अभिव्यक्ति के लिए अप्रस्तुतों का दामन पकड़ना अनिवार्य हो जाता है। कुछ भाव ऐसे होते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति तो हो जाती है, किन्तु वह अभिव्यक्ति अध-कचरी होती है, अतः उसे पूर्ण बोधगम्यता के स्तर तक ले जाने के लिए अप्रस्तुतयोजना आवश्यक हो जाती है। यह स्पष्टीकरण वस्तु या व्यक्ति के रूप का होता है, गुण या धर्म का होता है तथा क्रिया का होता है।

रूप या आकार का स्पष्टीकरण :

किसी वस्तु या व्यक्ति के रूप या आकार को स्पष्ट और बोधगम्य बनाने के लिए कवि सारे संसार का चक्कर काटकर अपने वर्ण्य के अनुरूप अप्रस्तुत ढूँढकर लाता है। केशवदास लिखते हैं

किधौं जीव की ज्योति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मानो संवर-स्त्रीन में काम वामा।
हनूमान ऐसी लखी राम रामा॥[1]

यहाँ अशोकवाटिका में राक्षसियों से घिरी सीता के स्वरूप-बोध के लिए माया मे लीन सच्चिदानन्द की अंशस्वरूपा जीवात्मा, सांसारिक विषय सम्बन्धी बुद्धियों मे फंसी निपुण पारमार्थिक बुद्धि, शंबरासुर की स्त्रियों के बीच में रति, आदि अप्रस्तुत लाए गए हैं। बिहारी लिखते हैं—

ज्यौं-ज्यौं जोबन जेठ दिन, कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं-त्यौं छिन-छिन कटि छपा, छीन परति सी जाति॥[2]

युवावस्था में नायिका के कुच ज्यों-ज्यों बढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों कटि क्षीण होती जा रही है। कुचों की दीर्घता और कटि की क्षीणता के स्वरूप-बोध के लिए कवि ने जेठ मास का दिन और रात अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। जेठ में दिन बढ़ता जाता है और रात छोटी होती जाती है, उसी प्रकार कुच बढ़ रहे हैं और कटि क्षीण हो रही है। सेनापति लिखते है—

सेनापति माधव महीना में पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए है।
आधे अनसुलगि, सुलगि रहे आधे मानौ,
बिरही दहन काम क्वैला परचाए है॥[3]

वसन्त ऋतु मे पलाश तरु फूला है। फूल की घुण्डी काले रंग की है और फूल लाल रंग का। पलाश के ऐसे फूल के स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए कवि कहता है— मानों कामदेव ने वियोगियों को जलाने के लिए कोयला सुलगाया हो। लाल फूल, कोयलों के जले हुए अंश हैं और काली घुण्डी बिना जला हुआ कोयला है। यहां अप्रस्तुत के द्वारा पलाश पुष्प का चित्र-सा खींच दिया गया है। रत्नाकर लिखते है—

माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै,
कांच-फलकानि ज्यौं अनेक एक सोई है।[4]

---

१. लाला भगवानदीन : 'केशव कौमुदी', तेरहवाँ प्रकाश, पद सं० ५५।
२. लाला भगवानदीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा १०५।
३. पं० उमाशंकर शुक्ल : 'कवित्त रत्नाकर,' तीसरी तरंग, पद सं० ४।
४ जगन्नाथदास रत्नाकर : 'उद्धव शतक', कवित्त २१।

यहाँ ब्रह्म के अनेक में एक स्वरूप का स्पष्टीकरण अनेक काँच-फलकों मे एक ही रूप, अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। जैसे एक ही रूप अनेक शीशों में दिखाई देता है, उसी प्रकार एक ब्रह्म अनेक जीवों में प्रतिभासित होता है। लज्जा के वर्णन मे प्रसाद जी लिखते हैं—

नयनों की नीलम की घाटी, जिस रस घन से छा जाती हो।
वह कौंध की जिससे अन्तर की शीतलता ठंडक पाती हो॥[1]

लज्जा के स्वरूप-बोध के लिए यहाँ 'नीलम की घाटी में बादल' अप्रस्तुत लाया गया है। नेत्रो में लज्जा उसी प्रकार छा जाती है, जैसे नीलम की घाटी मे बादल। जिसने पर्वतीय क्षेत्रों का भ्रमण किया होगा, उसके लिए लज्जा का स्वरूप-बोध इस अप्रस्तुत द्वारा बड़ी आसानी से हो जायगा। प्रसाद जी का ही दूसरा उदाहरण है—

नीरव थी प्राणों की पुकार।
मूर्छित जीवन-सर निस्तरंग, नीहार घिर रहा था अपार॥[2]

इड़ा का जीवन मूर्छित, अचेतन और निराश था। ऐसे जीवन का स्वरूप-बोध कवि अप्रस्तुतयोजना द्वारा कराता है, मानों स्थिर सरोवर लहरशून्य हो और कुहरे से घिरा हो। यहाँ मूर्छा के लिए स्थिरता, अचेतना के लिए लहरशून्यता और निराशा के लिए कुहरा अप्रस्तुत स्वरूप के स्पष्टीकरण में पूर्ण सक्षम हैं।

गुण या धर्म का स्पष्टीकरण

वस्तु या व्यक्ति के गुण या धर्म विशेष को स्पष्ट करने के लिए भी अप्रस्तुतो को जुटाया जाता है। केशवदास लिखते हैं—

बहु वर्णा सहजप्रिया, तम गुण हरा प्रमान।
जगमारग दरशावनी, सूरज किरन समान॥[3]

यहां मुद्रिका के लिए सूर्यकिरण अप्रस्तुत लाया गया है। सूर्यकिरण सात रंगोंवाली होती है, अन्धकार को दूर करती है और मार्ग दर्शाती है, उसी प्रकार मुद्रिका भी बहुवर्णी है, दुःख दूर करने वाली है और पातिव्रत का मार्ग दिखाती है। अतः इस अप्रस्तुत द्वारा मुद्रिका के अनेक गुणों का स्पष्टीकरण हुआ है। बिहारी ने

---

१. जयशंकर प्रसाद : 'कामायनी', लज्जा सर्ग, पृ० १०१।
२. ,, : ,, ,, इड़ा सर्ग, पृ० १६६।
३. लाला भगवानदीन : 'केशव कौमुदी', १३/८४।

विभिन्न धर्मों के स्पष्टीकरण के लिए अनेक मौलिक और मार्मिक अप्रस्तुत जुटाया है। वे नायिका की दृष्टि का स्वभाव-चित्रण इस प्रकार करते है—

सबही तन समुहाति छिन, चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति यह, किबलनुमा लौं दीठि ॥[1]

नायिका की दृष्टि का स्वभाव यह है कि वह देखती तो सबकी ओर है, किन्तु ठहरती है केवल नायक पर ही। नायिका की ऐसी दृष्टि का स्वरूप-बोध किब्लानुमा अप्रस्तुत द्वारा कराया गया है। किब्लानुमा वह यंत्र है, जिसकी सुई सदैव मक्के की ओर रहा करती है। मुसलमान लोग इस यंत्र को अपने पास इसलिए रखते है, जिससे उन्हें नमाज पढ़ते समय मक्के की दिशा का ठीक ज्ञान हो जाय। नायक-नायिका के प्रेम का वर्णन बिहारी इस प्रकार करते हैं—

उनको हित उनही बनै, कोऊ करौ अनेक।
फिरत काग गोलक भयौ, दुहू देह ज्यौं एक ॥[2]

नायक-नायिका का प्रेम अपूर्व है। दोनो के शरीर तो दो हैं, किन्तु जीव एक ही है, जो दोनों शरीरों में उसी प्रकार संचरण करता है, जैसे कौवे के दोनो गोलकों में एक नेत्र। कहा जाता है कि कौवे के नेत्र गोलक तो दो होते हैं, किन्तु आँख एक ही होती है, जो बारी-बारी से दोनों गोलकों में फिरा करती है। इस अप्रस्तुत द्वारा नायक-नायिका के अनुपम प्रेम का स्पष्टीकरण किया गया है। नायक के कपटी स्वभाव का चित्रण बिहारी इस प्रकार करते हैं—

लाल सलोने अरु रहे, अति सनेह सों पागि।
तनक कचाई देत दुख, सूरन लौं मुँह लागि ॥[3]

नायक में सब गुण हैं, किन्तु उसका कपटी स्वभाव कच्चे सूरन की तरह मुँह में कनकनाता है। यहाँ कच्चे सूरन अप्रस्तुत द्वारा नायक के कपटी स्वभाव का स्पष्टीकरण किया गया है। ग्रीष्म-वर्णन में सेनापति लिखते है—

भीषम लपत रितु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी हैं तहखानन में जाइकै।

---

१. लाला भगवानदीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा ६१।
२. लाला भगवानदीन : 'बिहारी बोधिनी, दोहा २१४।
३. ,, : ,, ,, ४०६।

मानौ सीतकाल, सीतलता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरंचि बीच धरा में धराइकै ।।[1]

ग्रीष्म ऋतु के भीषण ताप के कारण शीतलता तहखानों में जा छिपी है, मानों शीतकाल में शीतलता को जमाने के लिए ब्रह्मा ने शीत का बीज पृथ्वी के अन्दर छिपाकर रक्खा हो । यहाँ ग्रीष्म ऋतु की भीषण ऊष्मा का स्पष्टीकरण किया गया है, रत्नाकर लिखते हैं—

अंडे लौं टिटैहरी के जैहै जू बिवेक बहि,
फेरि लहिबे कौ ताके तनक न राह है ।।[2]

यहाँ ऊधौ के विवेक का स्पष्टीकरण टिटिहरी के अण्डे द्वारा किया गया है, अर्थात् जैसे टिटिहरी का अण्डा समुद्र में बह गया था, उसी प्रकार तुम्हारा विवेक भी बह जायगा । श्रद्धा के सौन्दर्य वर्णन में प्रसाद जी लिखते हैं—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।।[3]

यहाँ मुख की कान्ति का स्पष्टीकरण 'बिजली के खिले हुए फूल' अप्रस्तुत द्वारा किया गया है । प्रसाद जी यौवन का वर्णन इन शब्दों में करते हैं—

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का, गोधूली की सी ममता हो,
जागरण प्रात सा हंसता हो, [illegible] मध्याह्न निखरता हो ।।[4]

यहाँ यौवन के चार गुणों का स्पष्टीकरण चार अप्रस्तुतों द्वारा किया गया है । यौवन में बसन्त ऋतु का-सा आनन्द है, अर्थात् जैसे बसन्त आते ही प्रकृति हरी-भरी और पक्षियों की चहचहाहट से पूर्ण हो जाती है तथा आँखों को आकृष्ट करती है, उसी प्रकार यौवन के आते ही शरीर स्वस्थ, सुन्दर तथा मन प्रेम के कोलाहल से भर जाता है । यह कोलाहल अपनी रम्यता से दर्शकों के मन को लुभाता है । यौवन में गोधूली बेला की ममता है, अर्थात् जैसे सन्ध्या-बेला ताप-दग्ध थके व्यक्तियों को घनी छाया और विश्राम देकर अपनी ममता प्रकट करती है, उसी प्रकार युवतियाँ संसार के ताप से दग्ध और कार्यभार से शिथिल अपने प्रेमियों को अपने कर के कोमल शीतल स्पर्श और चितवन की स्निग्धता से विश्राम पहुँचाकर अपना अनुग्रह प्रकट

---

१. पं० उमाशंकर शुक्ल : 'कवित्त रत्नाकर', तीसरी तरंग, पद १२ ।
२. जगन्नाथदास रत्नाकर : 'उद्धव शतक', छन्द ९६ ।
३. जयशंकर प्रसाद : 'कामायनी', श्रद्धा सर्ग, पृ० ४६ ।
४. लज्जा सर्ग पृ० १०१

करती है। यौवन में प्रभात काल की जागृति है, अर्थात् जैसे प्रभात के फूटते ही रात के सोए हुए सब प्राणी जाग पड़ते हैं, उसी प्रकार यौवन के पदार्पण करते ही किशोरावस्था की नादानी समाप्त हो जाती है और जीवन को आँख खोलकर देखना पड़ता है। यौवन में दोपहर का तीव्रतम ओज समाया रहता है, अर्थात् जैसे मध्यान्ह में सूर्य अपनी प्रखरता की सीमा पर होता है, उसी प्रकार यौवन में शरीर की सभी शक्तियाँ अपना पूर्ण विकास करती हैं। यहाँ यौवन के चार गुणों को अप्रस्तुतों द्वारा कलात्मक ढंग से स्पष्ट किया गया है।

क्रिया का स्पष्टीकरण :

अप्रस्तुतों द्वारा व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं का स्पष्टीकरण किया जाता है—

हरि कैसो बाहन की विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ वाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रका विमान कैधौं,
लक्ष्मण का बाण छूट्यौ रावण निशंक को।
गिरिगज गंड ते उड़ान्यो सुबरन अलि,
सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छुटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यौ लंक को ॥[1]

यहाँ हनुमान के उछलने की क्रिया के स्पष्टीकरण के लिए विष्णु का वाहन, ब्रह्मा का पीला हंस, आकाश रूपी नीली कसौटी पर सोने की रेखा, लक्ष्मण का बाण, पर्वत रूपी हाथी के गाल पर से उड़ा पीला भौंरा, आतिशबाजी का बाण और तोप का गोला अप्रस्तुत लाए गए हैं। नायिका की दृष्टि के लिए बिहारी लिखते हैं—

नीचीयै नीची निपट, डीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचे नीचे दियो, मन कुलंग झकझोरि ॥[2]

कुही पक्षी जैसे ऊपर उड़कर गौरवा पर झपटता है, उसी प्रकार नायिका की दृष्टि ने भी ऊपर उठकर नायक के मन को झकझोर दी। यहाँ झकझोरने की क्रिया का स्पष्टीकरण कुही पक्षी के अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। इसी प्रकार सुख और दुःख की सम्मिलित प्रतिक्रिया का स्पष्टीकरण बिहारी इस प्रकार करते हैं—

---

१. लाला भगवानदीन : 'केशव कौमुदी', १३।३८।
२. लाला भगवानदीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा, ७५।

पिय-बिछुरन को दुसह दुःख, हरष जात प्यौसाल।
दुरजोधन लौं देखियत, तजत प्रान यह बाल ॥[1]

नायिका को पति-वियोग का दुःसह दुःख है, किन्तु मैके जाने का अपार सुख। इस सुख-दुःख की सम्मिलित प्रतिक्रिया का वर्णन दुर्योधन अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। दुर्योधन को यह श्राप था कि जब हर्ष और शोक दोनों भावों का एक साथ उदय होगा, तभी वह मरेगा। लज्जा के प्रसार का स्पष्टीकरण प्रसाद जी इस प्रकार करते हैं—

जो गूँज उठे फिर नस-नस में, मूर्च्छना समान मचलता सा।
आँखों के साँचे में आकर, रमणीय रूप बन ढलता सा ॥[2]

लज्जा उसी प्रकार नस-नस में फैल जाती है, जैसे मूर्च्छना। यहाँ लज्जा की प्रसरण क्रिया का स्पष्टीकरण मूर्च्छना अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। शोकाकुल मनु के लिए प्रसाद जी लिखते हैं—

निस्तब्ध मौन था अखिल लोक, तन्द्रालस था वह विजन प्रान्त।
रजनी तम पुंजीभूत सदृश, मनु श्वास ले रहे थे अशान्त ॥[3]

यहाँ मनु की उच्छ्वास क्रिया का स्पष्टीकरण रात के घनीभूत अंधकार के भीतर से रुक-रुककर फूटने वाली वायु' अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। पन्त जी लिखते हैं—

अरुण अधरों की पल्लव प्रात।
मोतियों सा हिलता हिम हास ॥[4]

यहाँ हास्य क्रिया का स्पष्टीकरण मोती और हिम अप्रस्तुतों द्वारा किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतों का संयोजन वस्तु के रूप, गुण और क्रिया के स्पष्टीकरण के लिए किया जाता है।

(२) अभिव्यक्ति का सौन्दर्य-साधन :

काव्य में अप्रस्तुत सौन्दर्य-साधन के लिए भी लाए जाते हैं। बिना अप्रस्तुतों के अभिव्यक्ति कोरा कथन मात्र रह जाती है। अतः कविगण अप्रस्तुतों द्वारा अपनी कविता-वनिता का शृङ्गार करते हैं। यदि कविता-कामिनी स्वयं सुन्दर नहीं है तो उस पर अप्रस्तुतों का अलंकरण लादना व्यर्थ जायगा, किन्तु वह सुन्दर है तो उस पर अप्रस्तुतों का आभूषण 'चार-चाँद' लगा देगा। कवि को

१. लाला भगवानदीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा', ५३७।
२. 'प्रसाद' : 'कामायनी', लज्जा सर्ग, पृ० १०१।
३. 'प्रसाद' : 'कामायनी' इड़ा सर्ग, पृ० १६३।
४. सुमित्रानन्दन पंत : 'गुंजन', पृ० ४१।

अप्रस्तुत ढूँढ़कर लाने में जितना आयास करना पड़ता है, उससे कम श्रम अप्रस्तुतों को कलात्मक ढंग से सजाने में नहीं पड़ता। इसीलिए कभी-कभी मर्मज्ञ कवि अपनी कला-कुशलता से घिसे-पिटे अप्रस्तुतों में भी जान डाल देता है तथा इसके विपरीत कभी-कभी समुचित प्रतिभा के अभाव में कोई-कोई कवि नितान्त मौलिक अप्रस्तुतों को भी भोंडा बना देते हैं। अस्तु, अप्रस्तुतों को सजाने की कला भी नितान्त आवश्यक है। जो कवि इस कला का जितना श्रेष्ठ पारखी होगा, वह अप्रस्तुतों द्वारा उतना ही सुन्दर शृङ्गार अपनी कविता-वनिता का कर लेगा। अप्रस्तुतों की योजना करने में एक सहृदयतापूर्ण अनुभूति से निष्पन्न कुशलता की आवश्यकता होती है, जो यह अनुभव कर सके कि उसकी अप्रस्तुत योजना भावोत्कर्ष में, रसोद्रेक में, प्रेषणीयता में और सौन्दर्य-बोध में कितनी सहायक है? सहृदय कवि ही अप्रस्तुतों की अनुपम योजना द्वारा पाठकों को रस से सराबोर कर देने की सामर्थ्य रखता है, अन्यथा सभी कवि कालिदास ही क्यों न हो गए होते?

अप्रस्तुत योजना जादू की वह छड़ी है, जो यदि ठीक से घुमाते बने तो सभी पाठक-दर्शकों को मुग्ध कर दें। यदि मदारी का पूर्ण नियन्त्रण इस जमूरे पर हो तो वह इससे जो चाहे कहलवाकर पाठक-दर्शक को आश्चर्यचकित बनाए रखे। यह वह युक्ति है, जिससे कवि-जादूगर चाहे स्याहा का सफेद करे, चाहे सफेद का स्याहा। कवि की कला की परख इसी अप्रस्तुत योजना की कसौटी पर की जाती है। अतः प्रत्येक कवि अपनी कविता को सँवारने के लिए जहाँ सूर्य भी नहीं पहुँच पाता, वहाँ जाकर, आकाश-पाताल एक कर नए-नए अप्रस्तुत जुटाता है और इन अप्रस्तुतों को प्रस्तुत करने के लिए सरस, मार्मिक और नित्य-नवीन प्रणालियों का अन्वेषण करता है। केशवदास लिखते हैं—

> पंजर पै खंजरीट नैनन को केशवदास,
> कैधौं मीन मानस का जलु है कि जारु है।
> अंग को कि अंगराग गेंडुआ कि गलसुई,
> किधौं कोटि जीव ही को उर को कि हारु है।
> बंदन हमारो कामकेलि को, कि ताड़िबे को,
> ताजनो विचार को, कै व्यजन विचारु है।
> मान की जमनिका के कंजमुख मूँदिबे को,
> सीता जू को उत्तरीय सब सुख सारु है॥[1]

यहाँ सीता की ओढ़नी के लिए नेत्र रूपी खंजनों का पिंजड़ा, मन-मीन का जल, सुगंधित लेप, तकिया, गलसुई, जीव का रक्षा कारक कोट, हृदय का शोभाप्रद हार, कामकेलि के समय हाथों का बन्धन, रति को उत्तेजित करने का कोड़ा, मान

१. लाला भगवानदीन : 'केशव-कौमुदी', १।२।६२।

के समय मुख मूँदने का पर्दा, सब सुखों का मूल—अप्रस्तुत लाये गए हैं। इनसे अभिव्यक्ति का सौन्दर्य कहीं बढ़ गया है। बिहारी कृष्ण के कुण्डलों का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

मकराकृति गोपाल के, कुण्डल सोहत कान।
धस्यौ समर हिय गढ़ मनो, ड्योढ़ी लसत निसान।।[1]

कृष्ण के कानों में कुण्डल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है, मानो कामदेव तो कृष्ण के हृदय-गढ़ में प्रविष्ट हो गया है और उसकी ध्वजा कुण्डल के रूप में बाहर फहरा रही है। यहाँ कामदेव और उसकी ध्वजा अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत की सौन्दर्य-वृद्धि की गई है। बिहारी नायिका के नेत्रों का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

सायक सम मायक नयन, रगे त्रिविध रंग गात।
झखौ विलखि दुरी जात जल, लखि जलजात लजात।।[2]

यहाँ नेत्रों को संध्या कहा गया है। संध्या में प्रकाश के श्वेत, अंधकार के श्याम और लालिमा के लाल रंगों का मिश्रण होता है। नेत्रों में भी पुतली के चारों ओर श्वेत रंग है, पुतली काली है और डोरे लाल। नेत्रों को देखकर मछली पानी में छिप गई और कमल संकुचित हो गये। संध्या होते ही मछली गहरे पानी में बैठ जाती है और कमल सिकुड़ जाता है। इस प्रकार संध्या अप्रस्तुत के प्रयोग के कारण पूरी अभिव्यक्ति में 'चार चाँद' लग गए हैं। नायक की अनासक्ति का वर्णन विहारी इस प्रकार करते हैं—

विरह-बिथा जल परस बिन, बसियत मो हिय ताल।
कछु जानत जलथंभ विधि, दुरजोधन लौं लाल।।[3]

हे लाल! जान पड़ता है, तुम भी दुर्योधन की तरह जलथम्भ विद्या जानते हो, क्योंकि तुम मेरे हृदय-ताल में बसते हो, किन्तु विरह-व्यथा के जल का स्पर्श तुमसे नहीं होता। यहाँ दुर्योधन की 'जलस्थंभ विद्या' अप्रस्तुत द्वारा सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार बिहारी की कुछ अप्रस्तुत योजनाएँ ऐसी हैं, जहाँ अप्रस्तुत-शैली द्वारा सौन्दर्य-वृद्धि की गई है, जैसे—

कन देबो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटे लगि लग्यौ, मांगन सब जग आनि।।[4]

बहू को छोटे हाथों वाली जानकर ससुर ने भिक्षा देने का काम सौंपा, यह

१. लाला भगवानदीन : 'विहारी-बोधिनी', दोहा १६।
२. „ „ : 'विहारी-बोधिनी', दोहा ५३।
३. „ „ : „ दोहा ५३५।
४. „ „ , दोहा १६१।

कि इससे कम खर्च होगा, किन्तु हुआ उसका उलटा। रूपदर्शन के लालच में पड़कर सारा संसार ही उसके द्वार पर भिक्षा माँगने आने लगा। यहाँ अप्रस्तुत-सामग्री का नहीं, अपितु वर्णन-शैली का सौन्दर्य है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है—

विरह विकल बिनु ही लिखी, पाती दई पठाय।
आंक बिहीनीयो सुचित, सूनै बांचत जाय॥[1]

नायिका ने विरह-व्याकुलता के कारण बिना लिखी ही चिट्ठी भेज दी। अक विहीन-पत्र को भी नायक एकान्त में पढ़ता चला जा रहा है। यहाँ अप्रस्तुत शैली के चमत्कार द्वारा विरह-विकलता की अभिव्यक्ति का सौन्दर्य-प्रसाधन किया गया है। वर्षा-वर्णन में सेनापति लिखते हैं—

घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौ रवि गयौ खोइ कै।
चारि मास भरि श्याम निसा के भरमकरि,
मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ कै॥[2]

वर्षा ऋतु में घने बादलों में सूर्य छिप जाता है, जिससे अन्धकार व्याप्त हो जाता है और रात्रि का भ्रम होने लगता है। इसी भ्रम में पड़कर विष्णु भी चार महीने सोया करते हैं। पुराणों के अनुसार आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन भगवान विष्णु शेष-शय्या पर सोते हैं, और फिर कार्तिक की प्रबोधिनी एकादशी को उठते हैं। यही चार महीने वर्षा के दिन भी हैं। यहाँ अप्रस्तुत-प्रयोग द्वारा अभिव्यक्ति को सौन्दर्य प्रदान किया गया है। चन्द्रमा के कलंक का वर्णन सेनापति इस प्रकार करते हैं—

बढ़ती के राखे, रैनि हू ते दिन ह्वै है, यातैं,
आमरी मयंक तैं कला निकासि लीनी है।[3]

ब्रह्मा ने चन्द्रमा को सम्पूर्ण कलाओं का भण्डार नहीं बनाया। उन्हें भय था यदि चन्द्रमा में अनेक कलायें हो गई तो दिन ही दिन रहेगा, रात्रि होगी ही नहीं। अतः उन्होंने चन्द्रमा की कुछ कलायें निकाल लीं, जिसके कारण चन्द्र कलंक दिखाई दे रहा है। यहाँ वर्णन-शैली द्वारा कलंक की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य-वृद्धि की गई है। रत्नाकर जी लिखते हैं—

---

१. लाला भगवानदीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा ५३६।
२. पं० उमाशंकर शुक्ल : 'कवित्त-रत्नाकर', तीसरी तरंग, पद सं० ३१।
३. ,, : ,, ,, ,, पद सं० ४१

छेदि-छेदि छाती छलनी के बैन-बाननि सौं,
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहा ।[१]

गोपियाँ ऊधो से कहती है कि आपने अपनी वाणी के बाण से हमारे हृदय को तो छेद दिया है, अब उसमें धैर्य का जल कैसे धारण किया जाय ? वास्तव मे, यदि फूटे बर्तन में जल रख भी दिया जाय, तो थोड़ी ही देर में बह जायेगा। यहाँ भी अप्रस्तुत प्रयोग द्वारा कथन में सौन्दर्य वृद्धि की गई है। 'हरिऔध' जी विरहिणी गोपियों के बारे में लिखते हैं—

सोधे डूबी अलक जब है श्याम की याद आती ।
ऊधो मेरे हृदय पर तो सांप है लोट जाता ॥[२]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत 'साँप लोटना' में ही सौन्दर्य सन्निहित है । यह एक मुहावरा भी है तथा सांप अलकों का अप्रस्तुत भी है । श्रद्धा के सौंदर्य-वर्णन में कवि प्रसाद कहते हैं—

कुसुम कानन अंचल में मन्द, पवन प्रेरित सौरभ साकार ।
रचित परमाणु पराग शरीर, खड़ा हो ले मधु का आधार ॥[३]

कानन के पुष्प से निकली सुगंध ही मानो साकार हो गई है । उसका शरीर परमाणु से विरचित है और मधु का आधार लेकर खड़ा है । यहाँ श्रद्धा के सौंदर्य की अभिव्यक्ति सुगन्ध, पराग और मधु अप्रस्तुतों के कारण सुन्दरतर बन गई है। प्रसाद जी युवावस्था का वर्णन करते हैं—

नीरव निशीथ में लतिका सी, तुम कौन आ रही हो बढ़ती ।
कोमल बाहें फैलाए सी, आलिंगन का जादू पढ़ती ॥[४]

नीरव निशीथ में लता के समान आलिंगन का जादू पढ़ती हुई, कोमल बाहे फैलाये हुए तुम कौन बढ़ती चली आ रही हो ? प्रसिद्धि है कि रात्रि में लताएँ बढ़ जाती हैं। 'लता' अप्रस्तुत के कारण यहाँ उक्ति का सौन्दर्य बढ़ गया है। प्रसाद जी लज्जा का वर्णन करते हैं—

लाली बन सरस कपोलों में, आँखों में अंजन सी लगती ।
कुंचित अलकों सी घुंघराली, मन की मरोर बनकर जगती ॥[५]

१. 'रत्नाकर' : 'उद्धव-शतक', छन्द ३८ ।
२. 'हरिऔध' : 'प्रियप्रवास', पृ० १२१ ।
३. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० ४९ ।
४. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० ९७ ।
५. ,, : 'कामायनी', पृ० १०३ ।

यहाँ लज्जा के लिए लाली, अंजन, अलक और मन की मरोर अप्रस्तुत लाए गए हैं। इनसे अभिव्यक्ति अपूर्व में सौन्दर्य आ गया है। इड़ा के वर्णन में प्रसाद जी कहते हैं—

ममता की क्षीण अरुण रेखा, खिलती है तुममें ज्योतिकला।
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुम चूर्ण भला॥[1]

इड़ा ममता की क्षीण, अरुण रेखा है, जिसमें ज्योति-कला खिलती है। वह जैसे सुहागिनी की लहराती अलकों में कुंकुम चूर्ण सुशोभित हो। यहाँ क्षीणरेखा, कुंकुम चूर्ण अप्रस्तुतों से सौन्दर्य वृद्धि हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कविगण अप्रस्तुतों को लाकर अभिव्यक्ति का सौन्दर्य साधन करते हैं।

(२) प्रभावान्विति :

प्रत्येक कवि का यह प्रयास होता है कि उसके काव्य का अधिक-से-अधिक प्रभाव पाठक पर पड़े। अतः अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए कवि अपने काव्य में अप्रस्तुतों का प्रयोग करता है। अप्रस्तुत-प्रयोग द्वारा जो कवि जितने बड़े दायरे का प्रभाव व्यक्त करता है, वह उतना ही महान् कवि होता है। वास्तव में अप्रस्तुत और प्रस्तुत शरीर और आत्मा सदृश है। यदि शरीर स्वस्थ होगा, चुस्त होगा तो आत्मा भी प्राणवान् होगी। वर्षा-वर्णन में केशवदास लिखते हैं—

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर में मंद चन्द्र प्रभा सम नीसी॥[2]

यहाँ वर्षा को अत्रि पत्नी अनुसूया कहकर प्रभाव को बढ़ा दिया गया है। जैसे अनुसूया के गर्भ में सोम की प्रभा थी, वैसे ही इस वर्षा में भी बादलों मे चन्द्रप्रभा छिपी है। मुद्रिका के लिए केशवदास लिखते हैं—

सुखदा सिखदा अर्थदा, यशदा रसदातारि।
रामचन्द्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥[3]

यहाँ मुद्रिका को गुरु-स्त्री कहने से प्रभाव द्विगुणित हो गया है। गुरु-स्त्री के समान मुद्रिका भी सुख, शिक्षा, अर्थ, यश और रस प्रदान करने वाली है। नायिका के मुख वर्णन में विहारी कहते हैं—

---

१. प्रसाद : 'कामायनी', पृ० १६९।
२ दीन : 'केशव-कौमुदी', १३।१८।
३. : ,, १३।८३।

पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास ॥[१]

उस घर के चारों ओर तिथि का ठीक पता नहीं चलता, केवल पत्रा से ही तिथि जानी जाती है, क्योंकि उसके मुख की कान्ति से वहाँ नित्य पूर्णिमा की चाँदनी छिटकी रहती है। चन्द्रमा मुख का रूढ़ अप्रस्तुत है, किन्तु कवि ने यहाँ 'पत्रा ही तिथि' कहकर प्रभाव को घनीभूत कर दिया है। नायिका द्वारा नायक के परिहास पर बिहारी कहते हैं—

छ्वै छिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाय ।
बलि वामन को ब्यौंत सुनि, को बलि तुम्हें पत्याय ॥[२]

यहाँ बलि-बामन की कथा द्वारा अतिरिक्त प्रभाव का सृजन किया गया है। वामन ने बलि से थोड़ा माँगकर सर्वस्व हर लिया, उसी प्रकार तुम भी छिगुनी छूकर पहुँचा पकड़ना चाहते हो। वामन के ही अवतार कृष्ण हैं—यह भी द्रष्टव्य है। इसी प्रकार मान के लिए बिहारी कहते हैं—

वाही निसि तें ना मिटो, मान कलह को मूल ।
भले पधारे पाहुने, ह्वै गुड़हर को फूल ॥[3]

यहाँ मान को गुड़हर का फूल कहकर प्रभाव वृद्धि की गई है। ऐसा लोक-विश्वास है कि जहाँ गुड़हर का फूल होता है, वहाँ झगड़ा कराता है। इसी लोक-विश्वास के कारण इस अप्रस्तुत का प्रभाव दूना हो गया है। विरह की ग्यारहवीं दशा मरण का बड़ा मार्मिक चित्र बिहारी ने खींचा है—

गनती गनिबे तें रहे, छत हू अछत समान ।
अब अलि ये तिथि औम लौं परे रहौ तन प्रान ॥[४]

नायिका के प्राण होकर भी नहीं के समान है। अब ये प्राण अवम तिथि की भाँति शरीर में पड़े मात्र हैं। अवम तिथि उसे कहते हैं, जिसकी हानि होती है। ऐसी तिथि पत्रा में लिखी तो जाती है, किन्तु उसका अस्तित्व दिखाई नहीं देता। यहाँ अवम तिथि अप्रस्तुत द्वारा अपूर्व प्रभाव की सृष्टि की गई है। इसी प्रकार सेनापति कहते हैं—

बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ ।[५]

---

१. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा १०२ ।
२. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा २३९ ।
३. ,, ,, दोहा ४४८ ।
४. ,, ,, दोहा ५३१ ।
५. पं० उमाशंकर शुक्ल : 'कवित्त-रत्नाकर', ३।२८ ।

विरहिणी गोपियों के लिए सावन की रातें भगवान् वामन का डग हो गई हैं। भगवान् वामन ने तीनों लोकों को तीन डगों में नाप लिया था। उन्हीं डगों के समान सावन की रातें भी असीम हो गई हैं। वहाँ वामन का डग अप्रस्तुत लाकर प्रभावान्विति की गई है। जाड़े के दिनों के बारे में सेनापति लिखते हैं—

जौ लौं कोक कोकी कौ मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरि कै।[1]

शिशिर ऋतु में दिन बहुत छोटा होता है। दिन की लघुता की व्यंजना कवि इस वर्णन-शैली द्वारा करता है। चकवा और चकई अलग-अलग नदी के दोनों तटों पर बैठकर विरह की रात काटते हैं, प्रातः होने पर पुनः मिल जाते हैं, किन्तु जाड़े के दिनों में उन्हें रात-दिन वियुक्त ही रहना पड़ता है, क्योंकि प्रातः होने पर चकवा चकई से मिलने के लिए चलता है लेकिन रास्ते में ही रात हो जाती है, अतः वह पुनः वापस लौट आता है। कवि ने इस अप्रस्तुत शैली द्वारा जाड़े के छोटे दिनों की अभूतपूर्व व्यंजना की है। कवि रत्नाकर कहते हैं—

कहै रत्नाकर गुविन्द-ध्यान धारैं हम,
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ।[2]

यहाँ ऊधौ के निर्गुण के लिए लाए गए 'ससा सींग' अप्रस्तुत से निराकार स्वरूप की प्रभाव वृद्धि हुई है। श्रद्धा के वर्णन में प्रसाद जी लिखते हैं—

या कि, नव इन्द्र नील लघु शृंग, फोड़कर धधक रही हो कान्त।
एक लघु ज्वालामुखी अचेत, माधवी रजनी में अश्रान्त॥[3]

नील आवरण के बीच श्रद्धा के गोरे शरीर का वर्णन है। नीले वस्त्रों के लिए इन्द्रनील पर्वत तथा शरीर की कान्ति के लिए ज्वालामुखी अप्रस्तुत लाया गया है। ज्वालामुखी अप्रस्तुत द्वारा शरीर की चमक के प्रभाव में निश्चित ही वृद्धि हुई है। नारी के महत्व के सम्बन्ध में प्रसाद जी कहते हैं—

नारी जीवन का चित्र यही, क्या? विकल रंग भर देती हो।
स्फुट रेखा की सीमा में, आकार कला को देती हो॥[4]

मानव-जीवन अस्फुट रेखा मात्र है, किन्तु नारी इस अस्फुट रेखा में रंग भर करके चित्र को जन्म दे देती है। यहाँ रेखा और रंग अप्रस्तुत द्वारा नारी के प्रभाव की वृद्धि की गई है। इसी प्रकार इड़ा के वर्णन में प्रसाद जी कहते हैं—

---

१. पं० उमाशंकर शुक्ल : 'कवित्त रत्नाकर' ३।५१।
२. रत्नाकर : 'उद्धव-शतक', छन्द ४४।
३. प्रसाद : 'कामायनी', पृ० ४७।
४. प्रसाद : 'कामायनी', पृ० १०५।

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल।
वह विश्वमुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड-सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान।
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवन रस-सार लिए।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिए।
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल।
चरणों में थी गति भरी ताल ॥[1]

इड़ा के इस चित्रण में कई अप्रस्तुत ऐसे आए हैं, जिनमें अद्भुत प्रभाव छिपा है। कवि अलकों को तर्क जाल कहता है। अलकें तर्कजाल की तरह छिटकी हैं और सम्मोहनपूर्ण हैं। जैसे प्रवीण तार्किक एक-एक तर्क देकर विपक्षी को अपने मत में फांस लेता है, उसी प्रकार इड़ा की अलकों पर दृष्टि पड़ते ही मन बन्धन मे पड़ जाता है। उसके नेत्र कमलपत्र के बने हुए दो चषक हैं और जैसे मधुपात्र से मदिरा ढाली जाती है, उसी प्रकार उनसे प्रेम और विराग दोनों टपकते है। मद्यप, मदिरा से प्रेम करता है तथा अन्य लोग घृणा। कुचों के लिए कवि ने ज्ञान-विज्ञान अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है, जो एक व्यापक प्रभाव अपने में समाहित किए है। उरोज इतने सुरम्य और सुडौल हैं कि भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों से जो बड़ी से बड़ी सिद्धि और आनन्द की उपलब्धि होती है, वह उसके सामने तुच्छ है। इसी प्रकार त्रिबली के लिए सत्, तम, रज, गुण अप्रस्तुत भी व्यापक प्रभाव से ओत-प्रोत है। बादलों के वर्णन में निराला जी कहते है—

आज बुझेगी व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास।[2]

यहाँ बादल अप्रस्तुत के रूप में अर्जुन का चित्र सामने लाकर अतिरिक्त प्रभाव का सृजन कर देता है। बादल धरती की प्यास बुझायेगा और अर्जुन श्यामा की काम-तृष्णा तृप्त करेंगे। संध्या के वर्णन में महादेवी जी लिखती हैं—

गुलालों से रवि का पथ लीप, जला पश्चिम में पहला दीप।
बिहंसती सन्ध्या भरी सुहाग, दृगों से झरता स्वर्ण पराग ॥[3]

यहाँ संध्या के लिए हुए अप्रस्तुत गुलाल, पथ, दीप, सुहाग, स्वर्ण और पराग संध्या के प्रभाव को कई गुना बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि

---

१. प्रसाद : 'कामायनी', पृ० १६८।
२. 'निराला' : 'परिमल', पृ० १८१।
३. महादेवी वर्मा : 'आधुनिक कवि', पृ० २६।

अप्रस्तुत प्रयोग से कवियों की अभिव्यक्ति कहीं अधिक प्रभावपूर्ण बन जाती है। वास्तव में अभिव्यक्ति की प्रभावान्विति के लिए अप्रस्तुत ब्रह्मास्त्र हैं। जहाँ मात्र प्रस्तुत हमारे हृदय का ऊपर से स्पर्श करके चलता बनता है, वहीं मार्मिक अप्रस्तुत हृदय के भीतर पलथी लगाकर बैठ जाता है।

(ग) अप्रस्तुत प्रयोग के प्रकार-भेद :

अप्रस्तुतों के प्रकार-भेद अनन्त हैं। आज तक के साहित्य में जितने रूपों मे अप्रस्तुतों का प्रयोग हुआ है, उनकी गणना कराना यद्यपि एक दुष्कर कार्य है, तथापि अधिकांश प्रकार-भेदों पर नीचे ध्यान देने का प्रयास किया गया है। अप्रस्तुतों के प्रकार-भेदों का वर्गीकरण हम निम्नलिखित दृष्टियों से कर सकते हैं—

(१) अप्रस्तुतों के आकार की दृष्टि से :

कुछ अप्रस्तुतों का आकार इतना छोटा होता है कि वे एक शब्द मे ही सीमित होते हैं और कुछ इतने विशाल होते है कि पूरे प्रबन्ध में व्याप्त होते हैं। शब्दगत अप्रस्तुतों में उपमान और लक्षणा, व्यंजना शैलियों के अप्रस्तुत मुख्य हैं। जैसे—

> कोमल किसलय के अंचल में, नन्हीं कलिका ज्यों छिपती-सी।
> गोधूली के धूमिल पट में, दीपक के स्वर में दिपती सी॥[1]

यहाँ कलिका और दीपक अप्रस्तुत शब्दगत है। कुछ अप्रस्तुत वाक्यांशगत होते हैं। इनमें कुछ उपमान और मुख्य हैं, जैसे—

> सखि सोहत गोपाल के, उर गुंजन की माल।
> बाहर लसित मनो पिए, दावानल की ज्वाल॥[2]

यहाँ 'दावानल की ज्वाला' वाक्यांशगत अप्रस्तुत है। कुछ अप्रस्तुत वाक्यगत होते हैं। ऐसे अप्रस्तुतों में उदाहरण, दृष्टान्त, लोकोक्तियाँ मुख्य है। जैसे—

> कहत न देवर कुबत, कुलतिय कलह डराति।
> पंजरगत मजार ढिग, सुक लौं सूकत जाति॥[3]

यहाँ 'बिल्ली के पास रक्खा हुआ पिंजड़े का तोता' अप्रस्तुत वाक्यगत है। इसी प्रकार कुछ अप्रस्तुत प्रसंगगत होते हैं। जैसे सूरसागर का 'मुरली माहात्म्य-प्रसंग', 'नैन समय के पद', 'भ्रमरगीत' प्रसंग आदि। कुछ अप्रस्तुत पूरे प्रबन्ध में व्याप्त होते हैं, जैसे जायसीकृत पद्मावत में आत्मा-परमात्मा अप्रस्तुत आदि से अन्त तक व्याप्त है।

---

१. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० ९७।
२. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा सं० ६।
३. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा ५९५।

(२) व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से :

व्याकरणिक रूपों की दृष्टि से अधिकांश अप्रस्तुत संज्ञागत होते हैं। जैसे—

चिर निराशा नीरधर से, प्रतिच्छायित अश्रुसर से।
मधुप मुखर मरंद मुकुलित, मैं सजल जलजात रे मन ॥[१]

यहाँ बादल, सरोवर, मधुप, कमल संज्ञागत अप्रस्तुत हैं। कुछ अप्रस्तुत विशेषणगत होते हैं। जैसे—

कौन तुम हो बसन्त के दूत, विरस पतझड़ में अति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला-सी रेख, तपन में शीतल मन्द बयार।
नखत की आशा किरण समान, हृदय के कोमल कवि की कान्त।
कल्पना की लघु लहरी दिव्य, कर रही मानस हलचल शान्त ॥[२]

'विरस पतझड़ में बसन्त के दूत' से प्रकट होता है कि बसन्तागमन के समान तुम मेरे नीरस जीवन में सुख-संचार के आशा स्वरूप हो। जैसे घने अंधकार मे बिजली की एक लकीर ज्योति छिटका जाती है, वैसे मेरे मन का अंधकार तुमसे दूर हो रहा है। ग्रीष्म में शीतल मंद-पवन जैसी तुम सुखदायक प्रतीत हो रही हो। तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शान्त हो जाती है, जैसे कवि का कोमल हृदय एक छोटी-सी सुन्दर कल्पना की लहर उठने से शांत हो जाता है। श्रद्धा के ऊपर आरोपित ये सभी विशेषण अप्रस्तुत के रूप में ही प्रयुक्त होकर अपनी सार्थकता प्रकट कर रहे हैं। कुछ अप्रस्तुत क्रियागत होते हैं। जैसे—

मोर मुकुट टाटी मनौ, यह बैठनि ललित त्रिभंग।
चितवनि लकुट, लास लटकनि पिय, कांपा अलक तरंग ॥[३]

यहाँ बैठगि, चितवनि क्रियाएँ अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुई हैं। इसी प्रकार 'अपनौ बोय, आप लुनौ तुम, आपै ही निखारौ' (सूरसागर पद ४५२२) में बौना, काटना और निखारना क्रियायें अप्रस्तुत हैं। कुछ अप्रस्तुत क्रिया-विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'बिना मोल बिकना' (सूरसागर पद १२८१) में 'बिना मोल' अप्रस्तुत 'बिकना' क्रिया का विशेषण है। इसी प्रकार 'चाम के दाम चलाना' (सूरसागर पद ४६४४) में 'चाम के दाम' अप्रस्तुत 'चलाना' क्रिया का विशेषण है।

(३) वर्णन-शैली की दृष्टि से :

वर्णन-शैली की दृष्टि से अधिकांश अप्रस्तुत अलंकारगत होते हैं। विभिन्न अर्थालंकारों में इनका प्रयोग होता है, जैसे—

---

१. प्रसाद : 'कामायनी', पृ० २१७।
२. ,, : 'कामायनी', पृ० ५०।
३. सूरसागर, पद २८९०।

खौरि पनच, भृकुटी धनुष, बधिक समर तजि कानि।
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि भाल भरि तानि ॥ [1]

यहाँ पनच, धनुष, बधिक, मृग, सर आदि अप्रस्तुत रूपक शैली में प्रयुक्त हुए हैं। अलंकारों के अतिरिक्त कुछ अप्रस्तुत लक्षण, व्यंजना शब्द-शक्तियों में प्रयुक्त होते हैं, जैसे—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ मैं शालीनता सिखाती हूँ।
मतवाली सुन्दरता पग में, नूपुर सी लिपट मनाती हूँ ॥

यहाँ 'मतवाली सुन्दरता पग में' का अर्थ है मस्ती में झूमने वाली सुन्दरियों की गतिविधि। लज्जा कहती है—जैसे नूपुर नृत्य काल में ताल-गति के अनुरूप पाद-विक्षेप को संयम प्रदान करते हैं, मस्ती में घूमने वाले चरणों पर नियंत्रण रखते हैं, वैसे ही सुन्दरियों का यौवन मेरे बंधन के कारण बहकने नहीं पाता। मतवाली सुन्दरता और नूपुर के लक्ष्यार्थ में अप्रस्तुत का सौंदर्य सन्निहित है। व्यंजन शक्ति के रूप में भी अप्रस्तुतों का प्रयोग होता है जैसे 'आए जोग सिखावन पाड़े' (सूरसागर पद ४२२२)। यहाँ 'पाँड़े' में जो व्यंजना है, वही अप्रस्तुत है। कुछ अप्रस्तुत प्रतीक के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। सूरसागर का पूरा भ्रमरगीत प्रसंग प्रतीक योजना पर ही टिका है। प्रतीक-पद्धति में प्रसाद जी लिखते हैं—

दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात। [3]

यहाँ सुख और दुःख के प्रतीक दिन, रात अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार कुछ अप्रस्तुत मुहावरों और कहावतों के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे—

सूरदास के प्रभु तन मेरौ, ज्यों भयौ हाथ पाथर तर को। [4]

यहाँ 'पत्थर के नीचे का हाथ' मुहावरा है, किन्तु अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुआ है। तथा—

छवैछिगुनी पहुँचो गिलत, अति दीनता दिखाय।
बलि बामन को ब्यौंत सुनि, को बलि तुम्हें पत्याय ॥ [5]

'छिगुनी छूकर पहुँचा पकड़ना' एक मुहावरा है, किन्तु इसका प्रयोग यहाँ अप्रस्तुत के रूप में हुआ है। अनेक अप्रस्तुतों का प्रयोग कहावतों के रूप में भी होता है। जैसे—

---

१. दीन : 'बिहारी बोधिनी', पृ० ४९।
२. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० १०३।
३. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० ५३।
४. सूरसागर, पद २५३४।
५. दीन : 'बिहारी-बोधिनी' दोहा २३९।

ज्यों गजराज काज के औरै, औरै दसन दिखावत ।[१]

'हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और' एक कहावत है, किन्तु यहाँ अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुई है। तथा —

पिय मन रुचि ह्वैबो कठिन, तन रुचि होत सिंगार ।
लाख करौ आँखि न बढ़ै, बढ़ै बढ़ाए बार ।।[२]

'बाल बढ़ते हैं आँख नहीं' यह एक कहावत है, किन्तु यहाँ अप्रस्तुत के रूप मे प्रयुक्त हुई है। इसी प्रकार—

बहकि न इहि बहिनापने, जब तब वीर विनासु ।
बचै न बड़ी सबील हू, चील्ह घोंसुआ मांसु ।।[3]

'चील्ह के घोंसले में मांस नहीं बचता' यह एक कहावत है, जो यहाँ अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त हुई है।

(४) समाज की दृष्टि से :

समाज की दृष्टि से अप्रस्तुत दो प्रकार के होते हैं -- नागरीय जीवन से ग्रहीत अप्रस्तुत नागर कवियों में अधिक मिलते हैं। जैसे—

सरल सुमिल चित तुरंग की, कटि कटि अमित उठान ।
गोय निबाहे जीतिये, प्रेम खेल चौगान ।।[४]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत 'चौगान का खेल' नागरीय जीवन से लिया गया है। इसी प्रकार—

मै तपाय त्रयताप सों, राख्यौ हियौ हमाम ।
मकु कबहूँ आवै इहाँ, पुलक पसीजे स्याम ।।[५]

यहाँ हृदय के लिए लाया गया 'हमाम (गुसलखाना)' अप्रस्तुत नागरीय है। ग्राम्य जीवन के लिए गए अप्रस्तुत अधिक मार्मिक और बोधगम्य होते है, क्योंकि इनका सम्बन्ध जन-जीवन से होता है । जैसे—'ज्यौं सिवछत दरसन रवि पाएं, तेहीं गरति गरयौ' (सूरसागर पद २५३१) यहाँ लाया गया 'शिवछत्र (कुकुरमुत्ता)' अप्रस्तुत ग्राम्य है। इसी प्रकार 'चित मैं और कपट अन्तरगति ज्यौं फलखीर नीर चिकनाई (सूरसागर पद ४५३८)। यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत 'खीरा फल' भी ग्राम्य जीवन से लिए जाने के कारण अधिक बोधगम्य है । तथा— 'जैसे जव के अग्र ओस-कन, प्रान रहत ऐसेहिं अवधिहि तट' (सूरसागर पद

१. सूरसागर, पद ४२६५
२. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा २६७ ।
३. ,, : ,, दोहा २७३ ।
४. ,, : ,, दोहा ३५० ।
५. दीन : ,, दोहा ४१८ ।

४७४०) यहाँ पर लाया गया अप्रस्तुत 'जौ कै टूंड़ पर ओस-कण' ग्राम्य जीवन से ग्रहण किया गया है। विरही नेत्रों के लिए बिहारी लिखते हैं—

हरि छबि-जल जब तें परे, तब ते छिन बिछुरै न।
भरत, ढरत, बूड़त फिरत रहंट घरी लौं नैन ॥[1]

यहाँ, आँसू भरे नेत्रों के लिए 'रहंट-घरी' अप्रस्तुत लाया गया है। यह भी ग्राम्य जीवन से ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार मान के वर्णन में बिहारी लिखते हैं—

अनरस हू रस पाइये, रसिक रसीली पास।
जैसे साठे की कठिन गांठी भरी मिठास ॥[2]

यहाँ मान के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत 'साँठ (ऊख) की गाँठ' ग्राम्य अप्रस्तुत है।

(५) मौलिकता की दृष्टि से

मौलिकता की दृष्टि से कुछ अप्रस्तुत परम्परागत होते हैं, कुछ अर्द्धमौलिक और कुछ नितान्त मौलिक। परम्परागत अप्रस्तुत प्राचीन काल से ही विशिष्ट अर्थ मे रूढ़ हो गये हैं। ये अप्रस्तुत कवि समय-सिद्ध होते हैं। मीठी वाणी के लिए अमृत, रसाल, ऊख, कोयल, कपट की प्रीति के लिए भ्रमर, एकपक्षीय प्रीति के लिए पतिंगा, चकोर, जीवन के लिए मृग आदि अप्रस्तुत परम्परागत हैं, अर्थात् कविगण इनका, इन्हीं अर्थों में प्रयोग करते ही आये हैं। इन रूढ़ अप्रस्तुतों में मानव अंगों के लिये लाये गये अप्रस्तुत मुख्य हैं, गति के लिए गज, हंस, जाँघ के लिए कदली, हाथी की सूंड़, कटि के लिए सिंह, कुचों के लिए शिव, कमल, चक्रवाक, हाथों के लिए कमल, सर्प, मुख के लिए चन्द्रमा, कमल, नाक के लिए कीर, भौंह के लिए धनुष, आँख के लिए कमल, मीन, खंजन, मृग तथा केश के लिए साँप, सिंवार इसी प्रकार के परम्परागत अप्रस्तुत हैं। अर्द्धमौलिक अप्रस्तुतों में वे अप्रस्तुत आते हैं जो होते तो हैं परम्परागत किन्तु उनका प्रयोग मौलिक शैली में किया जाता है। जैसे—

भुज भुजंग, सरोज नयननि, वदन विधु जित्यौ लरनि।
रहे विवरनि, सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि ॥[3]

अर्थात् लड़ाई में प्रभु की भुजाओं ने सर्पों को नेत्रों ने कमलों को तथा

---

१. दीन : बिहारी-बोधिनी', दोहा १४२।
२. दीन : बिहारी-बोधिनी', दोहा ४४६।
३. गोस्वामी तुलसीदास : 'गीतावली,' बालकाण्ड, पद २७
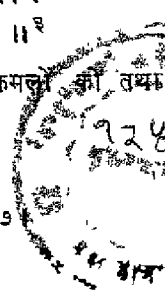
मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया है। इसी से वे क्रमशः विल, जल तथा आकाश में जा बसे हैं। तीनों अप्रस्तुत परम्परागत हैं, किन्तु गोस्वामी जी ने यहाँ पर इनका प्रयोग मौलिक शैली में किया है। प्रसाद जी लिखते हैं—

मैं जमी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुज-लता फँसाकर नर-तरु से, झूले सी झोंके खाती हूँ॥[1]

भुजा के लिए लता अप्रस्तुत परम्परामुक्त है, किन्तु इसका प्रयोग यह नवीन शैली में हुआ है। इसी प्रकार—

करतल परस्पर शोक से उनके स्वयं घर्षित हुए।
तब विस्फुरित होते हुए भुजदंड यों कर्षित हुए॥
दो पद्म शुंडों में लिए दो शुंड वाला गज कहीं।
मर्दन करे उनको परस्पर तो मिले उपमा कहीं॥[2]

हाथ के लिए पद्म और भुजा के लिए गज शुंड अप्रस्तुत परम्परागत हे, किन्तु यहाँ इनका प्रयोग मौलिक शैली में हुआ है।

मौलिक अप्रस्तुत वे हैं, जिनका प्रयोग पूर्व साहित्य में कभी न हुआ हो। मौलिक अप्रस्तुत जुटाना एक दुष्कर कार्य है, जो प्रतिभा सम्पन्न कवि के लिए ही सुकर हो सकता है। सूरदास लिखते हैं—'जलहिं निकट की बारू जैसें, ऐसी कठिन तिया की प्रकृतिहि, कर ही कर पघिलाइहौ' (सूरसागर, पद ३३७८) यहाँ नारी स्वभाव के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'जल के निकट की बालू' नितान्त मौलिक है। तथा—

कदली दल सी पीठि मनोहर, मानो उलटि ठई।[3]

विरहिणी गोपियों की पीठ के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'उल्टा कदली दल' सर्वथा मौलिक है। गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं—

अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्यौंत करै बिरहा दरजी।[4]

यहाँ विरह और शरीर के लिये लाये गये अप्रस्तुत दरजी और ब्यौंत नितान्त नवीन हैं। बिहारी लिखते हैं—

खरे अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रास।
दुसह संक विष की करै, जैसे सोंठि मिठास॥[5]

---

१. 'प्रसाद' : 'कामायनी' पृ० १०५।

२ मैथिलीशरण गुप्त : 'जयद्रथ वध', पृ० ३३।

३. सूरसागर, पद ४०२२।

४. तुलसीदास : 'कवितावली', उत्तरकाण्ड, पद १३३।

५. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा ४५४।

यहाँ नायिका के अदब के साथ इठलाने के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'सोंठ की मीठी किन्तु जहरीली गाँठ' सर्वथा नवीन है। सोंठ में कुछ गाँठें ऐसी होती है, जो मीठी तो होती हैं, किन्तु विषैली भी होती हैं। आगे बिहारी लिखते हैं—

छतौ नेह कागद हिए, भई लखाइ न टांक।
बिरह तचे उघर्‌यौ सु अब, सेहुँड़ को सो आँक ॥[1]

हृदय रूपी कागज पर प्रेमाक्षर लिखे हुए थे, लेकिन लिखावट जान नहीं पडती थी। अब विरह रूपी अग्नि से तपाए जाने पर वह प्रेम सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अक्षरों की तरह स्पष्ट हो गया। सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर जान नहीं पड़ते, किन्तु कागज की आँच पर सेंकने से अक्षर स्पष्ट हो जाते हैं। यहाँ 'सेहुँड़ के दूध से लिखे हुए अंक' अप्रस्तुत सर्वथा मौलिक है। ऊधौ के लिए रत्नाकर लिखते हैं—

कहै रतनाकर मलीन मकरी लौं नित,
आपुनौहीं जाल अपने हीं पर तानौं तुम ॥[2]

यहाँ लाया गया मकड़ी अप्रस्तुत नितान्त मौलिक है। प्रसाद जी लिखते है—

उस रम्य फलक पर नवल चित्र सी प्रकट हुई सुन्दर बाला।
वह नयन महोत्सव की प्रतीक अम्लान नलिन की नवमाला ॥[3]

यहाँ ऊषा के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत 'फलक पर नया चित्र' सर्वथा मौलिक है।

(६) अप्रस्तुतों के गुण स्वभाव की दृष्टि से

अप्रस्तुतों के कुछ अपने गुण और स्वभाव होते हैं। स्वभाव के अनुसार अप्रस्तुत प्रयोग के चार प्रकार दिखाई देते हैं।

मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत

मूर्त वस्तुओं के लिए मूर्त वस्तुओं को ही अप्रस्तुत बनाया जाता है, जैसे—

सुन्दर पटपीत बिसद भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून रचित त्रिविध विधि बनाई।
तरु तमाल अधबिच, त्रिविध कीर पाँति रुचिर,
हेमजाल अन्तर परि तातें न उड़ाई ॥[4]

---

१. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा ५०४
२ रत्नाकर : 'उद्धव शतक', छन्द ९३
३. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० १६८
४ तुलसीदास 'गीतावली , पद ३

यहाँ कृष्ण के लिए तमाल-तरु, तुलसीमाला के लिए शुकपंक्ति, पीताम्बर के लिए हेमजाल अप्रस्तुत आये हैं। ये सभी मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत हैं।

मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरु।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत ॥[1]

यहाँ बिन्दी के लिए मंगल, मुख के लिए चन्द्रमा तथा केसर आड़ के लिए गुरु अप्रस्तुत आये हैं। सभी प्रस्तुत, अप्रस्तुत मूर्त है।

सुना यह मनु ने मधु गुंजार, मधुकरी का-सा जब सानन्द।
किए मुख नीचा कमल समान, प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द ॥[2]

यहाँ श्रद्धा के लिए मधुकरी, मुख के लिए कमल अप्रस्तुत मूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत हैं।

अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत

अमूर्त भावों के लिए अमूर्त अप्रस्तुत लाना कवि की प्रतिमा का परिचायक है। यह सर्वसाध्य नहीं है, फिर भी कवियों ने प्रयास करके अमूर्त भावों के लिए अमूर्त अप्रस्तुत जुटाया है, जैसे—

निकसत नहिं अंग है हरि, जतनानि करि हारे।
फैलि जाइ अंग जैसें, नसनि के निकारे ॥[3]

यहाँ कृष्ण रूप के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'नस समूह' अमूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत है।

बरनत केशव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥[4]

यहाँ अन्धकार के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'बुरे मनुष्य की सेवा' अमूर्त भाव के लिए अमूर्त प्रस्तुत है।

चंचल किशोर सुन्दरता की, मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ, जो बनती कानों की लाली ॥[5]

यहाँ लज्जा के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'मसलन' अमूर्त का अमूर्त अप्रस्तुत है।

---

१. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा १२४
२. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० ४५
३. सूरसागर', पद सं० ४२००
४ दीन : 'केसव-कौमुदी' १३।२१
५ प्रसाद कामायनी, पृ० १०३

मूर्त के लिए अमूर्त प्रस्तुत

मूर्त वस्तुओं के लिए कभी-कभी अमूर्त अप्रस्तुत जुटाए जाते हैं, जैसे—

मनमत्थ बिराजत सोम तरे।
जनु भासत दानहि लोभ धरे॥[1]

यहाँ हाथी पर बैठे हुये राम के लिए 'दान को मस्तक पर धारण किये हुये लोभ' अप्रस्तुत मूर्त के लिए अमूर्त अप्रस्तुत है।

तोपर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान॥[2]

यहाँ राधा के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'उरबसी (धुकधुकी)' मूर्त भाव के लिए अमूर्त अप्रस्तुत है।

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में॥[3]

यहाँ नारी के लिए 'श्रद्धा' अप्रस्तुत मूर्त का अमूर्त अप्रस्तुत है।

कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए,
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौं।[4]

नेत्र और वाणी के लिए लाया गया अप्रस्तुत उदास अर्थ मूर्त का अमूर्त अप्रस्तुत है।

अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत

अमूर्त भावों की बोधगम्यता के लिए मूर्त अप्रस्तुत भी जुटाए जाते हैं, जैसे -

अब तौ बात फैलि भई बीज बट की।[5]

यहाँ बात फैलने के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'बटबीज' अमूर्त का मूर्त अप्रस्तुत है।

खल बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत कुठार।
आलबाल उर झालरी, खरी प्रेम तरु डार॥[6]

यहाँ निन्दा के लिए 'कुठार' और प्रेम के लिए 'तरु' अप्रस्तुत लाए गए हैं। ये अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत हैं।

---

१. दीन : 'केशव कौमुदी', ८।१५
२. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा २५६
३. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० १०६
४. 'रत्नाकर' : 'उद्धव-शतक', छन्द १०३
५. 'सूरसागर' : पद सं० २२७८
६. दीन : 'बिहारी-बोधिनी' दोहा २१२

प्रेम रस रुचिर विराग-तूमड़ी मैं पूरि,
ज्ञान गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै ।[1]

यहाँ विराग के लिए तुमड़ी, ज्ञान के लिए गुदड़ी, प्रेम के लिए रत्न अप्रस्तुत अमूर्त भावों के लिए मूर्त अप्रस्तुत हैं ।

तो चकित निकल आई सहसा, जो अपने प्राची के घर से ।
उस नवल चन्द्रिका से बिछले, जो मानस की लहरों पर से ।।[2]

यहाँ लज्जा के लिए लाया गया अप्रस्तुत चन्द्रिका अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत है । गुण के अनुसार भी अप्रस्तुतों के अनेक प्रकार-भेद और रूप-रंग दिखाई देते हैं—ऐसे कुछ रूपों पर यहाँ विचार किया जा रहा है ।

सामयिक अप्रस्तुत

जिस परिवेश में कवि अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करता है, उसका प्रभाव कवि पर पड़ना स्वाभाविक है । उस विशेष परिवेश से कवि कुछ अप्रस्तुतों को ग्रहण करता है, जिन्हें सामयिक अप्रस्तुत की संज्ञा दी जा सकती है । जैसे—

नरगिस फूल विलोकि समाना । ओहि लोचन के ध्यान भुलाना ।।[3]

यहाँ नेत्रों के लाया गया 'नरगिस' अप्रस्तुत सामयिक है । सूफी कवियों ने फारसी के प्रभाव से ऐसे अनेक अप्रस्तुत ग्रहण किया है, राम-नाम महात्म्य के लिए गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं—

रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
नामु राम ! रावरो तौ चाम की चलाई है ।[4]

यहाँ रामनाम-माहात्म्य के लिए लाया गया अप्रस्तुत चमड़े का सिक्का, सामयिक है । कवि बिहारी लिखते हैं—

बाल छबीली तियन में, बैठी आपु छिपाय ।
अरगट ही फानूस-सी, परगट परै लखाय ।।[5]

यहाँ घूँघट के भीतर के मुख के लिए 'फानूस के भीतर का दीपक' अप्रस्तुत सामयिक है । फानूस मुगलकालीन राज दरबार की समृद्धि का द्योतक है । आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ अनेक वैज्ञानिक अप्रस्तुत भी साहित्य में ग्रहण किए जा रहे हैं । ऐसे अप्रस्तुतों को सामयिक अप्रस्तुत कहा जायगा ।

---

१. 'रत्नाकर : उद्धव-शतक', छन्द सं० १०५
२. 'प्रसाद' : 'कामायनी' पृ० १०१
३. नूर मुहम्मद : 'अनुराग बांसुरी', पृ० ४
४. गोस्वामी तुलसीदास : 'कवितावली'—उत्तरकाण्ड, पद्य सं० ७४
५ दीन 'बिहारी-बोधिनी' दोहा १५१

असुन्दर अप्रस्तुत

काव्य-रस का आस्वादन तभी सम्भव है, जब काव्य का कलेवर अनुभूति की विभूति से सम्पन्न हो। कवि अपनी अनुभूति को अप्रस्तुतों द्वारा सौन्दर्य प्रदान करता है। जहाँ सुन्दर अप्रस्तुत भावबोधन में समर्थ होते हैं। वहाँ असुन्दर अप्रस्तुत अनुभूति को विकृत कर देते हैं, पाठकों के मन में वस्तुओं के सम्बन्ध में धारणा बनी रहती है कि कौन-सी वस्तु सुन्दर है और कौन-सी असुन्दर ? आकार-प्रकार, रूप-रंग स्वभाव-गुण, धर्म के सम्बन्ध में पाठक की बँधी-बँधाई धारणा के विपरीत वस्तु का होना उसकी असुन्दरता है। सिद्ध कवि प्रस्तुत के गुणों के अनुसार ही अप्रस्तुत जुटाता है। कभी कभी बड़े-बड़े कवि भी चूक जाते हैं, उनका ध्यान अप्रस्तुत की सुन्दरता पर नहीं रह जाता। जैसे—

रोमावली सुभग बग-पंगति, जाति नाभि ह्रद कुंड।[1]

यहाँ रोमावली के लिए 'बगपंक्ति' अप्रस्तुत लाया गया है, रोमावली श्याम होती है, जबकि बगपंक्ति श्वेत। यह अप्रस्तुत रोमावली के गुण को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ है। अतः इसे असुन्दर अप्रस्तुत की संज्ञा दी जायगी। इसी प्रकार—

बेनी डोलति दुहुं नितम्बनि, मानहुं पुच्छ डुलावै।[2]

यहाँ वेणी के लिए 'हाथी की पूँछ' अप्रस्तुत लाया गया है। कहाँ तो वेणी की चिक्कणता और मसृणता और कहाँ हाथी की पूँछ का खुरदरापन और रूखापन। यह अप्रस्तुत भी असुन्दर कहा जायगा। इसी प्रकार—

तौ लगि भुगुति न लइ सका, रावन सिय जब साथ।
कौन भरोसे अब कहौं, जीउ पराए हाथ ॥[3]

यहाँ पद्मावती और रत्नसेन के अमिलन के लिए 'राम-सीता का अमिलन' अप्रस्तुत लाया गया है, किन्तु पद्मावती रत्नसेन के अमिलन से दुःख होता है जबकि रावण-सीता के अमिलन से सुख अतः यह अप्रस्तुत भी असुन्दर है।

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर बानर अरुन मुख।
कीन्हो झुकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिना।[4]

यहाँ सूर्य के लिए लाया गया प्रस्तुत 'बन्दर का मुख' एकांगी होने के कारण असुन्दर है।

भाववर्द्धक अप्रस्तुत

काव्य में भाव ही सब कुछ है। भाव के फलक पर कल्पना की कूची से

१. सूरसागर, पद सं० २३६३
२. ,, ,, २०५७
३. जायसी ग्रन्थावली, पृ० १००
४. दीन : 'केशव-कौमुदी', ५।१३

अप्रस्तुतों का रंग चढ़ाकर कवि काव्य-चित्र को साकार कर देता है। यह अप्रस्तुतों का रंग जितना ही निखरेगा, काव्य-चित्र भी उतना ही आकर्षक और प्रभावशाली होगा। जैसे—

पूषन बंस बिभूषन-पूषन तेज-प्रताप गरे अरि ओरे।[१]

यहाँ शत्रुओं के गलने के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'ओला' भाववर्द्धक अप्रस्तुत है।

शुभ मोतिन की दुलरी सुदेश। जनु वेदन के आखर सुबेश।
गज मोतिन की माला विशाल। मन मानहु संतन के रसाल॥[२]

यहाँ मोतीमाला के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'बेदाक्षर' भाववर्द्धक अप्रस्तुत हैं, क्योंकि वेदाक्षर कहने से मोतीमाला की पवित्रता घनीभूत हो जाती है।

मिलि बिहरत, बिछुरत मरत, दम्पति अति रसलीन।
नूतन विधि हेमन्त ऋतु, जगत जुराफा कीन॥[३]

यहाँ नायक-नायिका के प्रेम के लिए 'जुराफ का प्रेम' अप्रस्तुत लाया गया है। प्रसिद्ध है कि जुराफा बिछुड़ते ही मर जाते हैं। यह अप्रस्तुत भी भाववर्द्धक है।

पुलकित कदम्ब की माला-सी पहना देती अन्तर में।
झुक जाती है मन की डाली अपनी फलभरता के उर में॥[४]

यहाँ पुलक के लिए लाया गया 'कदम्ब पुष्प की माला' अप्रस्तुत नितान्त भाववर्द्धक है।

जटिल अप्रस्तुत

कुछ अप्रस्तुत शास्त्रीय या दूर की कल्पना होने के कारण जटिल हो जाते हैं। यद्यपि ऐसे अप्रस्तुत सामान्य जनों के लिये बोधगम्य नहीं होते, तथापि कभी-कभी बड़े मार्मिक होते हैं। जैसे—

कुंती नन्द तात मुख जोवति, अरु वारित अतिचाल।[५]

---

१. तुलसीदास : 'कवितावली', लंकाकाण्ड, पद सं० ५६
२. दीन : 'शब्द-कौमुदी', ६।२६
३. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा २८२
४. 'प्रसाद' : कामायनी', पृ० ६८
५. सूरसागर, पद सं० ३६६०

यहाँ गोपियों को छोड़कर कृष्ण के कुब्जा प्रेम के लिए 'अतिचाल' अप्रस्तुत लाया गया है । अतिचाल ज्योतिष का शब्द है । जब एक ग्रह किसी राशि का भोगकाल समाप्त किए बिना दूसरी राशि पर चला जाता है, तब इसे अतिचाल कहते हैं । कृष्ण भी इसी प्रकार गोपियों का पूर्ण भोग किए बिना कुब्जा से मन लगा बैठे । यह अप्रस्तुत शास्त्रीय है । जटिल है, किन्तु फिर भी मार्मिक है । इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

रूप राशि बिरची विरंचि मनो, सिला लवनि रति काम लहीरी ।[1]

राम और सीता को विधाता ने मानो रूप की राशि ही बनाया है, तथा रति और काम को केवल सिलालवनी ही मिली है । सिलालवनी उसे कहते हैं, जो अन्न खेत काट जाने के बाद बिनाई में मिलता है । यह अप्रस्तुत जटिल है, फिर भी प्रसंगानुकूल है ।

चलन न पावत निगम मग, जग उपजी अति त्रास ।
कुच उतंग गिरवर लस्यौ, मीना मैन मवास ।।[2]

नायिका के उतंग कुचों के कारण वेदमार्ग नही चलने पाता, अतः जग मे त्रास उत्पन्न हो गया है । कुच रूपी पहाड़ों पर काम रूपी मीना ने अपना गढ़ बना लिया है । वहीं रहकर चारों ओर लूटमार करता है । मीना राजपूताने की एक जंगली लुटेरी जाति है । इसी प्रकार काम के लिए लाया गया 'मीना' अप्रस्तुत जटिल है ।

महनीय अप्रस्तुत

महनीय अप्रस्तुत उन्हें कहा जा सकता है, जिनसे प्रस्तुत का रूप, भाव आदि सब कुछ व्यक्त हो जाय । ऐसे अप्रस्तुत अनुपम होते हैं । श्रीमद्भागवत मे रुक्मिणी के स्तनों के लिए 'व्यंजना वृत्ति' (श्रीमद्भागवत १०।५३।१) अप्रस्तुत लाया गया है । व्यंजना वृत्ति गूढ़ होती है और इसका अर्थ बड़ा व्यापक होता है । रुक्मिणी के स्तन भी कठोर, चुस्त और व्यापक हैं । इस अप्रस्तुत को महनीय की संज्ञा दी जा सकती है । महाकवि कालिदास अनिंद्य सुन्दरी शकुन्तला का सौन्दर्य-चित्रण इस प्रकार करते हैं—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कर रुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादित रसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ।।[3]

---

१. तुलसीदास, : 'गीतावली'-बालकाण्ड, पद सं० १०६
२. दीन : 'बिहारी बोधिनी', दोहा सं० १०४
३. कालिदास : अभिज्ञानशाकुन्तलम् ४।४

यहाँ शकुन्तला के रूप के लिए चार महनीय अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं—बिना सूँघा हुआ फूल, बिना खरोंचा हुआ पल्लव, अनाविद्ध रत्न और बिना चखा हुआ मधु। गोपियों के लिए सूरदास लिखते है—

ब्रज सुन्दरि नहिं नारि, रिचा स्रुति की सब आहीं।[१]

यहाँ गोपियों के लिए 'श्रुति की ऋचा' अप्रस्तुत लाया गया है। इस अप्रस्तुत द्वारा स्वरूप-बोध के साथ गोपियों की पुनीतता भी व्यक्त हुई है। यह भी महनीय अप्रस्तुत है।

धरे एक वेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक तें काढ़ि डारी॥[२]

यहाँ, अशोक-वाटिका की सीता के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'कीचड़ से निकाली हुई मृणाली' एक महनीय अप्रस्तुत है। इस अप्रस्तुत से सीता के रूप, दशा सबका सटीक चित्रण हो गया है।

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥[३]

यहाँ नीलाम्बर के लिए मेघ और अधखुले अंग के लिए बिजली का फूल अप्रस्तुत लाया गया है। इस अप्रस्तुत योजना द्वारा स्वरूप और भाव सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यह अप्रस्तुत भी महनीय कहा जायेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतों के रूप-रंग, प्रकार-भेद असंख्य हैं।

(घ) अप्रस्तुत के स्रोत

अप्रस्तुतों के स्रोतों पर विचार करते समय अकस्मात् गोस्वामी जी की अर्धाली 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' याद आ जाती है, क्योंकि तुलसी के हरि और हरिकथा की भाँति अप्रस्तुत और उनके स्रोत भी अनन्त हैं। शायद ही संसार की कोई अभागी वस्तु बची हो जिसे कवियों ने अप्रस्तुत न बनाया हो। अप्रस्तुत द्रौपदी के चीर के समान असीम है। यदि इनके स्रोतों को कुछ वर्गों में विभाजित किया जाय तो प्रत्येक वर्ग भगवान् वामन के डग से कम नहीं ठहरता। जहाँ सूर्य भी नहीं पहुँचता वहाँ भी कवि की पैनी दृष्टि पहुँच कर अप्रस्तुतों का संचयन करती है। एक पहेली बुझाई जाती है—

जहाँ पवन को गम नहीं, रवि ससि उदय न होय।
जाहि विधाता ना रच्यो, अबला माँग्यो सोय॥[४]

---

१. सूरदास : 'सूरसागर' पद १७९३
२. दीन : 'केशव-कौमुदी' १३।१२
३. 'प्रसाद' : कामायनी' पृ० ४६

मुझसे यदि कोई इस पहेली का अर्थ पूछे तो मैं बेझिझक कह दूँ अप्रस्तुत। ऐसे असीम अप्रस्तुत और उनके स्रोतों की गणना कराना, आकाश के तारे अथवा सिर के बाल गिनने से कम दुष्कर नहीं है, फिर भी अप्रस्तुतों के उत्पत्ति-स्रोतों को हम सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) दैवी शक्तियाँ

दैवी शक्तियों के अन्तर्गत स्वर्ग, सूर्य, चन्द्रमा, चन्द्रिका, राहु, चन्द्रग्रहण तारे, ग्रह, नक्षत्र, ध्रुव, धूमकेतु, इन्द्रधनुष, आकाश गंगा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कृष्ण, वामन, कूर्म, कच्छप, वराह, इन्द्र, अश्विन, वरुण, कामदेव, शेष, कुबेर, गणेश, कार्तिकेय, प्रजापति, पार्वती, इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, रति, उर्वशी, परी, कामधेनु, कल्पवृक्ष, पारिजात, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, अमरावती, वड़वानल, व्रज, दावाग्नि आदि को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया जाता है। इन अप्रस्तुतों में सूर्य नख, तेज के लिए, चन्द्रमा मुख के लिये, चन्द्रिका कान्ति के लिये, राहु बालों के लिए, ध्रुव दृढ़ता के लिये, इन्द्रधनुष रंग-विविधता के लिए, कामदेव, सुन्दरता के लिये, सरस्वती ज्ञान के लिए, दुर्गा ओज के लिये, उर्वशी, रति, परी सौन्दर्य के लिये, कामधेनु, कल्पवृक्ष मनोवांछित फल के लिए प्रसिद्ध हैं।

(२ प्रकृति

प्रकृति के अन्तर्गत—आकाश, पृथ्वी, वन, पहाड़, हिमालय, कैलाश, महेन्द्र, सुमेरु, मन्दराचल, मलयगिरि, कलिन्द, इन्द्रनील, गोवर्द्धन, विन्ध्य, गुफा, झरना, वायु, बवण्डर, अग्नि, ज्वाला, धुआँ, बिजली, बादल, वर्षा, ओला, दिन, रात, सायं, प्रातः, प्रकाश, अंधकार, ऋतुयें, कुहरा, ओस, जल, समुद्र, अमृत, विष, नदी, सिवार, सरोवर, संगम, मानसरोवर, लहर, नौका, कर्णधार, जहाज, लंगर, फेन, बालू आदि को अप्रस्तुत बनाया जाता है। इन अप्रस्तुतों में आकाश असीमता के लिए, पृथ्वी क्षमा के लिये, पहाड़ कुचों के लिए, कलिन्द, इन्द्रनील श्याम वर्ण के लिए, अग्नि विरह के लिए, बिजली चंचलता, कान्ति के लिए, बादल सांवले रंग के लिए, ओला गलने के लिए, संध्या नेत्रों के रंग के लिए, प्रातः हास के लिए, अंधकार बालों के लिए, ओस क्षणिकता के लिए, समुद्र असीमता के लिए, सिवार रोमावली के लिए, नौका आश्रय के लिए, फेन कोमलता के लिए प्रायः लाए जाते हैं।

(३) वनस्पति

वनस्पतियों से भी असंख्य अप्रस्तुत ग्रहण किये जाते हैं, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं—बाग, वृक्ष, आलबाल, पत्ती, पल्लव, आम, जामुन, बरगद, गूलर,

सेमर, बबूल, बेल, नीम, चन्दन, कदम्ब, तमाल, ताड़, नारियल, देवदार, बकुल, वेणु, तुलसी, धतूरा, अनार, बिम्बा, कमल, कुमुदिनी, अरसी, तिल, केला, विषलता, कुन्द, केतकी, चम्पा, चमेली, जरद, जूही, भृगुलता, मदनमंजरी, मल्लिका, मालती, कुवरक, जरद, शिरीष, सोनजुही, माधवी, श्यामा आदि। इसमें बाग शरीर के लिए, आलबाल कान के लिए, पल्लव कोमलता के लिए, आम मिठास के लिए, सेमर असारता के लिए, बेल कुचों के लिए, नीम कटुता के लिए, बिम्बाफल लालिमा के लिए, कमल प्रायः सभी अंगों के लिए, तमाल श्यामता के लिए, अंगूर मधुरता के लिए, अनार दांतों के लिए, कुमुदिनी स्वच्छता के लिए, केला जांघ के लिए, कुन्दकली दांतों के लिए, तिल-फूल नासिका के लिए, चम्पा गौर वर्ण के लिए तथा लता शरीर यष्टि के लिए प्रसिद्ध अप्रस्तुत हैं।

(४) पशु-पक्षी, कीट-पतिंगे

मगर, मीन, दादुर, कछुआ, भंवरी, सीप, गरुड़, हंस, मयूर, गीध, बाज, बगुला, उल्लू, मुर्गा, बटेर, हारिल, झगही, किलकिला, कबूतर, कौवा, कोयल, तोता, मैना, खंजन, लाल मुनिया, चकोर, चकवा, चातक, बिलनी, भ्रमर, मक्खी, बर्रे, चींटी, जुगुनू, बीरबहूटी, सांप, कॅंचुल, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बैल, गाय, बछड़ा, भैंस, गधा, बकरी, कुत्ता, बिल्लो, कपि, सिंह, सूकर, सियार, मृग, मृगतृष्णा, खरगोश, लोमड़ी आदि अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किए जाते हैं। इनमें मीन नेत्रों के लिए, दादुर नीरसता के लिए, कच्छप कठोरता के लिए, सांप कोमलता, भुजाओं के लिए, हंस गति के लिए, बाज झपटने के लिए, बगुला कपट के लिए, हारिल दृढ़व्रत के लिए, कबूतर, चातक, चकवा, चकोर आदर्श प्रेम के लिए, कोयल वाणी की मधुरता के लिए, भ्रमर एकतरफा प्रेम और श्यामता के लिए, बर्रे सूक्ष्मता के लिए, इन्द्रवधू रंग-बिरंगेपन के लिए, हाथी गति के लिए, घोड़ा चंचलता के लिए, गाय-वत्स ममता के लिए, सिंह कटि की कृशता के लिए, मृग नेत्रों के लिए, प्रायः अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त होते हैं।

(५) राज-दरबार, शासन, युद्ध

राज दरबार, प्रशासन, युद्ध तथा इनसे सम्बन्धित अधिकारियों को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस वर्ग के मुख्य अप्रस्तुत हैं—राजा, सिंहासन, राजधानी, महल, किला, मन्त्री, अन्य कर्मचारी, रानी, पटरानी, वितान, देश, नगर, सभा, दुर्गपाल, बंदीजन, प्रतिहारी, पौरिया, सूत, मागध, मोदी, खवास, द्वारपाल, तोरण, गुप्तचर, दूत, दास, दासी, सेना, सेनापति, सिपाही, युद्ध, चक्र-व्यूह, निसान, ध्वजा, मारू, तूरा, योद्धा, घायल, कवच, बेड़ी, रथ, चक्र, अस्त्र, बन्दूक, गोला, बारूद, पलीता, धनुष, बाण, तरकस, ढाल, तलवार, कांती, माला, नेजा आदि। इन अप्रस्तुतों में राजा और राजदरबार काम और अहंकार के

अप्रस्तुत बनाए जाते हैं। युद्ध और अस्त्र-शस्त्र प्रायः सुरति के अप्रस्युत के रूप मे ग्रहण किए जाते हैं। धनुष भौंह के लिए, बाण कटाक्ष के लिए, ढाल के लिए, प्रसिद्ध अप्रस्तुत हैं।

(६) वाणिज्य, व्यवसाय, नग-धातु, सिक्के

इस वर्ग से ग्रहीत मुख्य अप्रस्तुतों की सूची इस प्रकार है—वाणिज्य, सेठ, धन, कोठी, ब्याज, मूल, व्यापारी, ग्राहक, सौदा, हानि, लाभ, घटवारा, दरजी, धोबी, रंगरेज, सुनार, लोहार, कोहार, मछुआ, बनजारा, गाँव, किसान, खेती-यन्त्र, प्रक्रियाएँ, पारस, विद्रुम, मणि, मरकत, मोती, हीरा, चिंतामणि, कसौटी, कंचन, कलई, चाँदी, तांबा, पीतल, लोहा, चुम्बक, सिक्का आदि। इस वर्ग के अप्रस्तुतों में वाणिज्य-सामग्री स्त्री अंगों के अप्रस्तुत बनाए जाते हैं, विद्रुम लालिमा के लिए, मरकत श्यामता के लिए हीरा, मोती स्वच्छता के लिए, स्वर्ण कान्ति के लिए प्रायः ग्रहण किए जाते हैं।

(७) धर्म, दर्शन, ऐतिहासिक, पौराणिक व्यक्ति, घटनाएँ

इस स्रोत से गृहीत अप्रस्तुतों की सूची इस प्रकार है—मुनि, सिद्ध, तपी, वैरागी, योगी, योग, वेद, ऋचा, यज्ञ, होम, मोक्ष, काशी, मोहिनी रूप, गजोद्धार, इजै-बिजै, कबन्ध, दशरथ, राम, सीता, लक्ष्मण, रावण, कुम्भकरण, कुरुक्षेत्र गीता, द्रौपदी—चीर-हरण, कौरव, भीष्म, कर्ण, अर्जुन, चाणक्य, बुद्ध, भोज, मुहम्मद तुगलक, भिश्ती, फिरंगी आदि। इन अप्रस्तुतों में सिद्धों की समाधि मान के लिए, योग विरह के लिए, वेद और ऋचाएँ पवित्रता के लिए, मोहिनी रूप कपट के लिए, गजोद्धार कृपा के लिए, कबन्ध हठ के लिए, दशरथ आदर्श प्रेम के लिए, द्रौपदी-चीर असीमता के लिए, चाणक्य तेज बुद्धि के लिए, तुगलक पागलपन के लिए प्रसिद्ध हैं।

(८) मानव, परिवार, शरीरांग, रोग-औषधि

इस वर्ग से भी अनेक अप्रस्तुत ग्रहण किये जाते हैं। जैसे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वृद्ध, बालक, रंक, अतिथि, चोर, ठग, चुगलखोर, अविश्वासी, अधर्मी कपटी, लम्पट, मद्यप, स्त्री, पतिव्रता, सुहागिन, प्रेमिका, सौति, विरहिणी, कुलटा, गणिका, सती, विधवा, ब्याह, दूल्हा, माता-पुत्र, शरीर, जीव, सांस, मन, नस, दांत, जिह्वा, नेत्र, पुतली, नाभि, हाथ, रोग, वैद्य, औषधि, कुपथ्य, ज्वर, पागल आदि। इनमें ब्राह्मण और शूद्र पवित्र और अपवित्र भाव के लिए चोर और ठग कपट के लिए, चुगलखोर नेत्रों के लिए, सौति ईर्ष्या के लिए, सती कठिन परीक्षा

के लिए, माता-पुत्र वात्सल्य के लिए, प्राण, जीव परम प्रेमी के लिए, मन और नस अभिन्नता के लिए प्रसिद्ध अप्रस्तुत हैं।

(९) खाद्य-पेय, घर-गृहस्थी तथा दैनिक प्रयोग की वस्तुएँ

इस स्रोत से ग्रहण किए जाने वाले वस्तुओं में मुख्य इस प्रकार हैं—भोजन, बर्तन, थाल, अन्न, फल, मसाले, काँजी, दूध, दही, नवनीत, घी, तेल, मट्ठा, मधु, कोयला, लकड़ी, भट्ठी, घर, कोठरी, किवाड़ दीपक, रस्सी, घड़ा कूप, सन्दूक, कैंची, सीढ़ी, शीशी, रूई, तराजू, शंख, कुठार, चषक, कुटी, मोम, माला, काँटा, चूर, जादू, मूर्च्छा, कृपण, ऋणी, पत्थर, राजमार्ग, श्मशान, आदि। इनमें नवनीत कोमलता के लिए, घी, तेल प्रेम के लिए, मधु मिठास के लिए, किवाड़ पलकों के लिए, दीपक जलते प्रणयी के लिए, घड़ा कुचों के लिए और श्मशान नीरवता के लिए प्रायः प्रयुक्त होते हैं।

(१०) वस्त्राभूषण, शृङ्गार-प्रसाधन

इस वर्ग से ग्रहण किए गए मुख्य अप्रस्तुत हैं—सौन्दर्य, शृङ्गार, वस्त्र, ताटंक, वलय, नूपुर, मुद्रिका, सिन्दूर, काजल, अंजन, मजीठ, मृगमद, सलाका, विभिन्न रंग, पुट, पान, गेरू आदि।

(११) कला, संगीत, साहित्य

इस वर्ग से ग्रहीत मुख्य अप्रस्तुत है—फलक, कूँची, रंग, चित्र, वीणा, तार, यवनिका, तान, शब्द, अर्थ, पाठशाला, लेखन-सामग्री आदि।

(१२) मनोविनोद के साधन

मनोविनोद के अनेक साधनों को भी अप्रस्तुत बनाया जाता है। जैसे—चौपड़, जुआ, पतंग, लट्टू, चकई, चौगान, हिंडोला, होली, संगीत, वाद्य, नृत्य, आखेट आदि।

अप्रस्तुतों के इन स्रोतों के अतिरिक्त वर्तमान वैज्ञानिक युग में विज्ञान से भी नए-नए अप्रस्तुत ग्रहण किए जा रहे हैं। वैज्ञानिक प्रगति और नई कविता के कारण आज के काव्य में नवीन अप्रस्तुतों की भरमार सी हो गई है। यद्यपि इन अप्रस्तुतों के अर्थ-बोध में अभी स्थिरता नहीं आई है, अतः ये कुछ विचित्र से लगते है, तथापि मौलिकता और भावबोधकता की दृष्टि से इनका महत्वपूर्ण स्थान है। समय की गति के साथ, स्थिरता आ जाने पर ही इन वैज्ञानिक अप्रस्तुतों का सौन्दर्य-विश्लेषण सम्भव होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुत के स्रोत अनन्त है। एक उपअध्याय में इन सभी स्रोतों पर प्रकाश डालना तिल में ताड़

भरना अथवा बूँद में समुद्र का समा जाना है। इन अप्रस्तुतों में कुछ का प्रयोगार्थ तो रूढ़ हो चला है, किन्तु अधिकांश का प्रयोग कवियों के अपने विशिष्ट भावों पर निर्भर करता है।

(ङ) अप्रस्तुत विचार की सम्भावनाएँ

काव्य में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत का कहीं अधिक महत्व है—यह तो सर्वमान्य है, क्योंकि काव्य मे से यदि अप्रस्तुत निकाल दिया जाय तो जो कुछ बच रहेगा, वह इतना नीरस और कुद्रूप होगा कि शायद उसे कोई पढ़े तक नहीं अप्रस्तुत पक्ष काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। इससे काव्य मे प्रभावात्मकता आती है, प्रेषणीयता आती है, भाव में विशदता आती है और आती है काव्य में रमणीयता। जब यह असंदिग्ध है कि काव्य में प्रस्तुत पक्ष की अपेक्षा अप्रस्तुत पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है, तब यह भी स्वतः सिद्ध है कि अप्रस्तुत पक्ष का अध्ययन भी अधिक महत्वपूर्ण और सुच्य होगा। कवि ने निस्संकोच, घोषणापूर्वक जो कुछ प्रस्तुत के रूप में कह दिया है, उससे कहीं अधिक प्रामाणिक वह है जो अप्रस्तुत के रूप में अनायास आ गया है, जिसे कहते-कहते कवि हिचक जाता है, रुक जाता है। यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो कवि की आज्ञा से कवि की जानकारी मे पाठक के सामने आने वाले भाव और विचार कवि के व्यक्तित्व और उसके समाज के विषय में उतना नहीं बता सकते जितना कि कवि की नजर बचाकर, अनजाने मे अपने आप उमड़कर चले आते हुए अप्रस्तुत बता सकते हैं। प्रस्तुत तो कवि के पूर्ण चेतन मन से निकला हुआ है, अतः उसमें कवि पूर्ण सजग रहता है कि उसे क्या कहना चाहिए और क्या नहीं ? इस सतर्कता के कारण प्रस्तुत पक्ष के विचारो मे कृत्रिमता, पक्षपात और तन्मनस्कता की गंध विद्यमान रहती है, किन्तु अप्रस्तुत कवि के उपचेतन मन से निकले हुए होते हैं, अतः ये सरल, सहज, पक्षपात रहित और अन्मनस्क होते हैं। कवि का प्रस्तुत पक्ष तो सिखाए पढ़ाए साक्षी के समान होता है। उसे जितना बताने को कहा जाता है, वह उतना ही कहता है, आगे चुप्पी साध लेता है, किन्तु अप्रस्तुत बालकों की भाँति सरल होते हैं, न पूछने पर भी हम बताएँ, हम बतायें कहकर सब कुछ कह जाते हैं। उन नादान बेचारों को क्या पता कि क्या कथ्य है और क्या अकथ्य ? ये अप्रस्तुत तो बिना बुलाए हुए मेहमान हैं, यदि ये कवि के घर की पोल खोल ही दें तो क्या आश्चर्य ? अतः यह सिद्ध है कि अप्रस्तुत पक्ष का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण, प्रामाणिक और विश्वसनीय होता है।

अप्रस्तुतों द्वारा हम प्रयोक्ता के व्यक्तित्व का अध्ययन कर सकते हैं, प्रयोक्ता के परिवेश और समाज का अध्ययन कर सकते हैं और काव्य के अलंकरण का अध्ययन किया जा सकता है।

(१) प्रयोक्ता का व्यक्तित्व

अप्रस्तुतों के मूल में वासना काम करती है। वासना से यहाँ तात्पर्य जन्म जन्मान्तर के संस्कारों से है। कोई कवि अनेक अप्रस्तुत जुटाता है, कोई दोचार, किसी के अप्रस्तुत मार्मिक होते हैं, किसी के भौंड़े, किसी के अप्रस्तुत सुन्दर होते हैं, किसी के कुरूप। प्रत्येक कवि अप्रस्तुत-संचय और प्रयोग में कालिदास नहीं हो सकता। बृहत्त्रयी के कवियों—भारवि, माघ और श्रीहर्ष में कालिदास से कम प्रतिभा नहीं थी, किन्तु उपमा का बैनामा कालिदास के नाम ही लिखा गया। इन सब का कारण यही वासना या संस्कार है। हम जन्म-जन्मान्तर में जो कुछ देखते सुनते हैं, उनका संस्कार हमारे मन में बनता जाता है। यह पूर्वस्मृति वासना के रूप में हमारे अन्तर में विद्यमान रहती है। हमारे मन के तीन रूप होते हैं—सचेतन, अर्धचेतन और अचेतन। अचेतन मन में ही सारी वासनाएँ संग्रहीत होती हैं। अर्धचेतन मन में स्मृतियाँ रहती हैं। ये स्मृतियाँ ही अंगड़ाई लेकर चेतन मन में आ जाती हैं अतः स्मरण होने का तात्पर्य है—वासना का अधिचेतन मन से चेतन मन में आना जब हम कोई बाहरी वस्तु देखते हैं, तब हमारे मन के भीतर संचित वासना करवट बदलने लगती है और उस वस्तु के रूप, गुण, क्रिया के समान अन्य वस्तुएँ वासना के संचित भण्डार से उठ-उठ कर आगे आने लगती हैं। यही अप्रस्तुत योजना का रहस्य है। जो कवि जितना सहृदय होता है, जितना अनुभवी होता है, वासनाजन्य होने के कारण उसकी अप्रस्तुतयोजना भी उतनी ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी होती है।

कवि अपने मन में सुरक्षित, ज्ञान, अनुभव के भण्डार को ही अप्रस्तुतों के रूप में उड़ेलता है—अतः इन अप्रस्तुतों से प्रयोक्ता के व्यक्तित्व का ज्ञान होना स्वाभाविक है। कवि द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों से उसके व्यक्तित्व के सभी पहलू झाँकते हुए नजर आते हैं। इन अप्रस्तुतों से हमें प्रयोक्ता की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। कवि का ज्ञान जितना विस्तृत होगा, जानकारी की चादर जितनी लम्बी होगी, उतने ही नवीन अप्रस्तुत वह प्रयुक्त कर सकेगा। मौलिक अप्रस्तुत कवि की बहुज्ञता के परिचायक होते हैं। अनेक ऐसे भाव होते हैं, जिनकी अभिव्यक्ति के लिए अल्पज्ञ कवि उपयुक्त अप्रस्तुत जुटाने में पंगु हो जाता है, वहीं बहुज्ञ कवि अपने ज्ञान के सहारे रमणीय अप्रस्तुत ढूँढ़ लाता है। ज्ञान अध्ययन और भ्रमण से प्राप्त होता है। देश-देशान्तर का भ्रमण करने वाला कवि स्थान-स्थान के रीति-रिवाज, भाषा-साहित्य, खान-पान, पशु-पक्षी आदि से परिचित रहता है। अपनी इस बहुज्ञता का प्रयोग वह अप्रस्तुत जुटाने में करता है। अतः प्रयुक्त अप्रस्तुतों से कवि की बहुज्ञता का परिचय मिलता है। सूरदास लिखते हैं—

सूरदास तीनों नहिं उपजत, धनिया, धान, कुम्हाड़े ।[1]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुतों से सूर की कृषि सम्बन्धी जानकारी का पता चलता है । उन्हें मालूम था कि धनिया शिशिर ऋतु में, धान शरद ऋतु में और कुम्हंड़ा ग्रीष्म ऋतु में पैदा होता है ।

जाको राजरोग कफ व्यापत दह्यौ खवावत ताहिं ।[2]

इससे स्पष्ट है कि सूर को मालूम था कि राजरोग में दही नहीं खाना चाहिए ।

उनको हित उनही बने, कोऊ करौ अनेक ।
फिरत काग-गोलक भयो, दुहूँ देह ज्यौं एक ॥[3]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत से स्पष्ट है कि बिहारी को इस बात की जानकारी थी कि कौवे के नेत्र गोलक तो दो होते हैं, किन्तु आँख एक ही होती है, जो दोनों गोलकों में आया-जाया करती है ।

केशव हैहयराज का मास हलाहल कौरन खाय लियो रे ।
ता लगि मेद महीपन को घृत घोरि दियौ न सिरानो हियो रे ।
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियोरे ।
तौ लौं नहीं मुख जौ लग तू रघुबीर को श्रोण सुधा न पियारे ॥[4]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुतों से स्पष्ट है कि केशव दास को यह मालूम था कि विष खाए हुए व्यक्ति का उपचार घी, ताजा खून और सुधा (चूना) का पानी पिलाना है ।

करत उपाय ना सुभाय लखि नारिन कौ,
भाय क्यौं अनारिन कौ भरत कन्हाई है ॥[5]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुतों से स्पष्ट है कि रत्नाकर जी को विशिष्ट नाड़ी ज्ञान था । अप्रस्तुतों द्वारा कवि की बहुज्ञता का अध्ययन वास्तव में एक रुचिकर विषय है ।

अप्रस्तुत प्रयोग द्वारा हम प्रयोक्ता की दूरदर्शिता का भी अध्ययन कर सकते है । अप्रस्तुत जुटाने के लिए कवि का दूरदर्शी होना आवश्यक है । जीवन के आस-पास से तो सभी कवि अप्रस्तुत जुटा लेते हैं, किन्तु जो कवि जीवन क हर पहलू के दूर कोने को झांककर वहाँ स्थितअप्रस्तुत को उठा लाता है, उसकी अप्रस्तुत-योजना व्यापक हो जाती है और वहीं कवि दूरदर्शी भी कहा जाता है । ऐसे अप्रस्तुत

---

१. सूरसागर, पद ४२२२
२. सूरसागर पद ४३४३
३. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा २१४
४. दीन : 'केशव-कौमुदी' ७।२१
५. 'रत्नाकर' : 'उद्धव-शतक', छन्द ३४

यद्यपि क्लिष्ट होते हैं, तथापि कभी-कभी बड़े मार्मिक बन पड़ते हैं। दूरदर्शिता के दूरबीन से कवि वहाँ तक देख लेता है, जहाँ हमारी दृष्टि कभी पहुँच भी नहीं सकती। कवि की इसी दूरदर्शिता को लक्ष्य करके कहा गया है—

'जहाँ न जाय रवि तहाँ जाय कवि'।

उदाहरण के लिए—

सोतैं गए कुँभी के जर लौं, ऐसे वे निरमूले।[1]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत 'कुंभी की जड़' कवि की दूरदर्शिता का परिचायक है जंगल के दूर कोने में पड़ी हुई कुंभी कवि की दूर दृष्टि से बच नहीं पाई। इस प्रकार—

सदा सहाइ करौं या जन की गुप्त हुती सो प्रकट करी।
ज्यौं भारत भरुही के अंडा राखे गज के घंट तरी॥[2]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत 'महाभारत के युद्ध में गजघंट के नीचे पड़ा भरुही का अण्डा' अप्रस्तुत कवि की दूर दृष्टि का संकेतक है। कहाँ तो इतना पुराना महाभारत का युद्ध और उसमें भी एक कोने में पड़ा घंटे के नीचे का भरुही का अंडा? किन्तु वह भी कवि की दूरदर्शिता के सामने छिपा नहीं रह सका।

या भव पारावार को उलंघि पार को जाय।
तिय-छवि छाया-ग्राहनी, गहै बीच ही आय॥[3]

यहाँ नारी-छवि के लिए लाया गया अप्रस्तुत सिंहिका कवि की दूरदर्शिता का परिचायक है। सिंहिका—राहु की माँ लंका के निकट समुद्र में रहती थी, जिसने हनुमान को लंका जाते समय पकड़ने का प्रयास किया था।

अंडे लौं टिटैहरी के जैहैं जू बिबेक बहि,
फेरि लहिबे की ताके तनक न रात है।[4]

यहाँ ऊधौ के विवेक के लिए प्रयुक्त अप्रस्तुत 'टिटिहरी का अण्डा' से कवि की दूरदर्शिता का ज्ञान होता है। कहा जाता है एक बार समुद्र टिटहरी के अण्डे को बहा ले गया, जिससे प्रतिशोध हेतु टिटिहरी ने समुद्र को भाँठ देने का संकल्प किया।

प्रयुक्त अप्रस्तुतों द्वारा कवि के सूक्ष्म-निरीक्षण की भी जानकारी मिलती है। कवि का मानस साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं गहरा होता है, पहुँचे हुये कवियों

---

१. सूरसागर, पद २९८९
२. ,, ,, ४७७७
३. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा ६८४
४. 'रत्नाकर' : 'उद्धव-शतक', छन्द ६६

की तो बात ही क्या ? हम अपने आस-पास बिखरी हुई तमाम वस्तुओं को देखते रहते हैं, किन्तु उनके गुणों पर हमारा ध्यान नहीं जाता। कवि की सूक्ष्म दृष्टि की खुर्दबीन से छोटी से छोटी वस्तु भी बचकर जाने नहीं पाती। जैसे—

अति संकट में भरत-भंटा लौं मल मैं मूड़ नवाए।[1]

यहाँ गर्भ के जीव के लिये लाया गया अप्रस्तुत 'भुरते का भाँटा' कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है।

जल रजु मिलि गाँठि परी, रसना हरि रट की।
छोरे तैं नाहिं छुटति, कैक वार भटकी॥[2]

यहाँ गोपी-कृष्ण प्रेम के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'भीगी गाँठ' कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देता है। गाँठ, भीग जाने पर जकड़ लेती है, फिर खुल नहीं सकती।

गनती गनिबे तें रहे, छत हू अछत समान।
अब अलि ये तिथि औम लौं, परे रहौ तन प्रान॥[3]

यहाँ विरहिणी के लिए प्राण के लिए 'अवम तिथि' अप्रस्तुत लाया गया है। अवम तिथि पत्रा में तो होती है, किन्तु व्यावहारिक जगत में उसका अस्तित्व नहीं होता। पत्रा में हम इसे देखते रहते हैं, किन्तु इसकी विशेषता पर हमारा ध्यान नहीं जाता। यह अप्रस्तुत कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का द्योतक है।

जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई बेगि,
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।[4]

यहाँ पर विषय-विषाद के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'बिवाई' कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है।

अप्रस्तुतों द्वारा हम प्रयोक्ता के व्यक्तित्व की सरसता, सहृदयता और भावुकता का भी अध्ययन कर सकते हैं। जिस कवि के अप्रस्तुत जितने मार्मिक होते हैं, वह कवि उतना ही भावुक होता है। अप्रस्तुत के स्वरूप को देखकर कवि की सरसता का परिज्ञान हो जाता है। जैसे—

ज्यों चकई प्रतिबिम्ब देखि कै, आनन्दै पिय जानि।
सूर पवन मिली निठुर विधाता, चपल कियौ जल आनि॥[5]

---

१. सूरसागर, पद ३२०
२. ,, पद २२७८
३. दीन : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा ५३१
४. 'रत्नाकर' : 'उद्धव-शतक', मंगलाचरण
५. सूरसागर, पद ३८८६

विरहिणी गोपी का एक चित्र है। उसने स्वप्न देखा कि कृष्ण उसके घ आए हैं और हँसकर उसकी भुजा पकड़ लेते हैं। अगले सुख का अनुभव होने के पू ही बैरिन नींद खुल गई। इस दृश्य के लिये अप्रस्तुत योजना लायी गयी है–मानो चकई जल के अपने प्रतिबिम्ब को चकवा समझकर आलिंगन के लिए आगे बढ़ी, किन्तु इसी बीच निष्ठुर विधाता ने वायु चला दिया, जिससे जल चंचल हो गया और प्रतिबिम्ब मिट गया। इस अप्रस्तुत योजना से कवि की सहृदयता टपक रही है।

धरे एक वेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंकतें काढ़ि डारी ॥[1]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत से कवि की सहृदयता का ज्ञान होता है।

टूक-टूक है मन-मुकुर हमारौ हाय,
चूकि हू कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहि,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥[2]

यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुतों द्वारा कवि के हृदय की भावुकता उमड़ पड़ रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतों के अध्ययन से कवि के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उभर कर सामने आ जाते हैं।

(२) प्रयोक्ता का परिवेश

अप्रस्तुतों द्वारा कवि के परिवेश—जलवायु, वातावरण, समाज—का भी अध्ययन सम्भव है। वस्तुतः कवि जिस वातावरण, जलवायु और समाज में रहता है, उसी से अप्रस्तुत संचयन भी करता है। भारत एक ग्रीष्मप्रधान देश है, अतः यहाँ का कवि शीतल वस्तुओं को रोचक मानता है, किन्तु इंगलैण्ड एक ठंडा मुल्क है, अतः वहाँ का कवि उष्ण वस्तुओं को सुखकर मानता है। भारतीय कवि विरह-ताप के लिये जहाँ उष्ण वस्तुओं का प्रयोग करता है, वहाँ इंगलैण्ड का कवि शीतल अप्रस्तुतों का। इसी प्रकार फल-फूल, पशु-पक्षी सम्बन्धी अप्रस्तुतों में भी दोनों देशों के कवियों में भिन्नता पाई जाती है। जहाँ अंग्रेजी कवि के लिये गुलाब प्रिय है, वहाँ भारतीयों के लिये कमल। शीत-प्रधान देशों में जिस भाव के लिये मेमना (भेड़ का बच्चा) अप्रस्तुत लाया जाता है, हमारे भारत में उस भाव के लिये गाय अप्रस्तुत प्रयुक्त होता है। हाथी अप्रस्तुत अंग्रेजी साहित्य में कदाचित् ही मिले, जबकि

१. दीन : 'केशव-कौमुदी', १३।५।
२ 'रत्नाकर' : उद्धव-शतक, छन्द ४०।

भारतीय साहित्य में एक प्रसिद्ध अप्रस्तुत है। अंग्रेजी कवियों के लिये भरद्वाज पक्षी बहुत प्रिय है, किन्तु हिन्दी-कवियों में इसका उल्लेख भी मुश्किल से मिलेगा। अंग्रेजी साहित्य में जो स्थान बुलबुल का है वह स्थान भारतीय साहित्य में कोयल को मिला है। उल्लू पक्षी को भारत में जितना अप्रिय माना जाता है, उतना इंगलैण्ड में नहीं। इसी प्रकार भारत में गौर वर्ण और काले बाल सुन्दर माने जाते हैं, जब कि इंगलैण्ड में श्वेत वर्ण और भूरे बाल। अप्रस्तुतों का चयन भी इन्हीं गुणों के आधार पर किया जाता है। इन अप्रस्तुतों को देखकर हम सहज ही में बता सकते हैं कि कौन कवि शीतप्रधान देश का है और कौन कवि उष्ण प्रधान देश का।

अप्रस्तुत-प्रयोग पर प्रयोक्ता के वातावरण का भी अध्ययन किया जा सकता है। कवि अपने वातावरण के चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर अप्रस्तुत-संग्रह करता है। भारतीय साहित्य में ही यह तथ्य दिखाई देता है। वैदिककालीन कवियों के लिए प्रकृति का प्रांगण खुला था, अतः प्रकृति से गृहीत अप्रस्तुतों का बाहुल्य उस साहित्य में देखने को मिलता है। कालिदास के समय में यह बात नहीं थी। उनके समय तक हमारी सभ्यता और संस्कृति पर्याप्त विकास पा चुकी थी, अतः कालिदास के अप्रस्तुतों में केवल प्रकृति ही नहीं, अपितु नगर और नागरीय जीवन भी समाविष्ट है। नाथों और सिद्धों का युग कर्मकाण्ड का युग था, जिसका प्रभाव उनके अप्रस्तुतों पर भी पड़ा है। भक्तिकाल के कवियों में वातावरण के अनुकूल, दीनता, भक्ति और भगवान् के ऐश्वर्य सम्बन्धी अप्रस्तुतों की भरमार है। रीतिकाल विलासिता का युग था, अतः कवियों ने भी ऐसे अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है जो विलासिता और ऐश्वर्य को उभार सकें। आधुनिककाल में राष्ट्रीयता, समानता, एकता को विशेष महत्व दिया गया, अतः इन्हीं भावों के अनुरूप अप्रस्तुत भी जुटाए गये। वर्तमान युग विज्ञान का युग है, अतः आज की नई कविता में वैज्ञानिक अप्रस्तुतों की छटा दिखाई पड़ती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन अप्रस्तुतों के अध्ययन से उस काल के वातावरण का सटीक चित्र उभर कर सामने आता है।

अप्रस्तुत प्रयोग के आधार पर कवि के समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन सम्भव है, अर्थात् कवि के समय के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक जीवन का अध्ययन किया जा सकता है। सामाजिक जीवन के अन्तर्गत वर्ण-व्यवस्था जातियाँ, वर्णाश्रम धर्म, संस्कार, परिवार, घर-गृहस्थी, खाद्यपेय, वस्त्राभूषण, शृंगार-प्रसाधन, कला, संगीत, साहित्य, वाहन, मनोविनोद के साधन आदि का अध्ययन किया जा सकता है। आर्थिक जीवन के अन्तर्गत वाणिज्य, व्यवसाय, कृषि, उपज, नग, धातु, सिक्के आदि का अध्ययन सम्भव है। धार्मिक जीवन में धर्म, लोकविश्वास, देवी-देवता, जप-तप, ऋषि, मुनि, साधु-संन्यासी धार्मिक व्यक्ति, कथाओं का अध्ययन

सम्भव है। इसी प्रकार राजनैतिक जीवन के अन्तर्गत शासन-प्रबन्ध, युद्ध, अस्त्र-शस्त्र राजा-प्रजा का सम्बन्ध और प्रजा की स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। इस प्रकार समाज का सांगोपांग अध्ययन अप्रस्तुतों द्वारा किया जा सकता है। अप्रस्तुत द्वारा किया गया सामाजिक अध्ययन प्रामाणिक भी अधिक होगा। कभी कभी तो अप्रस्तुत प्रयोक्ता के समाज का बड़ा सटीक चित्र खींच देते हैं। जैसे—सूरदास के चोरी, ठगी, गणिका, बिटनारी सम्बन्धी अप्रस्तुतों से स्पष्ट है कि उनके समाज की नैतिक दशा गिरी हुई थी। कबीर के विधि-विरोध और यौन-विरोध सम्बन्धी अप्रस्तुतों से उनके पतित, नीच समाज का चित्र-सा खिंच जाता है। केशवदास लिखते हैं—

> कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
> यह ललित लाल कीधौं लसत दिगभामिनि के भाल को॥[1]

यहाँ प्रातःकालीन सूर्य के लिए 'कापालिक के हाथ में रक्त भरा सिर' अप्रस्तुत लाया गया है। इस अप्रस्तुत से कवि के समाज में प्रचलित कापालिक क्रिया और बलि-प्रथा का चित्र उभारता है।

> पाखंडी को सिद्धि कै मठेस बस एकादसी,
> लीनी कै स्वपचराज साखा शुद्ध साम की॥[2]

यहाँ रावण के वश में पड़ी सीता के लिये 'पाखण्डी की सिद्धि', मठाधीश के वश में एकादशी, 'चाण्डाल के हाथ में शुद्ध सामवेद की शाखा' अप्रस्तुत लाये गए हैं। इन अप्रस्तुतों से केशव के समाज की धार्मिक दशा का चित्र सामने आता है। इसी प्रकार बिहारी ने प्रेम के लिये 'चौगान का खेल' (दोहा २५०), नेत्रों के लिये 'पनहा (चोरी का पता लगाने वाले)' (दोहा २६२) तथा हृदय के लिये 'हमाम (स्नानघर)' (दोहा ४१४) अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। इन अप्रस्तुतों से तत्कालीन राजदरबार और शासन-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयुक्त अप्रस्तुतों द्वारा प्रयोक्ता के परिवेश का सुन्दर अध्ययन किया जा सकता है और इस प्रकार का अध्ययन बड़ा रोचक, मौलिक और प्रमाणिक होगा।

(३) सौन्दर्य-बोध

सौन्दर्य का मानदण्ड क्या है ? यह एक विवादग्रस्त विषय है। वास्तव मे सौन्दर्य रुचि-विशेष पर निर्भर करता है। अतः जलवायु, वातावरण आदि के अनुसार सौन्दर्य का मानदण्ड भी बदलता जाता है। इसलिये विभिन्न देशों का सौन्दर्य मानक भी भिन्न है। हमारे देश में प्राचीनकाल से ही सौन्दर्य के कुछ मानदण्ड

---

१. दीन : 'केशव-कौमुदी', ५।१०।
२ दीन 'केशव कौमुदी' १२।२०।

निर्धारित हो गये हैं। समय-समय पर कविगण इनमें किंचित् संशोधन भी करते रहे है। सौन्दर्य के दो मोटे वर्ग हैं—प्राकृतिक सौन्दर्य और प्राणीगत सौन्दर्य। प्राकृतिक सौन्दर्य में वन, पहाड़, झरने, वृक्ष, लताएँ, नदी, सरोवर आदि आते हैं। प्राणीगत सौन्दर्य में अंगविन्यास, चेष्टा और वाणी का सौन्दर्य भी मिलता है। इन सभी वर्गों मे मानवीय सौन्दर्य ही सौन्दर्य-बोध की वास्तविक कसौटी है। मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत भी पुरुष रूप की अपेक्षा नारीरूप आदिकाल से मानव को आकृष्ट करता रहा है। हमारे यहाँ रूप-चित्रण का जो मान-दण्ड निर्धारित किया गया है, उसका आधार सामुद्रिक लक्षण, कामशास्त्र और उपयोगिता है। भारतीय सौन्दर्य-चितवन के मानदन्ड की सबसे बड़ी विशेषता उपयोगिता है। हमारे यहाँ बड़ी आँख, विशाल कुच और विस्तृत नितम्ब सुन्दर माने गये। इनके मूल में उपयोगिता वर्तमान है। बडी आँखों में ज्योति अधिक होगी, विशाल कुचों में बालक को स्वस्थ रखने के लिये पर्याप्त दूध होगा तथा विस्तृत नितम्बों में गर्भ के बालक का पूर्ण और स्वस्थ विकास होगा। इन्हीं उपर्युक्त आधारों पर रूप-चित्रण का एक स्थिर मानदण्ड बनाया गया है। विभिन्न अंगों में कुछ विशिष्ट गुण निर्धारित किये गये। ये निर्धारित गुण इस प्रकार हैं। केशों में दीर्घता, कुटिलता, मृदुता, निबिड़ता और श्यामता होनी चाहिये। ललाट समतल और कपोल स्वच्छ होना चाहिये। नेत्रों में स्निग्धता, विशालता, लोलता, नीलिमा तथा कटाक्ष में दीर्घता, कर्णपर्यन्ति गुण होने चाहिये। टेढी और धनुषाकार भवें सुन्दर मानी गई हैं। नासिका के दोनों पुट समान होने चाहिये। अधरों में माधुर्य, स्फीति और लालिमा गुण वर्णनीय है। दांत श्वेत तथा वाणी मीठी, स्पष्ट होनी चाहिये। लम्बी और त्रिरेखायुक्त ग्रीवा सुन्दर मानी गई है। भुजा में मृदुता, समता तथा हाथ में मधुरता, शीतलता, लालिमा गुण विवक्षित हैं। अंगुलियाँ पतली और हथेली समतल होनी चाहिये। कुच उन्नत, श्यामाग्र, विस्तृत, दृढ़, पाण्डु तथा नाभि प्रशस्त और गहरी होनी चाहिये। रोमराजि में मृदुलता, श्यामता, सूक्ष्मता और नाभिगामिता गुण स्थिर किये गये। कटि क्षीण होनी चाहिये। जांघो में कान्ति, गोलाई, रोमहीनता गुण वर्णनीय हैं। चरण कोमल, स्निग्ध, उन्नत होने चाहिये। गति मन्द और आलसमय होनी चाहिये। इन्हीं गुणो को लक्ष्य करके कवियों ने अप्रस्तुतों का संचय किया। ये अप्रस्तुत इस प्रकार हैं—

केश—अंधकार, शैवाल, मेघ, मयूरपुच्छ, भ्रमर-पंक्ति, चामर, जमुना तरंग, नीलमणि, नीलकमल, आकाश, धूप का धुँआ आदि।

वेणी—तलवार, सर्प, राहु, भ्रमरपंक्ति आदि।

माँग—रास्ता, दण्ड, गंगा को धारा।

ललाट—अष्टमी का चाँद, बाल-चन्द्र, स्वर्णपदिक।

नेत्र—मृग, कमल, मीन, खंजन, चकोर, केतकी, भ्रमर, कामबाण, घोड़ा आदि।

कटाक्ष—विषामृत, वाण, मदिरा।

भौंह—बल्ली, धनुष, इन्द्रधनुष, कामधनुष, तरंग, भृंगावली, पल्लव, सर्प, कृपाण आदि।

नासिका—कीर, तिलप्रसून, काम-तरकश, पाटली पुष्प आदि।

अधर—प्रवाल, बिम्बाफल, बन्धूक-पुष्प, पल्लव, मधु, अमृत आदि।

दांत—मुक्ता, माणिक्य, नारंगी, दाड़िम, कुन्दकली, तारा, बिजली आदि।

वाणी—हंसावली, शुक, किन्नर, वेणु, वीणा, कोकिल, चातक, मोर आदि।

कंठ—कंबु, कपोत, कोकिल, हंस।

भुजा—विषलता, मृणाल, विद्युद्वल्ली, सर्प, राहु आदि।

कुच—सुपारी, कमल, कमल-कोरक, बेल, तालफल, गुच्छा, गजकुम्भ, पहाड़, घड़ा, शिव, चक्रवाक, जम्बीर, बीजपूर आदि।

नाभि—रसातल, ह्रद, कूप, नद इत्यादि।

रोमावली—नदी, तरंग, सोपान, सिवार, जमुना आदि।

कटि—सिंह, बर्र, सुई की नोंक, शून्य, अणु, वेदी इत्यादि।

जाँघ—हाथी की सूँड़, कदली-स्तम्भ।

नितम्ब—पीढ़ा, प्रस्तर, पृथ्वी, पहाड़, चक्र।

चरण—कमल, पल्लव, बन्धूक, प्रवाल।

गति—गज, हंस।

ये अप्रस्तुत परम्परागत हैं। प्रायः सभी कवियों ने इसका प्रयोग निर्धारित अर्थ में कम-वेश मात्रा में किया है। इन अप्रस्तुतों से कवि के परम्परागत सौन्दर्य-बोध पर प्रकाश पड़ता है। इन परम्परागत अप्रस्तुतों के अतिरिक्त सिद्ध कवि अंगों के वर्णन के लिये मौलिक अप्रस्तुत जुटाने का प्रयास करता है। ऐसे अप्रस्तुतों से प्रयोक्ता के मौलिक सौन्दर्य-बोध का पता चलता है, मौलिक अप्रस्तुत कवि की सूझ-बूझ और प्रतिभा पर निर्भर करता है। यदि ऐसे अप्रस्तुतों से अंगों के विवक्षित गुण व्यक्त हो जाते हैं तो वे मार्मिक बन जाते हैं, अन्यथा कुरूप रह जाते है। अनेक कवियों ने मानवीय अंगों के लिये मौलिक अप्रस्तुत जुटाया है। जैसे—महाकवि सूरदास ने बेणी के लिये हाथी की पूंछ (सूरसागर पद २०५७) जूड़ा के लिये अंधकार का कूट, अगाध नीर (सूरसागर पद २०६३), केश के लिये लंगर (२४१५), बट-लट (४०२२), आँख के लिये नट का बटा (३००७), कान के लिये

आल बाल (२७६१), कूप (३०९३), चिबुक के लिए मूँदा मधु (३५१९), कुचों के लिये कोट का कगूँरा (३२८६), उच्चस्थली (४७३०), रोमावली के बाँस पर चढ़ा हुआ नट (२३२१), अप्रस्तुत जुटाया है। इन अप्रस्तुतों से कवि के मौलिक सौन्दर्य बोध का पता चलता है। बिहारी ने नेत्रों के लिए पनहा (चोर पकड़ने वाले) (बिहारी बोधिनी, दोहा ३९२), संड्गा (दोहा ५१) कटि के लिए लग्गी (दोहा ३२), पतली शाखा दोहा २६६) चिबुक के लिये गुलाबके फूल (दोहा ९५) तथा एंड़ी के लिए कौहर (माहरीफल) (दोहा ११०) मौलिक अप्रस्तुत लाया है, इन अप्रस्तुतों से कवि के मौलिक सौन्दर्य-चिन्तन का आभास मिलता है। इसी प्रकार 'प्रसाद' जी ने झुके हुए मुख के लिए आदि कवि का प्रथम छन्द ('कामायनी', पृ० ४५) मुख की कान्ति के ज्वालामुखी ('कामायनी', पृ० ४७), अलकों के लिए तर्कजाल, कुचों के लिए ज्ञान-विज्ञान (कामायनी, पृ० १६८) मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है इनसे कवि के मौलिक सौन्दर्य-बोध का संकेत मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतों के अध्ययन से प्रयोक्ता के परम्परागत और मौलिक सौन्दर्य-बोध की जानकारी की जा सकती है।

(४) काव्य का अलंकरण

काव्य में अप्रस्तुत पक्ष के भी दो भेद होते हैं—अप्रस्तुत-सामग्री और अप्रस्तुत-शैली। बाहर से लाई गई वस्तु अप्रस्तुत सामग्री होती है और उसके प्रयोग का ढंग अप्रस्तुत शैली है। उदाहरण के लिए—'नील घन सावक से सुकमार' इसमें 'घनसावक' अप्रस्तुत सामग्री है और 'से' वाचक शब्द के कारण उपमा अप्रस्तुत-शैली अलंकार है। अप्रस्तुतों का सम्बन्ध अर्थालंकारों से होता है। आज के काव्य में जितने अर्थालंकार प्रयुक्त हुये हैं, उन सबकी सृष्टि, अप्रस्तुत सामग्री चाहे एक ही हो, वाचक शब्दों के हेर-फेर से हो जाती है। जैसे—उसका मुख कमल के समान है (उपमा)। उसका मुख मानों कमल है (उत्प्रेक्षा)। उसके मुख कमल ही है (रूपक)। मुख नहीं कमल है (अपन्हुति)। कमल से मुख सुन्दर है। (व्यतिरेक)। कमल मुख के समान है। (प्रतीप)। मुख को कमल समझकर भ्रमर आने लगे (भ्रान्तिमान) इत्यादि। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहाँ अप्रस्तुत सामग्री तो कमल ही है, किन्तु वाचक शब्दों के हेर-फेर से अनेक अलंकारों की सृष्टि हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि इन समस्त अर्थालंकारों का प्रसाद वाचक शब्दों की ही नींव पर टिका है। वाचक शब्द तनिक से हिले नहीं कि अर्थालंकारों का महल ढहा। काव्य में अप्रस्तुत के लाने का शत-प्रतिशत प्रयोजन अलंकारों का सृजन होता है।

अप्रस्तुतों के लाने से काव्य में अतिरिक्त सौन्दर्य आ जाता है। यही अतिरिक्त सौन्दर्य ही अलंकार है। जैसे हम अप्रस्तुत-सामग्री द्वारा प्रयोक्ता के व्यक्तित्व और परिवेश का अध्ययन कर सकते हैं, उसी प्रकार प्रयुक्त अप्रस्तुत शैली द्वारा अलंकरण का अध्ययन किया जा सकता है।

काव्य में अलंकार का विशिष्ट महत्व है। बिना अलंकार के काव्य नितान्त और कोरी उक्ति, मात्र रह जाता है। काव्य में चमत्कार विधान के लिए अलंकार लाये जाते हैं। ये अलंकार केवल वाणी के शृङ्गार ही नहीं होते, अपितु भावाभिव्यक्ति के द्वार भी हैं। अर्थ-सौन्दर्य के सम्पादन में सहायक होने के कारण अलंकारों का विशेष महत्व है। अलंकारों से काव्य में प्रेषणीयता आती है, प्रभाव बढ़ता है तथा अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है, किन्तु अलंकारों का औचित्य वहीं तक है, जहाँ तक वे साधन बने रहें।

अलंकारों का सृजन अप्रस्तुत सामग्री द्वारा होता है। कवियों ने अप्रस्तुत प्रयोग द्वारा अनेक सुन्दर अलंकारों की सृष्टि की है, जैसे—

कागद नवदल अंबनि पात। देति कमल मसि भंवर सुगात।
लेखनि काम बान के चाप। लिखि अनंग कसि दीन्हीं छाप।
मलयानिल चर पठ्यौविचारि। वाचंत सुक पिक सुनि सब नारि॥[1]

इस पद में कागज, मसि, लेखनी, मुहर, चर आदि अप्रस्तुतों द्वारा सांगरूपक अलंकार की सृष्टि की गई है।

लैहौं दान इननि कौ तुमसौं।
मत्त गयन्द, हंस हम सौहैं, कहा दुरावति हम सौं।
केहरि, कनक-कलस अमृत के, कैसे दुरैं दुरावति।
विद्रुम, हेम, बज्र के कनुका, नाहिन हमहिं सुनावति॥
खग, कपोत, कोकिला, कीर, खंजन, चंचल मृग जानति।
मनि कंचन के चक्र जरे हैं, एते पर नहिं मानति॥[2]

यहाँ गयंद, हंस, सिंह, कनक, घट, विद्रुम, स्वर्ण, बज्रकण, कपोत, कोयल कीर, खंजन, मृग, चक्र अप्रस्तुतों के रूपकातिशयोक्ति अलंकार का सृजन हुआ है।

बिदा किए बटु बिनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल, जो सरीर सम स्याम॥[3]

---

१. सूरसागर, पद ३४६३।
२. " " २१६७।
३. गोस्वामी तुलसीदास : 'रामचरितमानस'-अयोध्याकांड, दोहा १०९

इस दोहे में जमुना-जल अप्रस्तुत द्वारा प्रतीप अलंकार रचा है।

आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिएँ जाहिं रघुनाथु।[1]

यहाँ जल, समुद्र, सोना, नदी अप्रस्तुतों द्वारा सांगरूपक अलंकार क.
ा हुआ है।

हिमांशु सूर सी लगै सो बात बज्र सी बहै।
दिशा जगै कृसानु ज्यों विशेष अंग को दहै।
विसेस कालराति सों कराल राति मानिए।
वियोग सीय को न काल लोहार जानिए॥[2]

यहाँ सूर्य, बज्र, अग्नि, कालरात्रि, काल अप्रस्तुतों द्वारा शुद्धापन्हुति
ार की सृष्टि की गई है।

तरुनी यह अत्रि ऋषीश्वर की सी।
उर में मन्द चन्द्र प्रभा सम नीसी।
वरसा न सुनौ किलकै कल काली।
सब जानत हैं महिमा अहिमाली॥[3]

इस पद में अनुसूया, काली अप्रस्तुतों से उपमा, अपह्नुति अलंकारों क
हुआ है।

कहत सबै बेंदी दिए, आंक दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिए, अगनित बढ़त उदोत॥[4]

यहाँ बिन्दी अप्रस्तुत के द्वारा व्यतिरेक अलंकार निर्मित किया गया है।

भाल लाल बेंदी दिए, छुटे बार छबि देत।
गह्यौ राहु अति आह करि, मनु ससि सूर समेत॥[5]

इस दोहे में राहु, सूर्य, चन्द्र अप्रस्तुतों द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार का सृजन
गया है।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास : 'रामचरितमानस'-अयोध्याकांड, दोहा २७५।
२. दीन : 'केशव-कौमुदी' १२।४२।
३. ” : ” १३।१८।
४. ” : 'बिहारी-बोधिनी', दोहा ४१।
५. ” : ” ” ४२।

दो नयनों का कल्याण बना, आनन्द सुमन सा विकसा हो ।
बासन्ती के वन-वैभव में, जिसका पंचम स्वर पिक-सा हो ![1]

यहाँ सुमन, पिक अप्रस्तुतों से उपमा अलंकार की सृष्टि की गई है ।

यौवन मधुबन की कालिन्दी, बहरही चूमकर सब दिगन्त ।
मन-शिशु की क्रीड़ा नौकाएँ, बस दौड़ लगाती हैं अनन्त ।।[2]

यहाँ कालिन्दी, शिशु, क्रीड़ा-नौका अप्रस्तुतों द्वारा रूपक अलंकार का निर्माण किया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुतों द्वारा ही सारे अलंकारों का सृजन वाचक शब्दों के हेर-फेर से किया जाता है । अतः अप्रस्तुत प्रयोग द्वारा काव्य के अलंकरण का अध्ययन किया जा सकता है ।

———

१. 'प्रसाद' : 'कामायनी', पृ० १०१ ।
२ " " पृ० १५९

अध्याय २

अप्रस्तुत प्रयोग के आधार पर सूर के व्यक्तित्व का विश्लेषण

सूरसागर के अप्रस्तुतों के अध्ययन से कवि के एक बहुज्ञ, दूरदर्शी, सूक्ष्म-द्रष्टा अनुभव सम्पन्न, सहृदय, भावुक, सरस, प्रतिभावान् और प्रौढ़ व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। जैसे दूध में स्वास्थ्य के अनेक गुण तो होते हैं, किन्तु उन्हें दूध से अलग करके दिखाया नहीं जा सकता, उसी प्रकार व्यक्तित्व के गुणों को अलग-अलग दर्शाना एक कठिन काम है, फिर भी अप्रस्तुतों के कैमरे से सूर के व्यक्तित्व का जो चित्र निकलता है, उसका संक्षिप्त अध्ययन करने का प्रयास नीचे किया गया है।

(क) बहुज्ञता

सूर का ज्ञान बड़ा विस्तृत और उनकी जानकारी बड़ी व्यापक थी। उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों से उनकी जानकारी की एक रूपरेखा उभरती है। कुछ तो सामान्य ज्ञान की बातें होती हैं, जो प्रत्येक सामान्य व्यक्ति में अपेक्षित हैं, किन्तु वस्तु विशेष का कुछ विशिष्ट ज्ञान होता है, जो सामान्य जन की परिधि से बाहर की वस्तु है। सामान्य ज्ञान प्रायः हर क्षेत्र का सूर को था ही किन्तु विभिन्न क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान भी उनके व्यक्तित्व का अंग था। विभिन्न क्षेत्रों के सूर के इसी विशिष्ट ज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत करने का नीचे प्रयास किया गया है।

विनय के पदों में सूरदास ने राज्य के विभिन्न अधिकारियों, कर्मचारियों और शासन-प्रबन्ध की तमाम शब्दावली को अप्रस्तुत के रूप में प्रयुक्त किया है। राजदरबार के ये कर्मचारी हैं—द्वारपाल (१४१), प्रतिहारी (१४१), पौरिया (४०), छड़ीदार (४०), खवास (१४१), सूत (३५८), मागध (१४४), नकीब (१४१) आदि। शासन-व्यवस्था के कर्मचारी हैं—मन्त्री (१४४), वजीर (६४), सेनापति (६७६), फौजपति (२९२२), कोतवाल (६४), काजी (२१४८)—मुसलमान धर्म के अनुसार न्याय करने वाला न्यायाधीश इत्यादि। राज्य प्रबन्ध के अन्य कर्मचारियों में अमल (६४), अहदी (६४), मुस्तौफी (१४३), मुजमिल (१४३), मोहरिल (१४३) हैं। ग्राम प्रधान के लिए पटवारी (१८५), मसाहत नापजोख (१४२), लिखहार—करों का हिसाब-किताब करने वाला (१४२), मुहासिब-आय-व्यय परीक्षक (१४२), अमीन (६४), मोहरिल-मुहर्रिर (लिखने वाला) (१४३), अधि-

कारी (१८५), आदि मुख्य हैं। लगान तथा कर के समानार्थी पोता (१४२) मुहासिल (१४२), जहतिया-जकात (१४२) शब्द हैं। एकत्र धन को मुजमिल (१४२) और हिसाब की कापी को वारिज (१४२), अवारजा (१४२), वही (१८५) कहते थे। हिसाब की रसीद को फरद (१४२) अथवा रुक्का (६१६) कहते थे। पूरा लगान न देने पर बाकी (१४३), जिम्मे (१४२) रह जाता था। कभी-कभी बट्टा (१४२) भी काटा जाता था। तगीरी (१४२) बदली के लिये और दस्तक (१४२) कुड़की के लिये फारसी शब्दावली थी। इन अधिकारियों और शासन-प्रबन्ध की शब्दावली से राजदरबार और शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी सूर की जानकारी पर प्रकाश पड़ता है। यह शब्दावली विनय के ही पदों में मिलती है और विनय के पद सूर के वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पहले के लिखे हुए हैं। फारसी की विस्तृत शब्दावली का विशिष्ट ज्ञान, उनके ब्यौरेवार वर्णन तथा राज्य के विभिन्न कर्मचारी और उनके कार्यों के विस्तृत ज्ञान से ऐसा लगता है कि बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व अकबरी शासन या राजदरबार से सूर का कोई न कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध अवश्य था। फारसी की इस शब्दावली से यह भी संकेत मिलता है कि सूर को फारसी का भी ज्ञान था। ग्राम-प्रबन्ध के विस्तृत-चित्रण से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर का सम्बन्ध गाँवों से अधिक था।

कृषक-जीवन और खेती-किसानी का भी सूरदास को विशिष्ट ज्ञान था। कृषि सम्बन्धी प्रमुख शब्दावली का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग हुआ है (१८५)। मिल्कियत (३१४२) और सीर (७७६) पर किसान का पूरा अधिकार होता है, यह वे जानते थे। बंजर भूमि खेती के योग्य नहीं होती (१८५)। खेती के औजार जुआ (१८५), कुदाल (४६१६) सुतारी,[1] (१८६) सिंचाई के साधन-रहंट (४४९२) तथा खलिहान (१४२) से उनका परिचय था। वर्षा के बिना धान के अंकुर (४२१८) की क्या दशा होती है—यह वे जानते थे? आषाढ़ मास की प्रथम वर्षा के बाद खेत में जो घास उग आती है, उसे किसान तुरन्त उखाड़ कर फेंक देता है, क्योंकि यदि घास फैल जायगी तो उपज कम होगी (१०७)। खेत कट जाने के बाद बाल की बिनाई की जाती है (११३७, ४३५८)। फसल के पूरी तरह सूख जाने पर कटाई होती है, अतः कुछ बालें खेत में झड़ जाती हैं, बाद मे किसान उनकी बिनाई करता है—सूर को इसकी जानकारी थी। पाटी[2] पर की गई खेती प्रायः निगरानी के अभाव में नष्ट हो

१. सुतारी को आर या पैनी भी कहते हैं। यह एक लकड़ी में नाखून के बराबर निकली कील होती है, जिससे कोंचने पर बैल तेजी से चलता है। यह बैल हांकने का औजार है।

२. 'पाइ' का अर्थ कुछ लोगों ने 'पाई' नामक कीड़ा किया है, जो मुझे मान्य नहीं है।

जाती है (४२२४)--इसका उन्हें ज्ञान था। खेतों की मेड़बन्दी निहायत जरूरी होती है, जिससे खेत में पानी रुक सके, और डाली हुई खाद वर्षा में बह न जाय--इसका भी उन्हें ज्ञान था (३०८८)। धनिया, धान और कुम्हड़ा तीनों एक साथ नहीं उत्पन्न होते (४२२२)। धनिया शिशिर ऋतु मे होती है, धान शरद में और कुम्हड़ा ग्रीष्म ऋतु में, नील के खेत (३५८) से भी वे परिचित थे, ईख का आग[1] या अगौवा (४२७०) मीठा नहीं होता, इसे लोग तोड़कर फेंक देते हैं। इसकी जानकारी सूर को थी। इसके अतिरिक्त गुड़-निर्माण क्रिया की विस्तृत जानकारी महाकवि को थी। ईख के रस को कड़ाहे में औटाया जाता है, लेकिन ज्यादा औटाने पर गुड़ का स्वाद जाता रहता है (६३)।

वैद्यक-सम्बन्धी भी पर्याप्त जानकारी सूर को थी। वैद्य के सामने किसी प्रकार का भेद नहा रखना चाहिये (४४८) सभी बातें स्पष्ट बता देनी चाहिए, तभी वह रोग को पहचान सकेगा और उचित औषधि दे सकेगा। कुपथ्य नहीं लेना चाहिए, अन्यथा दोहार हो जाता है, जो अधिक भयंकर होता है (४०१६)। त्रिदोष (वात-पित-कफ) एक भयंकर रोग है (३६६३)। पांडुरोगी का शरीर बिलकुल पीला हो जाता है (४५८९)। तेजज्वर मे शंकर को प्रतिदिन सौ घड़े जल चढ़ाया जाता है, जिससे बुखार उतर जाय (४७४०)। यह क्रिया आज भी गाँवों में की जाती है। पितज्वर में रोगी को गुड़ कदापि नहीं खिलाना चाहिए (४८०६)। राजयोग में दही नहीं खाना चाहिए (४३४३)।

वाणिज्य के क्षेत्र का भी सूर को पर्याप्त ज्ञान था। वणिक् सामान लादकर हाट में ले जाता है। जिस व्यवसाय में मूल पूँजी में भी हानि हो, उसे नहीं करना चाहिए। वह वाणिज्य श्रेष्ठ है, जिसमें लाभ हो। वाणिज्य के क्षेत्र में दलाली भी खूब होती है (३१०)। वणिक् अपनी पूँजी कोठी में रखता है (१६४८)। सूर के समय में वाणिज्य में बँटवारे भी लगते थे। वाणिज्य का लेखा करके उस पर चुंगी लगाई जाती है (२१४२)। दुकानदारों से चुंगी आज भी बाजारों में ली जाती है। रत्न, धातु और सिक्कों के बारे में भी सूर को कुछ विशिष्ट जानकारी थी। सूर के समय में नग को कथरी में सिलकर रक्खा जाता था, क्योंकि चोरी-डकैती का भय रहता था(४३३२)। आज भी आभूषण और सिक्कों को गाँवों में या तो पुरानी कथरी में सी देते हैं, अथवा जमीन के अन्दर गाड़ देते हैं, जिससे चोर, डकैत, उसे पा न सकें। बारहबानी कनक (१८००) बिलकुल शुद्ध होता है। स्वर्ण की शुद्धीकरण प्रक्रिया में भी सूरदास परिचित थे। रसायनी सोना लेकर घरिया या शीशी में रख-

---

१. आग को आक करके कुछ विद्वानों ने अर्थ किया है—मदार जो मुझे मान्य नहीं है।

कर आग जला देता है। आँच पर बराबर ध्यान रखता है, क्योंकि आँच अधिक होने पर सोने के पिघल कर बह जाने का भय रहता है, अथवा घरिया या शीशी फूट जाने का भी भय रहता है (३६१४, ४०२२)। स्वर्ण-भस्म भी इसी प्रकार बनाया जाता है। रत्न निकालने की पूरी विधि भी सूर को मालूम थी। पहाड़ या धरती को कुदाल से खोदा जाता है, सारी बालू हटा दी जाती है, तब कहीं रत्न की प्राप्ति होती है (४६५६)। एक स्थान पर 'चाम के दाम' (४२५७) का भी उल्लेख हुआ है, जिससे एक दिन के शासन में भिश्ती द्वारा चलाए गये चमड़े के सिक्के के ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत है। शेरशाह से हारकर भागे हुए हुमायूँ को एक भिश्ती ने शरण दी। प्रत्युपकार में हुमायूँ ने उस भिश्ती को एक दिन के लिए बादशाह बना दिया। भिश्ती ने अपनी एक दिन की बादशाहत में चमड़े का सिक्का चला दिया, जो इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है।

पशु-पक्षी जगत की कुछ विशेष जानकारी सूर को थी। नागिन जब किसी को डँस लेती है, तो तुरन्त उल्टी हो जाती है (३८९०)। साँप जब मणि को उगलता है तो उसी के ऊपर फन किये बैठा रहता है, क्योंकि उसे भय रहता है कि कहीं कोई मणि को चुरा न ले जाय (१२४३)। नागिन अण्डे देने पर कुण्डली मारकर उन अंडों को सेती है। अण्डे से निकल कर सांप का बच्चा उछलता है, जो कुण्डली के बाहर चला जाता है, उसे छोड़ देती है, किन्तु जो अन्दर रह जाता है, उसे नागिन खा जाती है (४३७१)। सर्पदंश और विष-निवारण-प्रक्रिया की भी विस्तृत जानकारी सूर को थी। गारुड़ी कान में जड़ी डालता है और मन्त्र पढ़ता है। मन्त्र के असर से विषधर लहरें देता है (२७५, १३६५)। जाड़े को ऋतु में शीत से कांपता हुआ बन्दर, गुँजा को अग्नि समझकर, शीत मिटाने के लिए उसे घेर कर बैठ जाता है (१०२, १४७)। हारिल प्रण है कि वह धरती पर नहीं बैठेगा, अतः जब वह धरती उतरता है तो अपने पंजे में एक लकड़ी का टुकड़ा अवश्य दबाये रहता है (४६०६)। भौंरा अन्य फूलों का रसपान तो करता है, किन्तु चम्पा के पास वह भूलकर भी नहीं जाता, क्योंकि चम्पा से उसका स्वाभाविक वैर है (४३३६)।

ग्रह-नक्षत्र और ज्योतिष के सम्बन्ध में भी सूर की पहुँच थी। गुरु, शुक्र, मंगल, शनि ग्रहों के रंगों और उनके प्रभाव की जानकारी सूर को थी (७२२, ३२३१)। जब एक ग्रह किसी राशि का भोगकाल समाप्त किए बिना दूसरी राशि में चला जाता है तो ज्योतिष में इसे 'अतिचाल' कहते हैं। सूर को इसका ज्ञान था। इस अप्रस्तुत का प्रयोग सूर ने कृष्ण के, गोपियों को छोड़कर कुब्जा-प्रेम के लिए किया है (९९०)। एक स्थान पर आया है 'पृथ्वी भइ षष्ठ अरु अष्ट अकास भये' (५८२)। ज्योतिष के नव ग्रहों के सांकेतिक नाम हैं—बृहस्पति (जीव), शनि (अहंकार), चन्द्र (मन), बुध (बुद्धि), सूर्य ( ), केतु (वायु),

मंगल (अग्नि), शुक्र (जल), राहु (पृथ्वी)। पृथ्वी का षष्ट होना अर्थात् वायुमय होना और आकाश का अष्ट होना अर्थात् जलमय होना—यह तात्पर्य है। वृष राशि में यदि चन्द्र है तो शरीर को बहुत सुख मिलता है, सिंह राशि के चौथे घर में यदि सूर्य है तो वह दिग्विजयी होता है, कन्या राशि के पाँचवें घर में यदि बुध हो तो वह बहुत पुत्रवान् होगा, तुला राशि के छठें स्थान में यदि शनि युक्त शुक्र है तो वह शत्रु जयी होगा, सातवें स्थान पर यदि राहु है तो वह व्यभिचारी होगा, मकर राशि के भाग्य भवन में यदि मंगल है तो वह ऐश्वर्यवान् होगा, मीन राशि के लाभ-भवन में यदि बृहस्पति है तो वह नवनिधि प्राप्त करेगा और ईश राशि के कर्म भवन में यदि शनि है तो वह श्याम वर्ण का होगा (७०४)। ज्योतिष की अपनी विस्तृत जानकारी का परिचय इस प्रकार सूर ने अप्रस्तुतों के माध्यम से दिया है।

धर्म, ऋषि, मुनि और योग के बारे में भी सूर को कुछ विशिष्ट जानकारी थी। मुनि लोग भ्रमण करते रहते हैं, किन्तु वर्षा के चार महीने एक ही स्थान पर निवास करते हैं (४२६२)। सिद्ध, गुफा के भीतर आसन लगाकर, स्वास चढाकर साधना करता है (३११८)। धार्मिक कार्यों में रोचना और स्वस्तिक चिन्ह बनाया जाता है, जो रंग-बिरंगा होता है (६५८)। हिन्दू धर्म में काशी मे तप करने का विशेष महत्व है (४०६४)। तपस्या में एक शीर्षासन लगाकर तप करने की भी है (३२३१)। धार्मिक अनुष्ठानों में आरती का भी विशेष महत्व है। पात्र में घी डालकर बाती जलाकर आरती की जाती है (३७१)। सूर के पूर्व सन्त-सम्प्रदाय में योग-साधना का विशेष महत्व था। सूर को इस योग साधना की पूरी जानकारी थी। योग की क्रियाएँ—आसन, कर्षण, बंधन, पवन-अटेरोधन, पांच अग्नि तापना, धूम्रपान अलख, सहज-समाधि, परमज्योति, त्रिकुटी, प्रकाश, कन्दसूर, अनाहद, आनन्द, ज्ञान, गुरु, गोरख तथा योग की सामग्रियों—जटा, भसम, मेखला, मुद्रा, अधारी, खप्पर, सिंगी, दण्ड, सेल्ही, कंथा आदि की सूर को विस्तृत जानकारी थी (४१४८, ४३११, ४३१२)। दिगम्बर योगियों का भी एक सम्प्रदाय था, जो नंगे ही रहा करते थे (४४१६)।

समाज के विभिन्न पहलुओं की भी सूर को अच्छी जानकारी थी। सूर के समाज में ठगी का काफी जोर था। आते-जाते बन के भीतर दिन-दहाड़े मार्गों पर ठग लूट लिया करते थे। सवारी का साधन न होने के कारण लोग प्रायः पैदल ही यात्रा करते थे। ठग लोग भेदिया रखते थे, जो यात्रियों के आने की सूचना दिया करते थे। यात्रियों को लड्डू, गुड़ या अन्य खाद्य में विष मिलाकर दे दिया करते थे, जिसे खाकर राही बेहोश हो जाता था। तत्पश्चात उसके गले में फन्दा डालकर उसका सारा समान लूट लिया जाता था। कभी-कभी राहियों की मृत्यु भी हो

जाती थी। ठगी की इस विस्तृत प्रक्रिया का सूर को विधिवत् ज्ञान था (२२०१,-२६०८, ४४५०)। खानाबदोषों के बारे में भी सूर की जानकारी थी कि ये एक स्थान पर न रहकर घूमते-फिरते डेरा डालते चलते हैं (४२०१)। मदिरा पी लेने के बाद मद्यप की क्या दशा होती है ? इसका प्रत्यक्ष अनुभव सूर को था (४१२२)। अतिथि-सत्कार कैसा होना चाहिए ? इसकी विशेष जानकारी सूर को थी। हमारे देश में अतिथि-सत्कार का विशेष महत्व है। अतिथि के आते ही आसन से उठकर आधे आसन पर उसे आश्रय देना चाहिए। अतिथि का पाँव धोना चाहिए। उसके स्थान पर दीपादि का प्रकाश कर देना चाहिए। मधुर भोजन देना चाहिए। घी दूध और नमकीन से अतिथि की भरपूर सेवा करनी चाहिए (३४४०)। अतिथि-सत्कार का यह शिष्ट तरीका सूर को मालूम था।

नारी जगत की कुछ विशेष जानकारी सूर को थी। मुरली प्रसंग में नीच कुल की स्त्री और उसके कार्य-व्यापारों का बड़ा सुन्दर चित्र सूर ने खींचा है (१८६६, १८८०)। संस्कार पितृजन्य होते हैं, सभ्यता की काई संस्कार से जलपर छाई रहती है, जो एक ही कंकड़ की चोट से फट जाती है और संस्कार अंगड़ाई लेकर बोलने लगते हैं। मुरली प्रसंग में ही सौति का भी हृदयहारी चित्रण हुआ है। सौति किस प्रकार स्वामी पर एकाधिकार पाने का प्रयास करती है, आपसी ताने और लड़ाई-झगड़े कैसे होते हैं ? इन सब का सूर को प्रत्यक्ष अनुभव था (१२७२, १८५६)। इसी प्रकार विरहिणी स्त्री की दशा होती है ? इसका विस्तृत चित्र सूर ने खींचा है। विरहिणी के शरीर में तड़पन होती है, कृशता के कारण बार-बार पलंग से धरती पर गिर पड़ती है। शीतलता के लिए जल और सुदर्शन चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। विरहिणी बालों में तेल नहीं लगाती, अतः रूखे बाल झड़ते रहते हैं। निरन्तर रोने के कारण काजल से साड़ी मैली हो जाती है। कभी-कभी वह आंय-बांय बकने लगती है और कभी पी-पी की गुहार मचा देती है (३८०६)। इसी प्रकार वासक सज्जा नायिका का भी चित्र सूर ने खींचा है, पति के आगमन की सूचना पाकर घनी श्रृंगार में जुट जाती है। सुन्दर वस्त्र धारण करती है, कटि में किंकिणी, पावों में नूपुर, कान में कर्णफूल और स्तनों पर कंचुकी धारण करके एकटक प्रिय का मार्ग देखती है। हुलास से उसका आंचल नहीं सम्हलता, बार-बार उचक-उचक कर प्रिय का मार्ग देखती है (३६४०)। विरहिणी और वासकसज्जा व नायिकाओं की ऐसी सुन्दर परिभाषा शायद ही कहीं अन्यत्र मिले। बिना प्रत्यक्ष अनुभव और जानकारी के ऐसा चित्र कदापि नहीं खींचा जा सकता। नारी-स्वभाव की सूक्ष्म जानकारी सूर को थी। स्त्रियाँ थोड़ी-सी ही बात

में खिसिया जाती हैं (२१६१)। स्त्री का स्वभाव, जल के निकट की बालू जैसा होता है। गीली बालू पर यदि फावड़ा मारा जाय तो फावड़ा टन-से करके ऊपर उछल जायगा, लेकिन यदि फावड़ा धंसाकर पिघला कर बालू निकाली जाय तो पूरा फावड़ा भर कर बालू निकल आयेगी। स्त्री-स्वभाव भी ऐसा ही होता है। कठोरता से स्त्री साक्षात् दुर्गा बन जाती, है, किन्तु विनय से साक्षात् गऊ (३७८)। स्त्री स्वभाव का इतना सुन्दर चित्रण पूरे हिन्दी साहित्य में कहीं नहीं मिलेगा।

विटनारी और गणिका के सम्बन्ध में भी सूर की जानकारी थी। बिटनारी किस तरह परपुरूष को रिझाती है ? वह सदा ही बाहर रहना पसन्द करती है। घर उसे काटने दौड़ता है। घर, यदि भूलकर आ भी गई तो गौने की दुल्हन जैसी विकल हो जाती है (२६६३)। गणिका भी किस प्रकार राती चुनरी, श्वेत उपरना और नीला लंहगा पहनकर पुरुषों को सम्मोहित करती है, कोई पुरुष उससे उबर कर जाने नहीं पाता। परपुरुषों के साथ गणिका सुख की नींद सोती है, सभी पुरुषों को वह तृप्त करती है। छैलों के साथ इस तरह गणिका बिहार करती है (४८)। इस प्रकार गणिका के जीवन की भी विस्तृत जानकारी सूर को थी।

घड़ा पकाने की प्रक्रिया का पूरा ज्ञान सूर को था। कुम्हार घड़ा तैयार कर लेने पर उस पर तरह-तरह के चित्र बना देता है, फिर अंवा में घड़े को डालकर अग्नि जला देता है। वर्षा से आग बुझने न पाये, इसलिए ऊपर अटा छा देता है। फूंक-फूंक कर अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है। इस प्रकार घड़ा पक्कर तैयार होना है (४३९९)। सूर को इस पूरी प्रक्रिया का ज्ञान था। इसी प्रकार सामान्य जीवन की और भी बहुत सी बातों की विशद् जानकारी इस महाकवि को थी, कपूर उड जाता है, अतः उसे नली के भीतर खड़िया के साथ बांधकर रक्खा जाता है (३७२२, ४१६१)। कांजी डाल देने से दूध फट जाता है (४५७५)। खट्टी अमिया से कनक-कलई उघर जाती है (४२४७)।

संगीत से सूर का घनिष्ठ सम्बन्ध था। राग-रागिनियों का उन्हें विशेष ज्ञान था (४६१६)। पानी के जहाज की जब डूबने की आशंका होती है, तो चालक तुरन्त लंगर डाल देता है—यह भी सूर को ज्ञात था (२४१५)। व्याकरण के ग्राम और शब्द की उन्हें जानकारी थी (४६१६)। सूर के समय में चौपड़ एक लोकप्रचलित खेल था[1]। सूरदास को इस खेल की पूरी जानकारी थी। चौपड़ एक

---

१. जायसीकृत पद्मावत—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३०३-२७/२३, पृ० ३०८-२७/२४। (साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी-प्रथम संस्करण सं० २०१२)।

कपड़े पर बनता है, जिसे गजी कहते हैं। पौ से खेल की जीत होती है। एक पासा होता है, जिसे फेंककर चाल चली जाती है। कपड़े को पसारा जाता है, बीचोबीच घर होता है। अठारह, सोलह, पन्द्रह, तेरह, बारह, पांच और तीन की चाल होती है। बाजी की हार-जीत होती है (६०,१५१)। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न क्षेत्रों की विस्तृत जानकारी सूर को थी। उनकी प्रतिभा सामान्य से कहीं ऊँची थी, और उनका ज्ञान सामान्य से कहीं बढ़-चढ़कर था। उपर्युक्त उदाहरणों से महाकवि की बहुज्ञता स्वतः प्रमाणित है।

(ख) दूरदर्शिता

सूर के अप्रस्तुतों के अध्ययन से उनकी दूरदर्शिता पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कवि अप्रस्तुतों को जुटाने के लिए आकाश-पाताल की खाक छान मारता है, हर स्थान को लम्बी नाक करके सूंघता है और जहाँ कहीं भी उसे उपयुक्त अप्रस्तुत दिखाई देते हैं, उनका कान पकड़कर ले आता है और अपने पदों की पंक्तियों में बिठा देता है, प्रायः दूरागत अप्रस्तुतों के कारण काव्य में क्लिष्टता आ जाती है, क्योंकि ये अप्रस्तुत लोक-प्रचलित नहीं होते। सूर ने ऐसे दूरागत अप्रस्तुतों को ग्रहण किया है, किन्तु इससे उनके काव्य में क्लिष्टता और दुरूहता नहीं आने पाई है।

आँख और अंजन रेखा के लिये कवि, 'शंकर का यश और कुयश' अप्रस्तुत लाता है (३२६६)। यश का रंग श्वेत होता है—आँखों का रंग भी श्वेत है; कुयश का रंग काला माना गया है और अंजन भी काला है। कृष्ण मुख में रोटी लिये हैं—इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि बराह अवतार तक की दौड़ मारता है और अप्रस्तुत ढूंढ़ लाता है 'दांत पर भूधर और पृथ्वी लिए हुए बराह' (७८)। राम के पुष्पक विमान के लिए कवि ने 'द्वितीया का चाँद' (६११) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। केसर की आड़ कवि के मन में इतनी चुभती है कि उसे मात्र परी कहने में कवि को सन्तोष नहीं हुआ, अतः उसे 'सुधा की परी' कहना पड़ा (२७३२)। दशरथ-मृत्यु की सूचना पाकर सीता की जो दशा हुई, उसके चित्रण के लिए कवि 'दावाग्नि से जलता वन' (४९६) अप्रस्तुत लाता है। काले जूड़े के यथातथ्य वर्णन के लिए कवि को 'अन्धकार का कूट' (२०६३) अप्रस्तुत लाना पड़ा। आदमी जब जम्हाई लेता है तो धीरे से वायु उसके मुख से निकलती है, अतः इसके लिए कवि ने 'मन्द मारुत' (३३०३) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया। गोपियों के नेत्रों के कृष्ण उड़ा ले गये। नेत्र कृष्ण के साथ चक्कर काट रहे हैं, जैसे बातचक्र का तृण (२९०४)। धुआँ उड़ते-उड़ते कभी मन्दिर का रूप धारण कर लेता है, किन्तु क्षण भर बाद ही पुनः नष्ट हो जाता है ठीक इसी प्रकार यौवन भी क्षणिक है (३२१०) अधरों के ऊपर

दांत की शोभा ऐसी है, मानों कमल के ऊपर किसी ने बिजली जमा दिया है (७००)। विरहिणी राधा में कवि ने षट् ऋतुओं को एक साथ उपस्थित कर दिया है (३६६३) चरण चिन्हों के लिए जल का फेन अप्रस्तुत लाया गया है (३२०३)। राधा के सभी अंग मधुमय हैं, अमृतमय है, अतः पूरे शरीर की क्या उपमा दी जाय ? इसलिए कवि ने शरीर को सुधा-पनारी कह दिया (१७३८)। चौदह वर्ष के बनवास की सारी विपत्तियाँ झेलकर वापस आये। राम का शरीर मलीन तो जरूर हो गया है, किन्तु उसका सौन्दर्य, आभा और पवित्रता अक्षुण्ण है। इसके लिये कवि अप्रस्तुत लाता है 'अग्नि से जला गंगा का किनारा' (६१४)। इस अप्रस्तुत में राम के प्रति उदात्त भाव प्रदर्शित है। यह संसार क्षणभंगुर है, धन, स्त्री-पुत्र सबका साथ क्षणिक है, इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'नाव की संगति' (८४)। नाव की संगति भी क्षण भर के लिए होती है, किनारे पहुँचते ही सब लोग तितर-बितर हो जाते हैं। विरहिणी गोपियों की आँखों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित है, जिससे सेज जलमय हो जाती है। ऐसी जलमय सेज के लिए कवि अपनी प्रतिभा से अप्रस्तुत ढूंढ़कर लाता है 'घर नाव' (३८९३)। घर नई, बाँस के टुकड़ों पर हौदा बांधकर बनाई जाती है, जिसमें एक आदमी बैठकर छोटी-मोटी नदियों को पार करता है। कृष्ण के श्याम उर का वर्णन कवि 'सुधा-दह' द्वारा करता है (२८५६)। दह, गहरे जल को कहते हैं। दह या कुण्ड का जल गहराई के कारण नीला दिखाई देता है। गोपी नेत्र कृष्ण की ओर भाग रहे हैं, किसी प्रकार वापस नहीं लौटते, इस भाव के चित्रण के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'पहाड़ की खोर में नदी' (२९११)। पहाड़ की खोर में सुदूर ऊपर से नीचे गिरती हुई नदी का प्रत्यक्ष दर्शन जिसने किया होगा, वही इस अप्रस्तुत योजना का पूरा रसास्वादन कर सकता है। गोपी-नेत्र अपने को चूर्ण करके सौन्दर्य-सागर कृष्ण के, न जाने किस अंग में समा गये हैं, इसका चित्रण कवि 'पर्वत पर बूँद' अप्रस्तुत द्वारा करता है (२९१०)। पर्वत पर बूँद पड़ती है तो चूर्ण-चूर्ण होकर तितर-बितर हो जाती है। मानिनी राधा को मनाने के लिये कृष्ण गोपियों को भेज देते हैं। गोपियाँ जाकर मान-मनौती करती हैं, किन्तु राधा टस से मस नहीं होती। अतः निराश होकर वापस आकर गोपियाँ सारी घटना कृष्ण से तद्वत् बताती हैं, कुछ छिपाती नहीं। गोपियाँ कृष्ण से झूठ बोल भी नहीं सकतीं इसका यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करने के लिये कवि अप्रस्तुत लाता है 'बारू से बूँद की दुताई' (३१८९)। बूँद, बालू से मिल कर एक हो जायेगी, दुतायी भला क्या करेगी ? इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी-देवताओं और प्रकृति का कोना-कोना झाँककर कवि ने अप्रस्तुतों का चयन किया है।

वृक्ष और लता जगत को भी कवि टटोलता है और भावों के अनुरूप अप्रस्तुत

का प्रयास करता है। कृष्ण से गोपियाँ बिना सोचे-समझे मन लगा बैठीं, और अब तो बात फैल गयी, अब सोचने-समझने से भी हाथ क्या आयेगा ? बात किस प्रकार फैली ?—इसके लिये कवि अप्रस्तुत लाता है 'बट का बीज' (२२७८)। बरगद का फल पककर चिटक जाता है और बीज दूर-दूर तक फैल जाता है। कहाँ तो अबलाएँ विरहिणी गोपियाँ और कहाँ निर्गुण ? दोनों एक साथ भला कैसे रह सकते हैं ? इस भाव के चित्रण के लिये कवि ढूँढ़कर अप्रस्तुत लाता है 'केला के पास बेर' (४४८१) बेर के काटे टेढ़े-टेढ़े होते हैं और केला का पत्ता हमेशा हिलता रहता है, क्योंकि पत्ता बड़ा होता है, अतः अधिक हवा का घेरा उससे टकराता है। ऐसी स्थिति में हर क्षण बेर का काँटा केले के पत्ते को छेदता रहेगा। ऊधो का योग गोपियाँ उसी प्रकार वापस कर देती हैं, उसे छूती तक नहीं—इसके चित्रण के लिए अप्रस्तुत लाया गया है 'विप्र नारियर' (४४२७)। हमारी संस्कृति में वन्दन के समय ब्राह्मण जो नारियर लाता है, उसे उसी रूप में वापस कर दिया जाता है। यह है सूर की दूरदर्शिता। योग की कड़ुवाहट के लिए कवि 'खारा टेंटा' (४१९७ का प्रयोग करता है। गोपियाँ कृष्ण के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर चुकी हैं, अब उन्हें कृष्ण के अतिरिक्त और कोई नहीं दिखाई देता, जैसे 'खेड़े पर दूब' ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती (४६०७)। कवि की दूरगामी दृष्टि छोटी से छोटी चीज को भी नहीं छोड़ती। गोपियों का मन कृष्ण के सामने पानी-पानी हो जाता है, इसके लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'सूर्य-दर्शन पाकर शिवछत[1] (कुकुरमुत्ता) का गलना' (२५३१, २४३२)। सूर्य के ताप से कुकुरमुत्ता गलकर पानी हो जाता है। कवि की दूरगामी दृष्टि कुम्भी की जड़ (२६८६) पर भी पड़ती है। कुम्भी में एक मूसला जड़ मिट्टी में थोड़ी गड़ी होती है। यदि कुम्भी को उखाड़ा जाय तो पूरी जड़ उखड़ आती है, एक भी रेशा जमीन के अन्दर नहीं रह जाता। गोपियों के नेत्र भी उनके पास से उसी प्रकार निर्मूल रूप में चले गए।

पशु-पक्षी और कीट-पतिंगों के संसार में भी कवि अपनी दूरदर्शिता लेकर पैठता है और हर कोना झाँककर अपना मतलब साधता है। कृष्ण की सुरति में रंगी राधा का भेद गोपियाँ लेना चाहती हैं, किन्तु राधा भी इतनी उथली नहीं हैं कि उससे आसानी से कुछ उगलवाया जा सके। राधा की इस रहस्य-बुद्धि के लिए कवि 'मीन के पानी पीने' का अप्रस्तुत लाता है (२३६३)। मछली जल के भीतर कब पानी पी

---

१. शिवछत का अर्थ श्री सुदर्शन सिंह ने शिवछत्र (घाव विशेष) या शिलाजतु किया है, किन्तु यह मुझे मान्य नहीं।
श्री सुदर्शन सिंह—'अनुराग पदावली', गीताप्रेस, प्रथम संस्करण, संवत् २०१५, पृ० १०६।

लेती है ? इसे कौन जान सकता है ? इसी तरह राधा के मन का रहस्य भी अत्यन्त गोपनीय है। सूर के सर्वस्व कृष्ण हैं, कृष्ण को छोड़कर अन्य देव के पीछे लगने से कुछ प्राप्ति नहीं होती, श्रम ऊपर से व्यर्थ जाता है, इस भाव के चित्रांकन के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'कुलाल[1] (बनमुर्गा) के पीछे कुत्ते का दौड़ना' (-५२)। कुत्ता बनमुर्गे को दौड़ाता है, पहले तो बनमुर्गा धीरे-धीरे भागता है, किन्तु कुत्ते के नजदीक आते ही फुर्र से उड़ जाता है। बेचारे कुत्ते के हाथ कुछ नहीं लगता, उसे निराश होना पड़ता है, श्रम ऊपर से व्यर्थ जाता है। कवि की दूरगामी दृष्टि से महाभारत के युद्ध का भरुही का अण्डा भी बचकर नहीं जा सका। कृष्ण अपने भक्तों की सदा रक्षा करते हैं, जैसे उन्होंने महाभारत के युद्ध में भरुही पक्षी के अण्डे की रक्षा की (४७७७)। महाभारत के युद्ध में भरुही के अण्डे के ऊपर हाथी का घण्टा कटकर गिर गया, जिससे वह भली-भाँति ढँक गया और युद्ध के अन्त तक सुरक्षित बचा रहा। जिस युद्ध में वीर धुरंधर भी खेत आए, उसी युद्ध में भरुही का अण्डा सुरक्षित बचा रहा। यह है भगवत्कृपा सूर कहते हैं, हे प्रभु! आप मेरे ऊपर सदैव निगाह बनाए रहें और मुझे डाटते रहें, त्रासित करते रहें, जैसे 'किलकिला[2] पक्षी मीन को' (१०७)। किलकिला पक्षी मीन का शिकार करता है, उसका ध्यान मछली पर लगा रहता है, ज्योंही मछली पानी के ऊपर आई कि टूटकर मछली पकड़ ले जाता है। विवश मन के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'नलिनी का सुवटा' (४६)। बहेलिया तोता फँसाते समय एक नरसल बाँध देता है, जिस पर तोता आकर बैठता है, किन्तु बैठते ही नरसल घूम जाती है और तोते की टाँग ऊपर और धड़ नीचे हो जाती है। तोता चाहे तो नरसल को छोड़कर उड़ जाय, किन्तु वह समझता है कि मैं पकड़ लिया गया हूँ जब कि उसे किसी ने नहीं पकड़ा है। नलिनी इसी नरसल को कहते हैं। जीव भी इसी तरह जान-बूझ कर भय और लोभवश माया में आबिद्ध रहता है। सांसारिक प्रीति व्यर्थ है, इससे कुछ प्राप्ति नहीं होती। जीव व्यर्थ में माया-मोह में फँसा रहता है, इसके लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'सेमर का सुवा' (:१३)। सेमफल को देखकर सुआ सोचता

---

१. कुलाल का अर्थ श्रीसुदर्शन सिंह ने कुम्हार किया है अर्थात् कुम्हार के खाली बर्तन को देखकर कुत्ता समझता है कि इसमें कुछ है और उसके पीछे लग जाता है, किन्तु उसे निराश होना पड़ता है। मेरी दृष्टि से ऐसा अर्थ करना कुत्ते की जिघ्रण शक्ति का मजाक उड़ाना है। कुत्ता तो अपनी जिघ्रण शक्ति के आधार पर सैकड़ों मील जाकर भी उसी रास्ते से वापस लौट आता है।

—श्री सुदर्शन सिंह—'सूर विनयपत्रिका', गीता प्रेस, पंचम संस्करण, सं० २०१६, पृ० ५४।

२. 'किलकिला' का अर्थ कुछ लोगों ने पहली वर्षा का जल भी किया है।

है, यह बहुत मीठा फल होगा, किन्तु पक जाने पर ज्यों ही सुवा उसमें चोंच मारता है, रुई उपर पड़ती है। तोते बेचारे पर घड़ों पानी पड़ जाता है। सांसारिक प्रेम मे लिप्त जीव की भी अंतिम परिणति यही होती है, उसे भी हाथ मलकर जाना पड़ता है। वियोग की दो दशाएँ होती हैं, एक में विरहिणी को स्व का भान रहता है, किन्तु दूसरी में स्व की विस्मृति हो जाती है और वह अपने को ही पिय समझ बैठती है। विरहिणी राधा की भी यही दशा है, किन्तु दोनों दशाओं में राधा को कष्ट ही होता है, सुख की प्राप्ति नहीं होती। जब वह अपने को राधा समझती है तब उसे कृष्ण का वियोग सताता है, और जब अपने को कृष्ण समझ बैठती है तो राधा का वियोग सताने लगता है। राधा की इस असाध्य स्थिति का चित्रण कवि 'दोनों सिरे पर आग लगी लकड़ी पर बैठे कीट' अप्रस्तुत के माध्यम से करता है (४७२४)। आग की लपट से कीट भागता है, किन्तु किसी ओर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। इसी प्रकार राधा-कृष्ण की एकरूपता के लिए 'कीट-भृङ्ग' अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है (१७३२)। भृङ्ग (बिलनी) कीड़ा, जिस कीड़े पर बैठता है उसे अपने आकार का बना देता है।[1] इसीलिए 'कीट-भृंग न्याय' चल पड़ा। राधा और कृष्ण भी कीट-भृंग की तरह कहने को दो हैं पर वास्तव में एक हैं। कृष्ण अभी स्पष्ट बोलने का प्रयास करते हैं। कृष्ण के इस अस्पष्ट स्वर के वर्णन के लिए कवि 'कमल में भ्रमर गुंजार' अप्रस्तुत लाता है (७२५)। यशोदा ऊखल से ऊपर कृष्ण के दोनों हाथ पकड़कर बांध देती हैं यह शोभा ऐसी लगती है मानो 'बांबी' के ऊपर दो साँप लड़ रहे हों, (१००६)। बांबी साँप के घर (बेमउर) को कहते हैं। लड़ते समय साँप के फन एकत्र हो जाते हैं, धड़ अलग रहता है। बाँधे हुए कृष्ण की हथेलियाँ भी एकत्र हो गई हैं, हाथ अलग है। गोपियों का कृष्ण-प्रेम अपनी जवानी पर पहुँच चुका है। उनके अंग-आँख, नाक, कान, सभी कृष्णमय हो गए हैं। कहने के लिये ये गोपियों के पास तो हैं, लेकिन निष्क्रिय हैं, व्यर्थ हैं—इस भाव के चित्रण के लिए कवि दौड़-धूपकर बड़ा ही भावबोधक अप्रस्तुत लाता है, केंचुल की आँख, मुख, नाक, (२२५८)। साँप की केंचुल में उसकी आँख, मुख, नाक बनी होती है, किन्तु उससे काम क्या हो सकता है? गोपियों के अंग भी इसी तरह कहने के लिए हैं। ध्यान रहे कि कवि ने कान की चर्चा नहीं की, क्योंकि साँप चक्षुस्रवा होते हैं। आँख से ही देखने और सुनने दोनों का काम करते हैं, कान तो होता ही नहीं। गोपियों को जब यह समाचार मिला कि कृष्ण मथुरा से द्वारिका

---

१. बिलनी नामक कीड़ा, जिस पतिंगे पर बैठता है, उसे पहले डंक से मूर्छित कर देता है, बाद में उसी पर अंडे दे देता है। उसके बच्चे उस पतिंगे के शरीर को खाकर बड़े होने पर उड़ जाते हैं। इसीलिए माना जाता है कि कीट ही भृंग का रूप धारण कर लेता है।

चले गए तो उनका मन बेहाल हो गया, क्योंकि मिलन की रही-सही आशा भी टूट गई, गोपियों के इस अगम मन के लिए कवि एकदूर का अप्रस्तुत लाता है 'भीम का हाथी' (४८७१)। भीम के हाथी की विकरालता से मन की अगम अपार विह्वलता का यत्किंचित् आभास तो हो ही जाता है। बन्दर को पकड़ने के लिए मदारी एक घड़े में भीगा चना रख देता है। बन्दर हाथ डालकर मुट्ठी भर लेता है, किन्तु मुट्ठी बाहर निकलती नहीं। यदि बन्दर चाहे तो मुट्ठी खोल दे और नौ दो ग्यारह हो जाय, किन्तु लोभवश वह पकड़ा जाता है। माया के वशीभूत जीव की भी यही स्थिति है (३६६)। इसी प्रकार कृष्ण के हाथों में अभागी मुरली के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'बन्दर के हाथ में नारियल फल' (१६२५)।

कवि की दूरगामी दृष्टि राजदरबार और युद्ध की ओर भी पहुँचती है और अप्रस्तुत सामग्री का चयन करती है। होली जलने की अनुभूति कराने के लिए अप्रस्तुत लाता है 'अग्नि से जलता हुआ किला' (३५३२)। कोट में जब आग लगाई जाती है, तो उसकी भयंकरता का अनुभव एक प्रत्यक्षदर्शी को ही हो सकता है। जहाँ दोहरा शासन होता है, वहाँ की प्रजा अवश्य पिसती है। दोनों तरफ से प्रजा के ऊपर संगीन लटकती रहती है। इसे 'दुराज' को अप्रस्तुत बनाया गया है प्रेम और निर्गुण के लिए जिसके भीतर गोपियाँ पिस रही हैं (४५१०)। समिति या सभा के द्वारा दाँतों का बोध कराया गया है (१२७१)। राजा के सिपाही सफेद रंग का साफा बाँधते थे, इसे 'श्वेत साफे' को बगपंक्ति का अप्रस्तुत बनाया गया है (३६४२)। युद्ध के समय कुशल सेनापति को चक्रव्यूह बनाकर खड़ी करता है। 'चक्रव्यूह' अप्रस्तुत आभूषणों के लिए आया है (२७४३)। इसी प्रकार भौंरों की गुनगुनाहट के लिए 'बन्दूक' (२७३४) और नीबी के लिए 'ढाल' (३०७३) अप्रस्तुत लाया गया है।

आर्थिक जीवन से भी कुछ दूरगामी अप्रस्तुत जुटाए गये हैं। धोबी का व्यवसाय वहीं होगा, जहाँ लोग वस्त्र पहनते हों। जिस समाज में लोग नंगा ही रहते हैं, वहाँ धोबी का व्यवसाय कैसे सम्भव है? यह अप्रस्तुत योजना गोपियों को निर्गुण का उपदेश देने के लिए लाई गई है (४५७५)। 'कुदाल' को शशि किरण का अप्रस्तुत बनाया गया है (४६५६)। कुदाल खोदने का औजार है। गोपियाँ कहती है कि हे ऊधो! माना कि आपका यह योग पारस है, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जायगा, किन्तु सोना हो जाने पर चुम्बक (कृष्ण) उसे कैसे अपनी ओर खींच सकेगा (४१५६)? चुम्बक में आकर्षण शक्ति होती है, जो लोहे को ही अपनी ओर खींच सकती है, सोने को नहीं। कृष्ण के श्याम अधरों के लिए 'नीलमणि की डिबिया' अप्रस्तुत लाया गया है (२४५०)।

धर्म और ऐतिहासिक, पौराणिक व्यक्ति भी सूर की तीखी नजर से बचे

नहीं। स्वर्ग द्वार के रक्षक 'इजे-बिजै' नेत्र और मुस्कान के अप्रस्तुत बनाए गए हैं (२६१७)। कबन्ध के बारे में प्रसिद्ध है कि वह सिर कट जाने पर भी लड़ता ही रहा। गोपियों के मन का हठ भी ऐसा ही है, बार-बार धराशयी होने पर भी अपनी हरकत से बाज नहीं आता (४४५६)। कुरुक्षेत्र में गड़े सोने के लिए यह प्रसिद्धि है कि वह धरती के भीतर बढ़ता जाता है, इसे विरह या प्रेम बढ़ाने का अप्रस्तुत बनाया गया (४०११, ४७५६)। महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने भीष्म को बाणों की शैय्या पर सुला दिया, किन्तु सूर्य दक्षिणायन था, अतः भीष्म अपनी इच्छानुसार सूर्य के उत्तरायण होने तक जीवित रहे। इसी तरह गोपियाँ भी काम से घायल होकर भी अवधि की आशा में जीवित हैं (३८३०)। कृष्ण और बलराम के जोड़े को नेत्र और अंजन रेखा का अप्रस्तुत बनाया गया है (३०६६)। बलराम गोरे हैं, नेत्रों का रंग भी श्वेत है, कृष्ण काले हैं और अंजन भी काला है। 'श्रुति की ऋचाएँ' ब्रज सुन्दरियों के लिए अप्रस्तुत बनकर आई हैं (१७९८)। यज्ञ की पूर्णाहुति पर हवन किया जाता है। होम करने वाले के मुख और नाक धुएँ से इस तरह भर जाते हैं कि उसके मुख से 'स्वाहा' की ध्वनि भी नहीं निकल पाती, ठीक इसी प्रकार कृष्ण के अंगों के उपमान भी कवि के मुख से नहीं निकल पाते (१८२३)।

कृष्ण के विरह में गोपियाँ अत्यन्त क्षीणकाय हो गई हैं, उनकी इस निर्बलता के सटीक अंकन के लिए कवि 'भुस पर की भीति' अप्रस्तुत का प्रयोग करता है (३८०३)। कृष्ण के बिना घर बिलकुल सूना है, जैसे वन के भीतर का कूप (२२६५)। गाँव के कुओं पर प्रातः सायं जल भरने वाले की भीड़ जमा हो जाती है, किन्तु वन के कुएँ पर कौन जाता है? गोपियाँ ऊधौ से कहती हैं कि आप बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि अहर्निश कृष्ण की छाया में रहते हुए भी आप उनके विरक्त हैं, अलिप्त हैं। ऊधौ की इस अनासक्ति के लिए अप्रस्तुत लाया गया है, 'तेल की गगरी' (४५७६)। तेल की गगरी भले ही चौबीस घण्टे जल में रहे, किन्तु उस पर जल का कोई असर नहीं होता। कृष्ण का मुख ऐसा है, मानों चन्द्रमा का सारा सार ही छीनकर मुख निर्मित हुआ है और अब आकाश 'जूठी थाल' जैसा दीखता है (२४१४)। पहले तो मुरलीध्वनि सुनकर गोपियाँ सिर पर पैर रखकर भागती कृष्ण के पास चली आईं, किन्तु बाद में वही मुरली गोपियों को सताने लगी। ऊपर से मीठी और अन्दर से कड़ुई, मुरली की बोल की भावना को प्रस्तुत करने के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है मधु लगा पत्थर (१९१५)। इसी प्रकार वस्त्रों के लिए चिरचिटा (२७०४) और सफेद मुख के लिए मेद (चर्बी) (३८४०) अप्रस्तुत लाए गए हैं। ऊधौ के सारे तर्कों को गोपियाँ सुनकर भी अनसुनी कर देती हैं, और वह व्यर्थ जाता है। ऊधौ की बातों की व्यर्थता के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'वन का रोना' जिसे न कोई सुने न गुने (४१५८)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर की दूरदर्शी पैनी दृष्टि विविध क्षेत्रों में प्रवेश करके, कोना-कोना ढूंढ़ती है, हर वस्तु को सूँघती है और मनमाफिक अप्रस्तुत का चयन करती है। सूर के इन अप्रस्तुतों को देखकर सहज ही विश्वास हो जाता है कि 'जहाँ न जाय रवि, तहाँ जाय कवि'। उपर्युक्त उदाहरण सूर की दूरदर्शिता प्रमाणित करने के लिए प्रायः पर्याप्त हैं।

(ग) सूक्ष्म निरीक्षण

अप्रस्तुतों के अध्ययन से सूर के सूक्ष्म निरीक्षण पर भी प्रकाश पड़ता है। अनेक वस्तुयें ऐसी हैं, जिन्हें हम प्रतिदिन देखते रहते हैं किन्तु उनकी उन विशेषताओं पर हमारा ध्यान नहीं जाता, जिनके कारण उन्हें महाकवि किसी वस्तु या भाव विशेष का अप्रस्तुत बनाता है। हमारे दैनिक जीवन के चतुर्दिक फैली ऐसी तमाम वस्तुओं को सूर की दृष्टि ने पकड़ा है। ऐसे ही सूर के सूक्ष्म निरीक्षण सम्बन्धी कुछ अप्रस्तुतों का संक्षिप्त अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सूर्य का प्रकाश यों तो तीव्र प्रखर होता है, किन्तु सूर्यग्रहण लगने पर प्रकाश मन्द और लाल रंग का हो जाता है। सूर्य के ऐसे प्रकाश के रंग को, मालपुआ के रंग का अप्रस्तुव बनाया गया है (१८३१)। कृष्ण पूर्णरूपेण ललिता के वश में हो गए—इस भाव की दीप्ति के लिए कवि उपमान लाता है 'पंखा के वश वायु' (२६८६)। पंखा डोले तो हवा लगे, न डोले तो न लगे। ललिता भी कृष्ण को इसी तरह वश में किए है। सावन की वर्षा सघन रूप में होती है, कोई स्थान बचता नहीं, जहाँ वृष्टि न हो, ठीक उसी प्रकार कृष्ण के जन्म पर सबको दान दिया गया, कोई बचने नहीं पाया (६४६)। ओला गिरता है, क्षण भर में पिघल जाता है, इस विरह में गोपियों के शरीर के गलने का अप्रस्तुत बनाया गया है (३९२१)। रात्रि की निस्तब्धता से हम भली-भाँति परिचित हैं, कहीं किसी कोने से आवाज नहीं आती। रात्रि की इस निस्तब्धता को राधा के सुरतिकालीन मौन को अप्रस्तुत बनाया गया है (२६१५)। प्रातः ओसकण चारों ओर बिखरे दिखाई देते हैं, किन्तु क्षण भर बाद ही सूर्य की किरणों का स्पर्श पाते ही वे गायब हो जाते हैं। मान भी ओस-कण जैसा क्षणिक होना चाहिए (३४४४)। यदि मान अधिक समय तक ठहरा तो नीरस हो जाता है। हमारी आयु क्षण-क्षण कम होती जा रही है—इसे व्यक्त करने के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है, 'अंजली का जल' (१४९)। यौवन भी अंजली के जल की तरह क्षणिक है (३५१०)। आयु की इस क्षीणता के लिए कवि दूसरा अप्रस्तुत लाता है 'भग्न घट का जल' (१४१)। फूटे घड़े का जल आखिर कितनी देर ठहरेगा? कांच की शीशी में रखे जल को प्रायः देखते रहते हैं, किन्तु सूर की सूक्ष्मदृष्टि इसे आन्तरिक भाव के अप्रस्तुत के रूप

में ग्रहण करती है (३०३६, ४६४०)। शीशी का जल बाहर से झलकता रहता है, आन्तरिक भाव (कपट) भी इसी प्रकार झलकता रहता है। जल का यह स्वभाव है कि ऊँच-नीच हर जगह पर फैल जाता है। जल के इस स्वभाव को कृष्ण के कुब्जा-प्रेम का अप्रस्तुत बनाया गया है (४२६४)। बहते जल की धारा को पीछे की ओर नहीं मोड़ा जा सकता, कृष्णोन्मुख गोपीनेत्र भी इसी तरह पीछे नहीं मोड़े जा सकते (२६३४)। वर्षा की नदी की भयंकरता का अनुभव हम आये दिन करते रहते हैं। वर्षा की उमड़ी नदी तटों को तोड़कर आस-पास के वृक्षों और घरों को बहा ले जाती है, यौवन भी इसी बरसाती नदी के समान अल्हड़ होता है (३७०६)। संगम में तीन नदियाँ मिलती हैं—गंगा, जमुना और सरस्वती। गङ्गा का रंग श्वेत, जमुना का काला और सरस्वती का लाल माना गया है। पलकों का रंग भी श्वेत काला और लाल है, अतः संगम को पलकों का अप्रस्तुत बना दिया गया (२४११)। श्वेत रंग के यज्ञोपवीत के लिए 'गंगा की धारा' अप्रस्तुत लाया गया (२३७६)। जल और लहर परस्पर इस तरह मिले होते हैं कि इन्हें अलग किया ही नहीं जा सकता, इसी प्रकार कृष्ण और गोपियों को भी अलग करना असाध्य है (३४१६)। वर्षा में हम जल के बुदबुदे को देखते हैं, बूँद गिरने, बुदबुदा उठने और मिटने में पल भर का भी समय नहीं लगता। जल के बुदबुदे की भाँति ही मानव जीवन भी क्षणिक है (३१६)। जलते तवे पर बूँद पड़ी नहीं कि छन-से कर उसी में समा जाती है, गोपियों के नेत्र भी इसी तरह कृष्ण में समा गए (२६४६)। राई और रेत के मिश्रण को अलग करना आसान नहीं है, कृष्ण और गोपियों को भी अलग करना इसी तरह दुसाध्य है (४५३७)। इस प्रकार प्रकृति के विविध क्षेत्रों के उद्यान में सूर की सूक्ष्म दृष्टि मालिन की तरह प्रवेश करती है और अपने मनोनुकूल खिले हुए अप्रस्तुतों का चयन कर लेती है।

पुष्प-वृक्ष लताओं के सागर में भी सूर की सूक्ष्म दृष्टि प्रवेश करके अप्रस्तुतों का मोती निकाल लाती है। पावस ऋतु में धरती पर तमाम अंकुर निकल आते हैं, इन्हें पुलक का अप्रस्तुत बनाया गया है (३५६४)। कृष्ण के सामने ब्रह्मा की वही स्थिति है, जो गूलर-फल के जीव की (१११०)। 'धूल लगे हुए कमल' को अबीर लगे हुए हाथ का अप्रस्तुत बनाया गया है (५ ६)। अरसी का फूल श्याम वर्ण का होता है, उक्त इसे कृष्ण के मुख का अप्रस्तुत बनाया गया (४१२३)। वियोगिनी गोपियों की पीठ के लिए 'उल्टा कदली दल' अप्रस्तुत लाया गया है (४०)। वियोग मे गोपियाँ अत्यन्त दुर्बल हो गई हैं, उनके पीठ की रीढ़ और हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही हैं। केले के पत्ते को भी यदि उलट दिया जाय तो बीच की रीढ़ और दोनों ओर फैले हुए तन्तु स्पष्ट उभरे दिखाई देते हैं। इस अप्रस्तुत से गोपियों की कृशता का चित्र-सा खींच दिया गया है। यह है सूर का

सूक्ष्म निरीक्षण। कपट के प्रेम के लिए 'खीरा' अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है (४५५६)। खीरा ऊपर से मिला हुआ और चिकना होता है, किन्तु अन्दर से तीन भागों में बँटा होता है। कृष्ण का प्रेम भी ऊपर से तो बड़ा चिकना है, किन्तु अन्दर कपट ही कपट भरा है। नीरस व्यक्ति से प्रेम की बातें करना, अन्धे के आगे रोना है, उस पर कोई असर नहीं होगा, यह वैसे है, जैसे घास काटना (४५७७)। राधा की बेसरि में मोती लगा है, जिस पर नेत्रों की कालिमा और अधरों की लालिमा की छाया पड़ रही है। अत: ऐसे मोती की सटीक अनुभूति कराने के लिये कवि ढूँढ कर अप्रस्तुत लाता है, 'गुंजा' (३२३१)। गुंजा का ऊपरी भाग काला होता है और नीचे का लाल। बेसरि के मोती पर ऊपर से नेत्रों की कालिमा पड़ रही है और नीचे से अधरों की लालिमा।

पशु-पक्षियों पर भी कवि की तीखी निगाह पहुँचती है और उनसे अपने मतलब की सामग्री कवि ले ही आता है। नीरस व्यक्तियों को रस के हौदे में ही क्यों न बैठा दिया जाय, लेकिन उन पर कोई असर नहीं होगा। ठीक उसी प्रकार जैसे मेढ़क जीवन भर कमल के निकट ही रहता है, किन्तु कमल के रस का रंच-मात्र भी ज्ञान उसे नहीं हो पाता (४६०)। कृष्ण रो रहे हैं, उनकी पलकें आँसू से भर गई हैं, ऐसी पलकों का तद्वत् अनुभव कराने के लिये कवि अप्रस्तुत लाता है, थोड़े जल पर पड़ी सीप (६७८)। त्रिवली के वर्णन के लिये कवि 'कोबिल मयूर का मुख' अप्रस्तुत लाता है (३०६०)। नन्द के पुत्र पैदा हुआ है, यह समाचार पाकर ब्रजनारियाँ सज-धजकर बधावा देने चल पड़ीं। ऐसी रंग-बिरंगी ब्रजनारियों के अनुभावन के लिये 'लालमुनियों की पंक्ति' अप्रस्तुत लाया गया है (६४२)। लाल मुनिया एक रंग-बिरंगा पक्षी होता है। तुलसी की माला के लिये 'शुक-स्तनिका' अप्रस्तुत लाया गया है (१२४५)। कृष्ण के बिना विरहिणी गोपियों की विकलता कितनी घनीभूत है—इसके चित्रण के लिए कवि 'तोड़े मधु की मक्खी' अप्रस्तुत लाता है (२७०८)। मधु तोड़ लेने पर मक्खियाँ किस तरह बिलला जाती हैं? इसका सूक्ष्म निरीक्षण सूर को था। गोपियाँ कृष्ण में किस प्रकार अनुरक्त है? इसके लिए 'गुर की चींटी' अप्रस्तुत लाया गया है (४५७६)। गुड़ में चींटी किस तरह लिपट जाती है, इसे हम प्राय: देखते हैं। सूर ने इस सामान्य बात को कलात्मक ढंग से अप्रस्तुत बना दिया। अशोक वाटिका में पहुँचकर हनुमान ने बगीचे को बुरी तरह से रौंद डाला, तहस-नहस कर दिया, इस दृश्य को 'कदली बन में हाथी' अप्रस्तुत द्वारा चित्रित किया गया है (५४०)। वियोगिनी गोपियों के हृदय-विदारक व्यथा को प्रस्तुत करने के लिये 'नाथी गाय' अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है (४५७५)। मानव स्वभाव विषयों की ओर भागता है, किन्तु विषय से मनुष्य की

तृप्ति कभी नहीं होती। मानव के इस विषय प्रेम का चित्रण सूर ने 'कामिनी आधीन स्वान' के अप्रस्तुत द्वारा किया है (३२१)। कुत्ते की विषय-प्रियता के सैकड़ों ज्वलन्त उदाहरण हम कार्तिक के महीने में देखते हैं। घाव हुआ रहेगा, हांफता रहेगा, दम निकलता रहेगा, फिर भी कुत्ता बाज नहीं आता, पीछे-पीछे लगा ही रहता है।

आर्थिक जीवन का भी सूर ने सूक्ष्म निरीक्षण किया और अपने भावों के अनुरूप अप्रस्तुतों का चयन किया। निष्ठुरता के लिए 'कोठी' अप्रस्तुत लाया गया है (१६४८)। कृपण सेठ मर जाए, फिर भी अपनी कोठी नहीं खोलता। कृष्ण भी इतने निष्ठुर हैं कि अमृत वाणी बोलकर विरह का नाश नहीं करते। विरह शरीर को निर्दयता के साथ चीर रहा है—इसके कवि बड़ी सुन्दर अप्रस्तुतयोजना लाता है 'दरजी और ब्यौंत' (४०१६)। दरजी, कपड़े को बिना संकोच फाड़ता है, विरह भी शरीर को इसी तरह ब्यौंत रहा है। प्रेम, बिना विरह में तपे निर्मल नहीं होता, अतः विरह भी एक प्रकार से प्रेम ही है। बिना कष्ट के मधुर फल की प्राप्ति नहीं होती। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि अप्रस्तुत योजना करता है 'अंकुर पहले अपने बीज के घर को जला देता है, तब जाकर कहीं उसमे मधुर फल लगते हैं' (४६०४)। वियोगिनी गोपियों के प्राण निकलने ही वाले हैं, अवधि के तट पर जाकर रुक गए हैं, इसकी तद्वत् बोधगम्यता के लिये सूर अपने सूक्ष्म निरीक्षण के बल पर कृषि-जगत से एक अप्रस्तुत लाते हैं; 'जौ के अग्रभाग पर ओस (४७४०)। जौ के टूंड़ में छोटे-छोटे काटे होते हैं, अतः उन्हीं पर ओसकण रुका रहता है। गोपियों के प्राण भी अवधि के तट पर ओसकण ० के समान रुके हुए हैं। ऊधो का सारा उपदेश गोपियों के बीच कही रुक नहीं पाता, उड़ जाता है, इस भाव के चित्रण के लिये कवि एक सूक्ष्म अप्रस्तुत लाता है 'पवन का भुस' (४१५८)। वायु मे भूसा किस प्रकार उड़ जाता है, इसका सूक्ष्म अनुभव सूर को था? दांत सफेद है, किन्तु अधर लाल है, अतः अधर और ओष्ठ के बीच दांत का सही चित्रण प्रस्तुत करने के लिये कवि अप्रस्तुत लाता है 'सिन्दूर में डुबोए मोती' (८४३)।

धार्मिक और सामाजिक जीवन के वन में भी कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि की बासनी लेकर प्रवेश करता है और उसे अप्रस्तुतों के मधु से लबालब भर ले आता है। मुरली ध्वनि सुनकर स्थावर जंगम सब मोहित हो जाते हैं, पक्षी भी मुरली ध्वनि सुनकर मस्त आँख मूदें बैठे हैं। इस भाव की सघन अनुभूति कराने के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'तप करते हुए मुनि' (४२६२)। मुनि भी आँख मूंदकर मस्ती में तप करता है। गोपी और कृष्ण को अलग करना कुत्ते की दुम को सीध

करना है। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता, जैसे 'मन और मनसा' को कदापि अलग नहीं किया जा सकता (४६६६)। कृष्ण गोपियों के सभी अंगों के भीतर समा गए हैं, उस भाव का चित्रण आसान नहीं है, किन्तु महाकवि सूर के सूक्ष्म निरीक्षण के सामने यह बहुत सरल है। इस भाव के चित्रण के लिए वे मानव शरीर से ही अप्रस्तुत लाते हैं 'नस' (४२००)। जैसे नसें सभी अंगों में परिव्याप्त हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी, भला उन्हें कैसे निकाला जा सकता है ? विरहिणी गोपियाँ घर से निकल भी नहीं पातीं; माँ, सास और ननद उनके पाँवों की खनक को भी कानों में लिए रहती हैं, फिर वे अपना दुःख किससे और कैसे कहें ? विवश गोपियों की अनुभूति के लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'पत्थर के नीचे का हाथ' (२५३४)। गोपी-नेत्र गोपियों को छोड़कर भगे हैं, पीछे मुड़कर भी नहीं देखते, जैसे लोग 'जलता हुआ घर छोड़कर भागते हैं' (२८६८)। गोपियाँ मन को तरह-तरह से समझाती हैं, और बहुत मजबूत बनाने का प्रयत्न करती हैं, किन्तु कृष्ण-रूप को देखते ही उनका मन ढह जाता है, अथवा गोपियों के तर्क के सामने ऊधो का मन निर्बल हो जाता है, मन की इस निर्बलता के लिए 'बालू की भीति' अप्रस्तुत लाया गया है (४४५६, ४७५६)। बालू की भीति कितनी जर्जर होती है, इसका निरीक्षण सूर को था ? गोपियाँ कृष्ण रस में मग्न हो जाती हैं, अपना अस्तित्व मिटाकर कृष्णमय हो जाती हैं, उसके चित्रण के लिये कवि अप्रस्तुत लाता है 'जल में कच्ची गगरी' (७३८)। कच्ची गगरी में जल में पहुँचते ही गल जायेगी और जलमय हो जायेगी। वियोग में गोपियाँ इधर-उधर निरुद्देश्य उड़ रही हैं, इस भाव को 'फल फूटने पर आक रुई' अप्रस्तुत के द्वारा हृदयंगम कराया गया है (२४७३)। गोपियाँ कृष्ण-प्रेम के सामने, घर का नाता, सुत-पति-स्नेह-अनायास, बिना श्रम के तोड़ बैठती हैं, जैसे कोई 'कच्चा सूत' तोड़ डाले (७५४, ५८३४)। कृष्ण जब काली-दमन करके कमलों से भरी गाड़ी लेकर कंस के सामने उपस्थित होते हैं तो अपनी योजना की निरर्थकता देखकर कंस पर घड़ों पानी पड़ गया। ऐसे खिन्न और मलीन कंस के लिए चित्रण के लिए सूक्ष्म निरीक्षण से कवि अप्रस्तुत लाता है 'घुना काठ' (१२०८)। रावण के सिर के लिए 'पका फल' (५७५) और योग के लिए 'मूली का पात' (४२८२) अप्रस्तुत लाए गए हैं। गर्भ में जीव किस प्रकार मल में सिर झुकाए पड़ा रहता है, इसका यथातथ्य चित्रण सूर ने 'भरत भंटा' अर्थात् भुरते का भाँटा—अप्रस्तुत द्वारा किया है (३२०)। वियोग में गोपियों का शरीर पीला पड़ गया है। ऐसे पीले शरीर के 'हरद' (हल्दी) अप्रस्तुत लाया गया है (४६८०)। कृष्ण के बिना गोपियाँ उसी प्रकार निस्सार हो गई हैं जैसे 'साढ़ी बिना दूध' (४७८०)। वियोग की अग्नि से जलते हुए गोप

शरीर के लिए कवि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अप्रस्तुत लाता है 'अरनि' (कण्डा) (४००८)। कलंक एक बार लग गया तो जल्दी छूटता नहीं। ऐसे कलंक के लिए 'मजीठा का रंग' अप्रस्तुत लाया गया है, जो बार-बार धोने पर भी नहीं छूटता (४११०)। राधा और कृष्ण के बीच चक्कर काटती दूती के लिए कवि सूक्ष्म व्यंजक 'चकडोरी, अप्रस्तुत लाता है (३४०७)। चकई के बीच में डोरी लिपटी रहती है। डोरी पकड़ कर चकई को छोड़ दिया जाता है तो चकई नीचे पहुँच जाती है और डोरी को खींच लिया गया तो चकई ऊपर पहुँच जाती है। चकडोरी के इस खेल का सूक्ष्म निरीक्षण सूर ने किया था। आज भी चकडोरी, बालकों का प्रिय खेल है। गोपियों के नेत्र श्यामरंग में इस कदर रंग गए हैं, कि पचि-पचि धोने पर भी वह रंग नहीं छूटता, इसके लिए कवि अप्रस्तुत लाता है 'पिघली मोम' (२८६९)। मोम पिघलकर सूख जाये तो उसे कितना भी क्यों न धोया जाय, लेकिन छूटेगी नहीं। गोपियों की लौं कृष्ण से लग गई, और वह प्रेम अब इतना पक्का हो गया है कि किसी प्रकार छूटता नहीं। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण से अत्यन्त सामान्य किन्तु भरपूर व्यंजक अप्रस्तुत लाता है 'भीगी गाँठ' (२२७८)। गाँठ देकर उसे जल से भिगो दिया जाय, तो वह जकड़ लेती है और लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं छूटती। वियोगिनी गोपियों के शरीर के लिए अप्रस्तुत लाया गया है, 'फागुन का मेह' (३८४१)। फागुन बादल दुर्लभ होता है, यदि आया भी तो जलहीन होता है। गोपी नेत्र कृष्ण में गड़ गए, धँस गए, समा गए—कैसे ?—इसके लिए कवि अति सामान्य किन्तु भावबोधक अप्रस्तुत लाता है—'गीली दीवाल पर कंकड़' (२८४१)। गीली दीवाल पर कंकड़ फेंकते ही गड़ जाता है, घुस जाता है—इसका सूक्ष्म निरीक्षण सूर को था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर का सूक्ष्म निरीक्षण बड़ा गहरा था। जीवन की तमाम वस्तुएँ, जिनका अवलोकन हम प्रायः करते ही रहते हैं, किन्तु उनकी सूक्ष्मता पर हमारा ध्यान नहीं जा पाता। सूर की दृष्टि से ऐसी कोई वस्तु निकल कर नहीं जा सकी है। जीवन के विविध क्षेत्रों पर वे दृष्टिक्षेपण करते हैं और हर वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण करते हैं। यदि उनमें भाव की बोधगम्यता के लिए कोई उपयुक्त गुण हुआ तो उसे ग्रहण कर लेते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों से स्वयं सिद्ध है कि उनका सूक्ष्म निरीक्षण कितना सूक्ष्म था ? सूक्ष्म निरीक्षण के इन अप्रस्तुतों को देखते हुए सूर को जन्मान्ध कहना, सांप को खुरदरा कहना या अग्नि को शीतल कहना होगा।

(घ) भावुकता

यों तो प्रत्येक कवि कम-बेश मात्रा में भावुक होता ही है। सूर की भावुकता

पर तो किसी ने सन्देह भी नहीं किया है, अधिक तोता-चश्मी की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उनके सागर में कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ भावुकता चरम विकास पर पहुँच गई है। ऐसे रमणीक स्थलों पर पहुँचकर मन क्षण भर विश्राम कर ही लेना चाहता है। सूर के अप्रस्तुतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे एक महान् सहृदय, भावुक और सरस कवि थे। सहृदयता और भावुकता की दृष्टि से पूरे हिन्दी साहित्य मे उनके टक्कर का शायद ही कोई कवि हो। सूर के व्यक्तित्व से इसी पक्ष का अध्ययन उनके द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों के माध्यम से नीचे करने का प्रयास किया गया है।

राधा ने शृंगार किया है, कुचों पर मोती माला धारण किये हैं। सहृदय कवि इसका वर्णन करता है कि यह राधा का शृंगार नहीं है, अपितु कृष्ण को वश मे करने के लिए अच्छत लेकर राधा शंकर भगवान की पूजा कर रही हैं (१८२०)। शंकर कुचों का अप्रस्तुत है और शंकर औघड़दानी भी है। दान या वरदान के लिए हमारी संस्कृति में सदैव भगवान शकर को ही पकड़ा गया है। बनी-ठनी राधा चली आ रही है, उनका हृदयहारी और बड़ा ही उदात्त चित्र कवि ने 'गंगा' के अप्रस्तुत से खींचा है। राधा नहीं, गिरि से गंगा ही चली आ रही हैं। राधा का गोरा शरीर ही गंगा का निर्मल जल है, राधा की त्रिबली, गंगा की तरंगें हैं, रोमराजि, मानों जमुना मिल रही हैं भ्रूभंग ही गंगा की भंवर हैं, चारु उरज मानो गंगा के तट पर बैठे चक्रवाक हैं, मुख, नेत्र और चरण ही गंगा से उगे हुये कमल हैं: राधा की चाल; गंगा के तट के मराल हैं, मणिमय आभूषण ही गंगा के तट हैं और राधा की माँग ही गंगा की धारा है। ऐसी सुरसरी राधा, कृष्ण-सागर से मिलने जा रही हैं (२०७२)। इस अप्रस्तुत योजना द्वारा जहाँ तक एक ओर गंगा का आरोप राधा पर किया गया है, वहीं दूसरी ओर राधा सौन्दर्य के बारे में कवि का उदात्त भाव भी व्यंजित है। पूरा पद पढ़कर राधा के बारे में एक बड़ा ही पवित्र भाव मन मे जाग्रत होता है। सुरति के बाद चले आते हुए कृष्ण के उर पर नखरेख इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानों अरुण किसलय धारण किये हुए बसन्त ऋतु का वृक्ष हो (३३५२)। सुरति के बाद कृष्ण के अधरों का अलक्तक मिट गया है और उसके स्थान पर नेत्र चुम्बन के कारण काजल लग गया है। ऐसे अधरों का चित्रण कवि 'कुम्हिलाए बन्धूक' अप्रस्तुत द्वारा करता है (३२९७)। सुरति के बाद गोपियो के छेड़-छाड़, पूँछ-ताँछ पर कृष्ण गोपियों को तरह-तरह से झाँई देते हैं, जिस पर गोपियाँ कहती हैं, और तो सब कुछ ठीक है, किन्तु आप अपने हृदय पर कुचों से प्रेम पत्र क्यों लिखवा आये हैं ? कृष्ण-उर पर चन्दन-चर्चित कुचों का आलिंगन चिन्ह वर्तमान था (३२९६)। ब्रज से कृष्ण के चलते ही गोपियों की शोभा देवता के ऊपर चढ़ी हुई माला के फूल जैसी हो गई (६०६) । सुरति के बाद नेत्र और भी लाल

हो जाते हैं। ऐसे नेत्रों का वर्णन कवि 'महावर से धोए हुए मीन' अप्रस्तुत द्वारा करता है (३२८१)। वियोग में गोपियों के व्याकुल नेत्रों के लिए कवि 'जला खंजन' अप्रस्तुत लाता है (३८५६)। ब्रजनारियों के लिये कवि 'इन्द्रवधू' (लाल रंग का घोबिन कीड़ा) अप्रस्तुत लाता है (६४८)। युद्ध के बाद बहादुर सिपाहियों को पुरस्कृत, अलंकृत किया जाता है। राधा भी सुरति युद्ध के बाद अपने अंग सिपाहियों को पुरस्कृत, अलंकृत करती हैं—कटि को करधनी, भुजा को आभूषण, उर को हार, कर को कंगन; आँख को अंजन, नाक को बेसिर, लिलार को तिलक और सम्मुख प्रहार सहने वाले अधरों को पान देती है, किन्तु इस युद्ध में कायर केश पीछे ही रह गए, अतः उन्हें पकड़ कर बाँध रही है। कितना सरस और हृदयहारी चित्र है (२८०१)। कृष्ण रूप के चोर हैं, अतः गोपी कहती हैं, हे चोरों के राजा! तुम्हें शरीरयष्टि के कंचन खंभ में भुजाओं की कंचन डोरी से बाँधूँगी और तुम्हारा एक अंग (अधर) खंडित करूंगी (२५५५)। गोपियों के नेत्रों का चित्रण कृष्ण की ही माखन चोरी द्वारा किया गया है। नेत्र बालक कृष्ण की तरह घूँघट-पट के गोरस में अटक गए हैं, रोते हैं, हठ नहीं छोड़ते। गोपियाँ, यशोदा की तरह उन्हें लाज-लकुट लेकर धमकाती हैं, फिर भी वे डरते नहीं (२९५८)। इसी प्रकार कवि बसंत का चित्रण 'राधा' अप्रस्तुत द्वारा करता है। गुलाबों का खिलना, सम्मुख मिलन है, जूही मान है, बेला, केश गूँथना है, केतकी ही कुच और कंचुकी है, मालती मद चलित लोचन है, फूलों का खिलना—मुख का विकास है, पवन-परिमल सहचरी है, पिकगान-हृदय का हुलास है, चंपा पुष्प कृष्ण हैं, कुन्दकली कृष्ण की माला है और भ्रमर कृष्ण की मणिमाला है (३४६२)। इस प्रकार कृष्ण कथा को ही कवि की भावुकता ने अप्रस्तुत बना डाला है।

रति-सम्पन्ना राधा से गोपियों की पूँछ-ताँछ पर राधा आनाकानी करती हैं, किन्तु रतिसम्पन्नता कहीं छिपाई जा सकती है? जैसे, सुगन्ध चोर अपनी चोरी को नहीं छिपा सकता, सुगन्धि से चोरी प्रकट हो जायेगी, उसी प्रकार रति भी छिपाई नहीं जा सकती (२८१३)। राधा के नेत्र विशाल हैं और नेत्रकोर कानों का स्पर्श कर रहे हैं; इसका मनोमुग्धकारी चित्रण कवि इस प्रकार करता है 'मानों चुगलखोर कानों में मन की बातें कह रहा हो'। चुगलखोर जोर से बातें नहीं कहता। श्रोता को अलग ले जाकर कान में फुसफुसाता है (१८२४)। रामचन्द्र जी समुद्र में सेतु बाँधने लगे पत्थर गिरने लगे, जिससे नदियाँ उल्टी बहने लगीं—इसका चित्रण कवि इस अप्रस्तुत योजना द्वारा करता है कि 'मानो राम से भयभीत होकर समुद्र अपनी पत्नियों को प्यौसार भेज रहा हो' (५६८)। कमल, कृष्ण के चरण, नेत्र, मुख का अप्रस्तुत है। 'सोहबते असर' के अनुसार यह कमल भी छैला बन गया है। रात्रि में कमलदलों के द्वारकपट को बन्द करके मधुपिनि बधू को छककर रस रति पिलाता है

और प्रातः सूर्यकिरणों द्वारा अपनी सुरति का ढिंढोरा पीटता फिरता है (३१४२) कितना मनोहारी चित्र है ! आन्तरिकरति 'मन्दिर में रक्खे दीपक' की तरह होती है (२२५८) । कुचों को कवि 'मधुकलश' कहता है (३४४४) । कृष्ण-नवनीत को तो कुब्जा ने काढ़ लिया, अब तो ब्रज में मट्ठा ही शेष रह गया है । प्रश्न उठता है पुनः दही जमाकर नवनीत निकाल लिया जाय, किन्तु यह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि रति-रूपी जामन के अभाव में दही जमेगा ही कैसे ? (४७२३) ।

बसन्त आ गया है, उसने मानिनी राधा को मान छोड़ देने का पत्र लिख भेजा है । आम के नवदल के कागज पर, कमल की दावात, भ्रमर की स्याही तथा कामवाण की लेखनी से कामदेव ने यह पत्र लिखा और अपनी मुहर भी लगा दी । पत्र तैयार हो जाने पर मलयानिल पत्रवाहक से बसन्त ने यह पत्र भेज दिया । राधा को पत्र मिला । शुक-पिक इसे बांच रहे हैं और ब्रज-बनिताएँ सुन रही हैं (३४६३) । गोपियों के नेत्रों से जल-वृष्टि हो रही है, अंजन मिश्रित बूँद कंचुकी पर टप-टप चू रही है, जिससे कंचुकी पर काले-काले धब्बे पड़ गए हैं । इस दृश्य का चित्रण कवि इस प्रकार करता है मानो शंकर भगवान् पर्णकुटी के भीतर तप कर रहे हों । शंकर कुचों का अप्रस्तुत हैं और पर्णकुटी अंजन के दाग का (३८५२) । सांब ने एक-एक बाण कर्ण, दुर्योधन आदि सभी राजाओं को मारा, मानों सब मिलकर एक साथ जुहार (प्रणाम) कर रहे हैं (४८२७) । राधा के, शैशव से वयः सन्धि में पहुँचने का बड़ा ही सरस चित्रण कवि ने किया है । राधा, कृष्ण की केलि-सरोवरी हैं, जिससे शैशव-जल भरा था, किन्तु यौवन के सूर्य ने इस जल को सोख लिया, जिससे कुचों की उच्चस्थली प्रकट हो गई, दिखाई देने लगी (३२३१) । पहाड़ पर लता तो होती है, इसे सभी ने सुना है, किन्तु शरीर-लता पर कुच-पहाड़ स्थित हैं, यह आश्चर्य की बात है (१६९४) । सुरति के कारण राधाकृष्ण श्रमजल से भीग गए हैं । मुँह से फूँक-फूँक कर श्रमजल सुखा रहे हैं, इसके लिए कवि कल्पना करता है 'मानो कामाग्नि कंभा गई है, अतः उसे फूँक-फूँक कर पुनः जिला रहे हैं' (१८१८) ।

घुटनों के बल चलते हुए कृष्ण के कर-कमल और चरण-कमल की छाया कनकमय आंगन में पड़ रही है, मानो धरती कृष्ण के बैठने के लिए कमलासन प्रदान कर रही है (१२८) । विरहिणी गोपी स्वप्न देखती है कि कृष्ण उसके घर आए हैं, और हँसकर उसकी बांह पकड़ लिए हैं, लेकिन इतने पर ही बैरिन नींद खुल गई, एक क्षण भी और नहीं रुक सकी, जिससे अगले सुख की भी अनुभूति गोपी को हो जाती । जिस सुख के लिए वह जन्म-जन्म की प्यासी है, सुख की प्राप्ति उसे हो जाती, भले ही स्वप्न में सही । इस भाव के चित्रण के लिए कवि बड़ी ही हृदय

द्रावक अप्रस्तुत योजना लाता है। 'तट पर बैठी हुई चकई जल के अपने प्रतिबिम्ब को चकवा समझ बैठती है, उससे आलिंगन के लिए झुकती है, कि इसी बीच निष्ठुर विधाता ने हवा चला दी, जिससे जल चंचल हो उठा और प्रतिबिम्ब मिट गया (३८८६)। इतना सहृदय वर्णन शायद ही किसी साहित्य में मिले ? इस चित्र का प्रस्तुत जितना मनोमुग्धकारी है, अप्रस्तुत उससे भी अधिक हृदय को पिघला देने वाला। कुब्जा कुरूप थी, टेढ़ी थी, कुबरी थी, उसे भला कौन पूँछता ? किन्तु कृष्ण के वरदहस्त पड़ जाने से वही कुब्जा गोपियों की सौति ही नहीं, पटरानी बन गई। इस तथ्य का चित्रण कवि इस अप्रस्तुत योजना द्वारा करता है 'कडुई तोमरी' (तितलौकी) घूरे पर पड़ी रहती है, कोई पूँछता तक नहीं, किन्तु वही जब जन्त्री के हाथ पड़ जाती है तो उससे मनमोहक राग-रागिनी निकलने लगती है (४०६२)। वियोगियों की दशा बड़ी दुस्सह होती है। भगवान् के किसी एक अंग से जिनका वियोग हो गया उनकी यह दशा हुई—भगवान् के चरणों से गंगा वियुक्त हुई, आज तक बहती ही चली जा रही हैं। नेत्रों से बिछुड़कर चन्द्रमा आज तक अपना शरीर गलाता हुआ भटक रहा है। रोएँ से बिछुड़कर कमल कटक हो गए और सिन्धु खारा हो गया। वाणी से बिछुड़कर सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री होकर भी विधि के विरुद्ध पत्नी होना पड़ा। भगवान् के एक अंग से बिछुड़ने वालों की यह दशा हुई है, फिर गोपियाँ तो उनके सर्वांग से बिछुड़ गई हैं, तब उनकी क्या दशा हो रही होगी, इसकी कल्पना की जाए ? (४३९६) ?

कवि की भावुकता के इस प्रकार के असंख्य उदाहरण सूरसागर में भरे पड़े हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सूर की भावुकता और सहृदयता बड़ी उच्चकोटि की थी। सहृदय सूर का टक्कर हिन्दी का कोई भी कवि नहीं ले सकता। जिन विद्वानों ने सूर को असामाजिक कहा है उपर्युक्त सभी अप्रस्तुतों को देखकर उनकी आँख खुल गई होगी। उन्होंने सूर को असामाजिक केवल उनके काव्य के प्रस्तुत पक्ष को देखकर कह दिया, किन्तु केवल प्रस्तुत ही काव्य नहीं है, अप्रस्तुत भी काव्य है, और प्रस्तुत से कहीं अधिक। सूर के अप्रस्तुतों को देखते हुए उन्हें असामाजिक कहना लखपती को रंक कहना है।

(ङ) सौन्दर्य-बोध

सौन्दर्य क्या है ? कहाँ है और इसका मानदण्ड क्या है ? ये प्रश्न आज तक भी विवादग्रस्त हैं ? सौन्दर्य क्या है ? इसके बारे में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के अलग-अलग मत रहे हैं। भारतीय चिन्तकों में भी मतैक्य नहीं है। महाकवि कालिदास ने कहा है—'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' अर्थात् जो प्रिय को अच्छा लगे वह सौन्दर्य है। महाकवि माघ के अनुसार 'क्षणे-क्षणे

यद्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः' अर्थात् जो क्षण-क्षण नवीनता ग्रहण करे वही सौन्दर्य है। एक तीसरा मत है—प्राप्ते षोडशे वर्षे सूकरीऽप्यप्सरायते' अर्थात् सोलह वर्ष की आयु में सूकरी भी अप्सरा लगती है। पहले मत के अनुसार सौन्दर्य आत्मनिष्ठ है, दूसरे के अनुसार व्यक्तिनिष्ठ और तीसरे के अनुसार चुस्ती में ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य आत्मनिष्ठ है या व्यक्तिनिष्ठ—इन दोनों पक्षों के समर्थक समान प्रबल हैं। किन्तु वास्तव में हमारी प्रवृत्तियाँ जहाँ सुख पाती हैं, उसी को सुन्दर कहती हैं, जिससे हमारे मन की भूख मिटे वही सुन्दर है। सौन्दर्य कहाँ पर होता है—यह भी विवादग्रस्त है ? किन्तु फूल की किसी पंखुड़ी विशेष में सौन्दर्य नहीं होता, अपितु सम्पूर्ण आकृति में सौन्दर्य का निवास है। चित्र की किसी रेखा या रंग विशेष में सौन्दर्य नहीं है, अपितु सम्पूर्ण चित्र की अनुभूति में सौन्दर्य है। काव्य से किसी शब्द या अलंकार विशेष में सौन्दर्य नहीं है, अपितु इन सबकी सामूहिक ध्वनि में सौन्दर्य है। स्त्री के मुख में, आँख में या केश में या सौन्दर्य नहीं है, अपितु सबकी मिलित अभिव्यक्ति, कसाव और गठन में सौन्दर्य है। इसी प्रकार सौन्दर्य का मानदण्ड भी निर्धारित नहीं है, अपितु यह विभिन्न देशों और उनकी रुचियों पर निर्भर करता है। चीन में औरतों का पाँव छोटा होना सौन्दर्य है इसीलिए लड़कियों को बचपन से ही लोहे का जूता पहनाया जाता है। अंग्रेजों में भूरा बाल सुन्दरता का प्रतीक है। न्यूजीलैण्ड की सामूअन जाति, ईरान, तुर्की तथा अफ्रीका की कुछ जातियों में मुटापा सौन्दर्य का लक्षण माना जाता है। दक्षिणी अफ्रीका में फूली हुई पिण्डलियाँ सुन्दर मानी जाती हैं। अफ्रीका की कुछ जंगली जातियों में लम्बे कुच सुन्दर माने जाते हैं, अतः प्रारम्भ से ही कुचों को लम्बा करने का प्रयास किया जाता है। पालीनेशिया में चपटी नाक सुन्दर मानी जाती है, अतः प्रारम्भ से ही बच्चों की नाक दबाकर चपटी की जाती है। मंगोल देश में छोटी आँखें सुन्दरता की प्रतीक है, अफ्रीका में गोरा रंग मुर्दे का माना जाता है और काला रंग सौन्दर्य का प्रतीक है। न्युकेलोडीनिया में विकृति आकृति ही सुन्दर मानी जाती है, अतः लड़कियों की आकृति बचपन से ही विकृत की जाती है। वास्तव में मानव इतिहास के साथ-साथ सौन्दर्य का मानदण्ड भी बदलता रहा है।

भारतीय दृष्टि से सौन्दर्य को विभिन्न वर्गों में बाँटा गया है। सौन्दर्य भूतात्मक और भावात्मक है। भूतात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रकृति और प्राणीगत सौन्दर्य के तीन वर्ग किए गए हैं—अंगविन्यास, चेष्टा और वाणीगत सौन्दर्य। भावात्मक सौन्दर्य मात्र मानवगत है। किन्तु इन सभी वर्गों में मानव-सौन्दर्य ही मुख्य रूप से सौन्दर्य-बोध का प्रतिमान माना जाता रहा है। मानव-सौन्दर्य में पुरुष सुन्दर है या नारी—इसे बताना दुष्कर है। वास्तव में पुरुष अधिक सुन्दर है, इसका प्रमाण मानवेतर प्राणियों से मिलता है। मोर मोरनी से सुन्दर है मुर्गा

मुर्गी से सुन्दर है, सांड़ गाय से सुन्दर है। इसी प्रकार पुरुष भी स्त्री से सुन्दर है, किन्तु पुरुष रूप के प्रति पुरुष सदैव से अन्यमनस्क रहा है और स्त्री रूप के प्रति तन्मनस्क। इसीलिए आदि से ही स्त्री रूप उसे आकृष्ट करता रहा है और यही कारण है कि मानव रूप में भी प्रायः स्त्री रूप ही सौन्दर्य-बोध का प्रतिमान माना जाता रहा है।

भारतीय दृष्टि से स्त्री रूप का जो मानदण्ड निर्धारित किया गया है, उसका आधार सामुद्रिक लक्षण, कामशास्त्र और देवियों का रूप रहा है। गरुड़ पुराण के चौंसठवें अध्याय में स्त्री रूप के सामुद्रिक लक्षणों का वर्णन हुआ है। कामशास्त्र में स्त्रियाँ चार प्रकार की बताई गई हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, और हस्तिनी। इनमें पद्मिनी और चित्रिणी श्रेष्ठ हैं और सौन्दर्य का प्रतिमान इन्हीं के लक्षणों से गृहीत हुआ है। स्त्री शरीर के रंग का प्रतिमान श्वेत या गौर माना गया है, श्यामल रूप नहीं। स्त्री शरीर में सौन्दर्य, मृदुता, कोमलता, कान्ति, चुस्ती और सुकुमारता होनी चाहिए। स्त्री की गति मन्द होनी चाहिए। जांघ में कान्ति, मन्दता, शीतलता, गोलाई आदि गुण होने चाहिए। बराहमिहिर ने कहा है जिस कुमारी के चरण स्निग्ध, उन्नत, आगे की ओर पतले और लाल नखयुक्त हों, उसके साथ विवाह करने से पुरुष को राज्य प्राप्ति होती है। जिस कन्या की जांघें रोमरहित, और शिराहीन हों, दोनों जानु सम हों, घुटनों की संधियाँ ऊबड़-खाबड़ न हों, उरु देश घन और हाथी की सूँड़ के समान हों, गुह्य देश विपुल और आश्वत्थ (पीपल) पत्र के समान हों, श्रोणी, ललाट और उरु कछुए की पीठ की भाँति बीच में ऊँचे और दोनों ओर ढालू हों, मणि बन्ध गूढ़ तथा नितम्ब विस्तृत और मांसल हों तो कन्या श्रीयुक्त होती है[1]। कटि पतली होनी चाहिए। रोमावली मृदुल श्याम, सूक्ष्म और नाभिपर्यन्त होनी चाहिए। स्त्रियों की गहरी नाभि सुन्दर मानी गई है। कुच, उन्नत, विस्तृत, दृढ़ और पाण्डु होने चाहिए तथा कुचाग्र श्याम। बराहमिहिर ने वर्तुलाकार घन, अविषम और कठिन कुचों को प्रशस्त बताया है।[2] भुजा में मृदुता और समता होनी चाहिए। हथेली का न बहुत ऊँचा और न बहुत नीचा अर्थात् समतल होना सौभाग्य का लक्षण है। अंगुलियों में कृशता होनी चाहिए। कंठ के लिए गोवर्धन ने दीर्घता और त्रिरेखायुक्त में दो गुण बताए हैं।[3] वाणी में माधुर्य और स्पष्टता गुण होने चाहिए। दांत श्वेत और चमकदार होने चाहिए। अधरों में माधुर्य, स्फीति और लालिमा होनी चाहिए।

---

१. बराहमिहिर : बृहत्संहिता ७०-१-३।

२. " : " ७०-६।

३. गोवर्द्धन : अलंकार शेखर, पृ० ४१।

पतले अधरों को सुन्दर बताया गया है।[१] नासिका के दोनों पुट समान होने चाहिए। नेत्र, स्निग्ध, विशाल, लोल, कटाक्षदीर्घ और बरौनियाँ निबिड़ होनी चाहिए। नेत्रों का रंग श्वेत, रक्त और कृष्ण होना चाहिए। दोनों भौंहों का टेढ़ा होना, न बहुत मोटा, न बहुत मिला हुआ सौभाग्य का लक्षण है।[२] ललाट का समतल होना सौभाग्य का लक्षण बताया गया है। केशों में दीर्घता, कुटिलता, मृदुता, निबिड़ता और श्यामलता होनी चाहिए। सामुद्रिक लक्षणों में केशों का स्निग्ध, नील, मृदु और कुञ्चित होना सुखकर बताया गया है।[३]

सौंदर्य के इसी मानदण्ड के आधार पर सूर के सौन्दर्य बोध का अध्ययन किया जा सकता है। कवि का हृदय जितना विशाल होगा, मानस जितना ही पवित्र होगा और आत्मा जितनी उन्नत होगी, उसका सौंदर्य-बोध उतना ही कान्त, सबल और उदात्त होगा। महाकवि सूर ने मानवीय रूप के विविध अंगों का चित्रण विभिन्न अप्रस्तुतों के माध्यम से किया है। ये अप्रस्तुत, अंगों के किसी विशेष गुण को लक्ष्य करके लाए गए हैं। इन अप्रस्तुतों में कुछ परम्परागत हैं, और कुछ कवि के अपने निजी, मौलिक। मानवीय अंग और सूर द्वारा लाए गए उनके लिए अप्रस्तुत इस प्रकार हैं—

(१) शरीर का अंग—शरीर के रंग के लिए चंपा (१८१५) और कंचन (१७६८) अप्रस्तुत लाए गए हैं। ये दोनों अप्रस्तुत परम्परागत हैं और गौर वर्ण के लिए लाए गए हैं।

(२) चरण—चरण के लिए कमल (२७२१), पल्लव (३२०३) और बन्धूक (७२८) अप्रस्तुत लाए गए हैं। एँड़ी के लिए बिम्बाफल (७५२) और चरण तली के लिए बिडाल-रसना (१८१५) अप्रस्तुत आए हैं। इन अप्रस्तुतों से चरण की कोमलता व्यक्त की गई है। बिम्बाफल से एँड़ी की लालिमा और बिडाल-रसना से चरण तली की लालिमा और कोमलता-दोनों व्यक्त किए गए हैं। बिडाल-रसना अप्रस्तुत नितान्त मौलिक है शेष परम्परागत।

(३) नख—नख के लिये सूर्य (३४०६), चन्द्र (१२५२) और मोती (७६८) अप्रस्तुत आए हैं। ये अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे नख की चमक प्रकाशित की गई है।

(४) नूपुर—नूपुर के लिये हंस (७७२) अप्रस्तुत लाया गया है जो परम्परागत है।

---

१. वराह मिहिर : बृहत्संहिता ७०-६।

२. वराहमिहिर : बृहत्संहिता ७०-८।

३. „ : „ ७०-९।

(५) गति—गति के लिए हंस (१६६८) और गज (८५२) अप्रस्तुत आए हैं। ये दोनों अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे गति की मन्दता व्यक्त की गई है।

(६) जांघ—जांघ के लिये कमलनाल (२५७०), कदली (२८७३), विपरीत कदली (२३२१), गज (१७५४), सूंड़ (२७२६) और कनक खम्भ (८५२) अप्रस्तुत आए हैं। इन अप्रस्तुतों द्वारा जांघ की मसृणता, चिक्कणता, सुडौलता, लोमहीनता और गौरवर्ण व्यक्त किया गया है। सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं।

(७) नितम्ब—नितम्ब के लिये गज (२७२८) अप्रस्तुत लाया गया है। यह परम्परागत है और इससे नितम्ब की विस्तृति व्यक्त की गई है।

(८) भग—भग के लिये सरस सर (२७५०) अप्रस्तुत आया है, जो नितात मौलिक है और इससे भग की विपुलता और सरसता व्यक्त की गई है।

(९) कटि—कटि के लिये बर्र (३४४९) और सिंह (३८५१) अप्रस्तुत आए हैं। इनसे कटि की सूक्ष्मता व्यक्त की गई है और ये परम्परागत हैं।

(१०) त्रिबली—त्रिबली के लिये लहर (८०२), बंधान-रस्सी, (३०६४), सीढ़ी (१८२२) और क्रोधित मयूर का मुख (८०६०) अप्रस्तुत आए हैं। इनमे अंतिम अप्रस्तुत मौलिक है, शेष परम्परागत।

(११) नाभि—नाभि के वर्णन के लिए सरोवर (६९), सुधासर (१८७२), भंवर (२८०२), और कमल (१८२१) अप्रस्तुत लाए गए हैं। ये सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे नाभि की गहराई व्यक्त की गई है।

(१२) रोमावली—रोमावली के वर्णन के लिये धूमधारा (१२५३) नदी (२८०२) शैवाल मंजरी (३०६५), जमुना (२३७३), धारा (२४५६), भृगुलता (६९) भ्रमर (१२५२) सांप (१२५४) सूंड (३२२८) बगपंक्ति (२३९) और बास पर चढ़ा हुआ नट (२८८१) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। इन अप्रस्तुतों से रोमावली की श्यामता कोमलता और सघनता व्यक्त की गई है। इन अप्रस्तुतों से बांस पर चढ़ा हुआ नट और बगपंक्ति नितान्त मौलिक हैं, किन्तु बगपंक्ति में वर्णदोष है क्योंकि रोमावली श्याम होती है, जबकि बगपंक्ति श्वेत।

(१३) पेट—पेट के वर्णन के लिए अवनी (१८१९), सरोवर (२७८६) और कमल (८०२४) अप्रस्तुत लाए गए हैं। ये अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे पेट की प्रशस्ति व्यक्त की गई है।

(१४) पीठ—पीठ के लिये उल्टा कदलीदल (४०२२) अप्रस्तुत आया है। यह नितान्त मौलिक अप्रस्तुत है, इससे कृशता का वर्णन किया गया है यह अप्रस्तुत वियोगिनी गोपियों की पीठ के लिये आया गया है उल्टे कदली दल की

तरह वियोगिनी गोपियों की पीठ की रीढ़ और हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही हैं।

(१५) कुच—नारी शरीर में कुचों का स्थान सर्वोपरि रहा है। कुचों के वर्णन के लिये सूर ने चन्द्रमा (३०९०), शंकर (३२८०), पहाड़ (१६६०), स्वर्ण गिरि (१७८४), सुमेरू (४७ ०), ताड़फल (२०८३), कमल (१२०७), स्वर्ण कमल (३०६५), कमठ (२७४९), चक्रवाक (३४१६), गजकुम्भ (१८१५), कोट का कंगूरा (३२८६), थंभ (१७६८), घट (१८२४), विषमोदक (२२०३) श्रीफल (१३००) और उच्चस्थली (३२३१) का प्रयोग हुआ है। कुचाग्र के लिए भ्रमर (३०७१) अप्रस्तुत आया है। इन अप्रस्तुतों में ताड़फल, कोट का कंगूरा और उच्चस्थली कवि के अपने मौलिक हैं, शेष परंपरागत। पहाड़, सुमेरु, गजकुम्भ, घट और उच्चस्थली से कुचों की विशालता, स्वर्णगिरि सुमेरु और स्वर्ण कमल से कुचों का गौरवर्ण, शंकर, ताड़फल और श्रीफल से कुचों का आकार, कमठ और ताड़फल से कुचों की कठोरता, थंभ से नाभिगामिता और विषमोदक से कुचों का वशीकरण गुण व्यक्त किया गया है। भ्रमर से कुचाग्रों की श्यामता व्यक्त की गई है।

(१६) कर—हाथों का वर्णन सूर ने राहु (७९०) शेषनाग (६९), बिजली (३२८४), वृक्ष (४७३२), पल्लव (५४८), कमल (३०५३), सांप (२८२९), कनक खम्भ (१७५४) और कंचन की डोरी (२५५५) अप्रस्तुतों के द्वारा किया है। ये सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे हाथों की कोमलता, चिक्कणता और गौर वर्ण व्यक्त किया गया है।

(१७) अंगुली—अंगुली के लिए प्रबाल (१२७७) अप्रस्तुत आया है। यह परम्परागत है और इससे अंगुली की कृशता व्यक्त हुई है।

(१८) ग्रीवा—ग्रीवा के लिए कमठ (३०८४), गरुड़ (३३९४), हंस (१६६६) मोर (१६६६), कपोत (१२४४) और कम्बु (२८०२) अप्रस्तुत लाए गए हैं। ये सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं और इनसे ग्रीवा से उन्नत गुण का चित्रण किया गया है।

(१९) वाणी—वाणी के लिए रसाल (७२३), कोकिल (३०८६) और चातक (१ ७) अप्रस्तुत आए हैं। ये परम्परागत हैं और वाणी की मृदुता के चित्रण के लिए आए हैं।

(२०) चिबुक—चिबुक के लिये अमृतफल (२७२८), सरोवर (४८०४), कमल (३ २९) और मूंदा मधु (३५१९) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। इनमें पक्षी और मूंदा मधु मौलिक हैं, शेष परम्परागत। इन अप्रस्तुतों से चिबुक का आकार और मृदुता गुण व्यक्त किए गए हैं।

(२१) कपोल—कपोलों के वर्णन के लिए चन्द्रमा (१·४५), दुग्ध सिन्धु (१८३४), अमृत (२८२३), सरोवर (२३९५), सुधासर (१२६२), जमुना (१८२२) आलबाल (३२ ५), कमल (२४३९), अमृत घट (२७५१) और दर्पण (३ ९५) अप्रस्तुत आए हैं। इनमें चन्द्रमा, दुग्ध सिन्धु और दर्पण कपोलों की स्फीति के लिये, आलबाल कपोलों के आकार के लिये तथा अमृत, अमृत घट कपोलों की मृदुता के लिये आए हैं। आलबाल (घेरा) अप्रस्तुत नितान्त मौलिक हैं, शेष परम्परागत।

(२२) तिल—तिल का वर्णन अलिसावक (२७२९) और मृगमद (२७२८) अप्रस्तुतों द्वारा हुआ है। दोनों अप्रस्तुत परम्परागत हैं और श्यामता गुण के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

(२३) मुख—मुख के लिये सूर्य (-३८५), चन्द्र (७ २) और कमल (१७२५) अप्रस्तुत आए हैं। आभाहीन मुख के लिये द्वितीया का चांद (२७३४) और चन्द्रकलंक (४०२२) अप्रस्तुत लाए गए हैं। सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं और मुख की कान्ति के लिए लाए गए हैं।

(२४) दाँत—दांतों के लिए वज्रकण (२१७१), बिजली (७ ९), दाड़िम (१२४४), दाड़िम बीज (१९९७), कुमुद (३२८३), कुन्द (२३६९), तलवार (३०७३), विद्रुम (१८३१) और मोती (२४२६) अप्रस्तुत आए हैं। सभी अप्रस्तुत दांतों की स्वच्छता और चमक के लिये लाए गए हैं। तलवार अप्रस्तुत मौलिक है, अन्य परम्परागत।

(२५) हास—हास के लिए चन्द्रिका (७५९), डमरू ध्वनि (७८८), अग्नि (३३ ०), बिजली (१२३४) और प्रातः (२६१५) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए है। मुस्कान के लिए बिम्बरस (१८२२) और पुष्प (२७३७) अप्रस्तुत आए हैं। ये अप्रस्तुत हास की धवलिमा तथा मुस्कान की मृदुता के लिए लाए गए हैं। डमरू ध्वनि अप्रस्तुत मौलिक है, शेष पारम्परिक।

(२६) अधर—अधरों का वर्णन वंदन (१०९४), कनक संपुट (३२३·), अमृत (१२६३) सरोवर (४८९२), सुधासर (१८२२), पल्लव (१७९८) दाड़िम (३०५४), बिम्बाफल (१८१५), बन्धूक (१४१७), कमल (२४५३), कुन्दकली (२०८३), पुष्प (२७२८) और विद्रुम (१७३६) अप्रस्तुतों द्वारा प्राप्त हुआ है। ये सभी अप्रस्तुत परम्परागत है। वंदन, दाड़िम, बिम्बाफल और बन्धूक से अधरों की लालिमा, पल्लव, कमल और पुष्प से कोमलता, अमृत, सुधा सर से माधुर्य तथा कुन्दकली और विद्रुम से पतलेपन का प्रकाशन हुआ है।

(२७) ओष्ठ—ओष्ठ के लिए पल्लव (२७२८) अप्रस्तुत आया है।

(२८) नाक—नासिका के वर्णन के लिये तिलप्रसून (२४२८), चम्पकली (१६६४) और कीर (३२८६) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुये हैं। सभी अप्रस्तुत पारम्परिक हैं और इनसे नासाद्वय की समानता तथा आकार व्यक्त हुआ है।

(२९) कान—कान का वर्णन प्रायः कवियों में नहीं मिलता, किन्तु सूर ने इस अंग को भी नहीं छोड़ा है। कान के लिए अप्रस्तुत लाये गये हैं—आलबाल (२७६१), द्वार (४४६४), कूप (३६४)। ये तीनों अप्रस्तुत मौलिक हैं। आलबाल से कानों का घेरा और कूप से गहराई व्यक्त की गई है।

(३०) आँख—नारी अंगों में से आँखों का वर्णन हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक हुआ है। विद्यापति के लिये जहाँ कुच ही सब कुछ हैं, वहाँ बिहारी के लिए नेत्र ही सर्वस्व हैं, किन्तु सूर ने इन दोनों के बीच दोनों अंगों का समान वर्णन करके मध्यस्थता की है। आँखों के अप्रस्तुत हैं—सूर्य (६७३), चन्द्र (६७३) आरती, (४७१८), झरना (४१८६), बादल (४४५२), सरोवर (२७५१), कमल, (३००४), कुमुद (४१८७), मीन (१६६७), हंस (४१८७), नट का बटा (३००७), खंजन (२५८५), चकोर (३५५), चक्रवाक (३४५०) चातक (२४८८), भ्रमर (२४००), घोड़ा (१२६८), मृग (१८२३), वाण (२३१४) और चषक (१८०९)। लाल नेत्रों के लिये बन्धूक (३००१) और वियोगी नेत्रों के लिये जला खंजन (३८५९) अप्रस्तुत आए हैं। नट का बटा अप्रस्तुत मौलिक है, शेष परम्परागत। इन अप्रस्तुतों में कमल, कुमुद, मीन, खंजन नेत्रों के आकार के लिये, सूर्य, चन्द्र, कुमुद नेत्रों की श्वेतिमा के लिये, बादल भ्रमर नेत्रों की कालिमा के लिये, मीन, घोड़ा, मृगचंचलता के लिये, सरोवर, चषक माधुर्य के लिए वाण, बेधकता के लिए लाये गये हैं।

(३१) कटाक्ष—कटाक्ष के लिये चन्द्रकलंक (०७२), लहर (२३८१) भंवर (१२८६) और वाण (२२०३) अप्रस्तुत लाये गये हैं। ये अप्रस्तुत परम्परागत हैं और कटाक्ष की सूक्ष्मता तथा बेधकता के लिये आए हैं।

(३२) पुतली—पुतली के लिये तारा (३८५२), नौका (४७०१) और भ्रमर (७५४) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। ये तीनों अप्रस्तुत पारम्परिक हैं और इनसे पुतली की श्वेतता और श्यामता व्यक्त की गई है।

(३३) भौंह—भौंह के लिये नव शशि (१६६६), इन्द्रधनुष (२३६५), मीन (१६९८), फन्दा (२७३), साँप (२४३२) और धनुष (२४४२) अप्रस्तुत आए हैं। सभी अप्रस्तुत परम्परागत हैं। नवशशि, इन्द्र धनुष और धनुष से भौंह का आकार

मीन से चंचलता, सांप से श्यामता और फंदा से वशीकरण गुणों का चित्रण किया गया है।

(३४) ललाट—ललाट के वर्णन के लिये चन्द्रमा (७२२), चन्द्ररेख (७११), आकाश (३३६०) और कमल (१८२४) अप्रस्तुत प्रयुक्त हुये हैं। ये सभी परम्परागत हैं और ललाट के समतल गुण के लिये लाये गये हैं।

(३५) विन्दी—मत्थे की बिन्दी के लिये अप्रस्तुत आए है—प्रातरवि (१३२२, चन्द्रमा (१६७?), तारा (२११६), बन्धूक (२७३६), काग (२७२८), सोता अलिसावक (७५५) महावत (२०५७)। इन अप्रस्तुतों में काग और महावत नितांत मौलिक हैं, शेष परम्परागत। इनमें से चन्द्र, तारा, महावत श्वेत बिन्दी तथा बिन्दी के आकार के लिए, काग, अलिसावक श्याम बिन्दी के लिये तथा प्रातरवि, बन्धूक लाल बिन्दी के लिये लाए गए हैं।

(३६) केश—केशों का वर्णन भी कवियों का प्रिय विषय रहा है। केश के के वर्णन के लिये सूर ने अप्रस्तुत जुटाया है—राहु (८०२), बादल (१७५४), रात्रि (२७५०), अंधकार (३२३१), सिवार (४८०१), जमुना (३४७५), लहर (२४३३) लंगर (२४१५), फन्दा (२८६०), भ्रमर (२४२०), सांप (३ ६०), चवर (२१६७) और रज्जु (२८५६)। सूखे तेल रहित बालों के लिए अप्रस्तुत आया है बट-लट (४०२२) और श्वेत बालों के लिये जूही पुष्प (१८१६)। इन अप्रस्तुतों में लंगर और बट-लट नितान्त मौलिक हैं, अन्य परम्परागत। बादल, रात्रि, अंधकार, जमुना, भ्रमर अप्रस्तुतों से बालों की कालिमा, लहर और सांप से कोमलता, कुटिलता तथा फन्दा से मनोमुग्धकारिता गुण व्यक्त किये गये हैं।

(३७) मांग—मांग के वर्णन के लिये सूर्य किरण (३२३१), तारा (३०५४) और गंगा (३३८१) अप्रस्तुत आए हैं। सभी पारम्परिक हैं और माग की श्वेतिमा के लिये प्रयुक्त हुए हैं। ध्यान रहे, कि सूर ने सिन्दूर भरी मांग का वर्णन नहीं किया है, क्योंकि राधा या गोपियों का कृष्ण से विवाह तो हुआ ही नहीं है।

(३८) जूड़ा—जूड़े के लिए सूर ने अप्रस्तुत जुटाया है अंधकार का कूट (३०६३) और अगाध नीर (३०६३)। दोनों अप्रस्तुत कवि के अपने निजी मौलिक हैं तथा जूड़े की कालिमा और विशालता के लिये लाये गये हैं।

(३९) वेणी—वेणी के वर्णन के लिये मोहिनी लता (१८१४), अलिश्रेनि (३४५९), नागिन (७९३), सांप (३०८६) और हाथी की पूंछ (२०५७) अप्रस्तुत

लाये गये हैं। इनमें हाथी की पूंछ मौलिक है, शेष परम्परागत। नागिन, सांप और अलिसेन अप्रस्तुत बेणी की श्यामता, कोमलता और चिक्कणता के लिए आए हैं तथा मोहिनीलता मुग्धकारिता के लिये।

इस प्रकार रूप-चित्रण सम्बन्धी इन अप्रस्तुतों को देखते हुये हम कह सकते हैं कि सूर का सौन्दर्य-बोध अत्यन्त कान्त, सबल और उदात्त है। न केवल परम्परागत अपितु अनेक मौलिक अप्रस्तुतों का आश्रय लेकर उन्होंने अपनी सौन्दर्य दृष्टि को प्रकाशित किया है। इस प्रकार अप्रस्तुतों के माध्यम से सूर के एक अत्यन्त सबल और सशक्त व्यक्तित्व का हमें परिचय मिलता है।

अध्याय ३

अप्रस्तुत प्रयोग के आधार पर सूर के समाज का अध्ययन

सूर द्वारा प्रयुक्त अप्रस्तुतों के माध्यम से तत्कालीन समाज का अध्ययन किया जा सकता है। कवि और समाज का परस्पर सम्बन्ध अनिवार्य है। दोनों के बीच ग्राह्य-ग्राहक भाव विद्यमान रहता है। कवि जहाँ प्रस्तुत में समाज को ग्रहण करता है, वहीं अपने अप्रस्तुतों के लिये भी समाज को टटोलता है। सूर ने भी बहुत से अप्रस्तुत समाज से ग्रहण किया है, जिनके अध्ययन से तत्कालीन समाज का एक चित्र उभरता है। अप्रस्तुतों के आधार पर सूर के जिस समाज का चित्र सामने आता है, उसे प्रस्तुत करने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

(क) सामाजिक जीवन

हमारे भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता है, वर्ण-व्यवस्था। हमारी वर्ण-व्यवस्था उतनी ही पुरानी है, जितने कि आर्य, किन्तु वर्तमान युग में इस वर्ण-व्यवस्था की उपेक्षा की गई। अनेक विचारकों ने आलोचना-प्रत्यालोचना द्वारा इसे ढहाने का प्रयास तो किया, किन्तु आज तक किसी ने इसका दूसरा विकल्प सुझाने का प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि हमारा समाज दिन-प्रतिदिन विच्छृंखल होता जा रहा है। हमारे पूर्वज ऋषियों और महर्षियों के ज्ञान, प्रतिभा और अनुभव से यह वर्ण-व्यवस्था निष्पन्न हुई थी। चार प्रमुख व्यवसायों में लगी मानव जाति को चार वर्गों में विभक्त कर दिया गया था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में आया है कि आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। प्रारम्भ में तो कर्म के अनुसार वर्ण निश्चित होता था, किन्तु शनैः-शनैः कर्म भी रूढ़ होते गए और वर्ण-व्यवस्था भी जन्मना ही गई है। पुराण काल से इन चार वर्गों से अन्य उपजातियों की भी उत्पत्ति प्रारम्भ हुई और ईसा-शताब्दी के आते-आते अनेक उपजातियाँ भी बन गयी। सूर ने इन चार प्रमुख वर्णों तथा अनेक अन्य जातियों का उल्लेख अपने अप्रस्तुतों में किया है। ऊँच-नीच की भावना पर भी कुछ स्थलों पर संकेत हुआ है। शूद्र के साथ ब्राह्मण का भोजन करना सूर के समाज में हेय माना जाता था (३७७०)। यह अप्रस्तुत कृष्ण के कुब्जा के साथ प्रेम के लिए लाया गया है। समाज में ब्राह्मण का स्थान पूज्य था और शूद्र का हेय। ब्राह्मण के लिए विप्र का भी प्रयोग

हुआ है (४४२७)। क्षत्रिय के लिए सूर के समाज में प्रचलित शब्द था ठाकुर (४०, ४५२७)। ठाकुर की स्त्री ठकुराइनि कही जाती थी (१३३१)। ठाकुर वर्ग का कार्य शासन और रक्षा था, वैश्य के लिए साहु (४५८३) का प्रयोग हुआ है तथा वाणिज्य का वर्णन पद २१० और २११२ में हुआ है। इस प्रकार प्रमुख चारों वर्ण सूर के समाज में विद्यमान थे। तत्कालीन समाज की अन्य जातियाँ इस प्रकार हैं—अहीर (१५४१, २७७४), केवट (१८४, ५९०) सुनार (१६९३), लुहार (४७२६), बढ़ई (१३२), तेली (१०२), धोबी (४५७५), कुम्हार (४३९९), बनजारा (४२२२), खानाबदोष (४००१), जाट (२१६), बहेलिया (१६९), डोम (१८७९), कसाई (२१०९) इत्यादि। ये सभी जातियाँ आज भी हमारे समाज में विद्यमान हैं। अहीर जाति गोपालन का काम करती थी, केवट या मल्लाह नौका-चालन और मत्स्य आखेट करते थे। सुनार सोने का, लुहार लोहे का और बढ़ई लकड़ी का कार्य करते थे। तेली का कार्य तिल से तेल निकालना, धोबी का कार्य वस्त्र धोना और कुम्हार का मिट्टी के बर्तन बनाना था। बनजारा घूम-फिर कर व्यापार करने वाली जाति थी तथा खानाबदोश वह भ्रमणशील जाति थी, जो अपनी पूरी गृहस्थी अपने साथ लिए रहती थी। जहाँ शाम हो गयी वहीं पर डेरा डाल देते थे। जाट लोग आज भी पश्चिमी उत्तरप्रदेश में बसते हैं। डोम नीच जाति थी और स्वच्छता-सफाई का काम करती थी। कसाई जीवों का वध करके कच्चा चमड़ा निकालते थे तथा बहेलिया पक्षियों को फँसाने और क्रय-विक्रय का कार्य करते थे। इस प्रकार तत्कालीन समाज में आज की प्रायः सभी जातियाँ रहती थीं। मुसलमानों का उल्लेख नहीं हुआ है। लगता है, उस समय इनकी संख्या बहुत कम थी। वस्तुतः औरंगजेब के समय में मुसलमानों की संख्या में काफी वृद्धि हुयी। यद्यपि सूर ने अपने समाज की प्रायः सभी जातियों का उल्लेख किया है, किन्तु उनके कथन जाति, गोत्र, कुल नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं' (११) से संकेत मिलता है कि जाति-प्रथा में सूर की रुचि नहीं थी।

समाज अनेक परिवारों में बँटा था। परिवार प्रायः छोटे हुआ करते थे। सामूहिक परिवारों का प्रचलन कम था। साधारणतया एक परिवार में, माता-पिता, पति-पत्नी और भाई-भगिनी ही रहते थे (१७३)। मित्र भी परिवार के सदस्य की तरह ही समझे जाते थे (१७३)। अन्य सम्बन्धियों में मौसी, नानी-नाना का भी उल्लेख हुआ है (४५६४)। परिवार आज ही की भाँति घरों (१५२९) में निवास करता था। घर में कोठरियाँ (४३८०) होती थीं और किवाड़ (३७४) भी लगाए जाते थे। लोगों में सुरक्षात्मक भावना अधिक थी। खाद्य पेय पदार्थों में लड्डू (२२०३) तत्कालीन समाज का प्रिय भोज्य था। फलों और तरकारियों में अंगूर (६१), श्रीफल (१८०९), भाँटा (३२०), लौकी (४०६२), मूली (४०८२), प्याज

(३६९०), सेम (४४४४) मुख्य थे। मसालों में धनिया (४२२२), लहसुन (३७७०) हल्दी (३८६९), कपूर (४२७१) और खटाई (४५७५) का उल्लेख मिलता है कि इनका खाना समाज में अच्छा नहीं माना जाता था। सूर के समाज में घी-दूध की अधिकता थी। मध्यकालीन भारत में पशु-पालन आज की अपेक्षा कहीं अधिक होता था, जिससे घी-दूध की कमी नहीं रहती थी। जिन मुख्य पालतू पशुओं का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं— बैल (१८५), गाय ५१', भैंस-भैंसा (३७५), बकरी (४५२०)। इनके अतिरिक्त हाथी (४५), घोड़ा (१४१); ऊँट (३७५), गधा (२०:), कुत्ता (२०३) आदि का भी पालन होता था। दूध देने वाले पशुओ मे गोपालन मुख्य था। गायों की अधिकता से दूध-दही की कमी नहीं रहती थी। दूध (४७२:), दही (५२), घी (४८८०), मक्खन (४७२३) और मट्ठा (२६०४) लोगों के मुख्य पेय थे। तेल (४६) और मधु (१८४१) का भी उल्लेख हुआ है। इस प्रकार सूर का समाज मुख्य रूप से शाकाहारी था। मांसाहारी का कोई उल्लेख सूर के अप्रस्तुतों में नहीं मिलता। भोजन अंगीठी (४२६०) और भट्ठी (२५६०) पर पकाया जाता था। ईंधन के रूप में लकड़ी (४२२४), कोयला (४५६१) और कण्डा (४००८) का उपयोग होता था। जलाने के लिये गोबर को सुखाकर आज भी कण्डा बनाया जाता है। थाल (२८१४), चषक (१८०९), और बर्तन (३४०) का भी उल्लेख मिलता है। मद्य (२२५८) और मद्यप (४१८३) अप्रस्तुत भी आये है, जिससे स्पष्ट है कि समाज के किन्हीं वर्गों में मद्यपान की प्रथा प्रचलित थी। भोजन के बाद पान खाने का भी प्रचलन था (१६९)। पान के लिये नागबेलि (२४८) भी आया है। बीरा लेने और बीरा देने का भी उल्लेख हुआ है (५१८, २१९३) गृहस्थी में दैनिक उपयोग के लिये अनेक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है तत्कालीन समाज की कुछ दैनिक उपयोग की वस्तुएँ इस प्रकार थीं – दीपक (३७१), रस्सी (११९२) घड़ा (२४९८), संदूक (२९ ९), ताला (२९९७), कुंजी (२४९०), पिटारी (२०३), सूप (४३८८), कथरी (४ ३२), पंखा (:४९८), कैंची (९) सीढ़ी (१८२२), तराजू (२७५१ , कुठार (६८) आदि। कोठरी, किवाड़ा, सन्दूक, ताला, कुंजी आदि से संकेत मिलता है कि लोगों में सुरक्षात्मक भावना प्रबल थी।

तत्कालीन समाज की वस्त्राभूषण तथा शृंगार प्रसाधनों में विशेष रुचि थी। वस्त्राभूषणों तथा शृंगार-प्रसाधनों में से कुछ का उल्लेख सूर के अप्रस्तुतों में हुआ है। नारी वस्त्रों में मुख्य हैं—अंगिया (१६०७), लंहगा (१६१६), चुनरी (८४), चोली (४८०५), उपरना (४४), साड़ी (१८०९)। अंगिया या चोली कंचुकी के लिए आए हैं। लंहगा अधोवस्त्र है तथा चुनरी या उपरना लंहगे के साथ ऊपर

ओढ़ा जाता था। चुनरी और लंहगा मुसलमानी सभ्यता की देन हैं। इससे स्पष्ट है कि हमारे समाज में सूर के समय तक मुसलमानी पहनाओं का प्रचलन हो चुका था। साड़ी और कंचुकी भारतीय पहनावा है। समाज में पर्दा प्रथा थी। स्त्रियाँ घूँघट करती थीं। यह पर्दा-प्रथा भी मुसलमानों की ही देन है। पुरुषों के वस्त्रों में पिछौरा (४५६०) और पटोसिर (३६४२) का उल्लेख मिलता है। पटोसिर से पगड़ी या साफा बाँधने के प्रचलन का संकेत मिलता है। आभूषणों के प्रति स्त्रियों मे पर्याप्त रुचि थी। उस समय के मुख्य आभूषण -- हार (१६०७), ताटंक (६०), टाड (४६७८), कंगन (४७२५), नूपुर (१५३) आदि थे। शृंगार-प्रसाधन की निम्नलिखित सामग्रियों का उल्लेख सूर के अप्रस्तुतों में मिलता है—सिन्दूर (:२८५), काजल (१५४८), अंजन (३३१८), सलाका (४१८८)। अबीर (३६७७), मजीठ (४११०), मृगमद (२७२-), गेरू (:७७०), दर्पण (३३६५) आदि। रंगों के प्रति भी स्त्रियो की विशेष रुचि थी। कुसुम रंग (३४४४), नीला रंग (४८०५), लाल (८४), श्वेत (४४) आदि रंगों का उल्लेख मिलता है।

भारतीय हिन्दुओं में जन्म से मृत्यु तक अनेक संस्कार होते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार इन संस्कारों की संख्या सोलह निर्धारित की गई है। इन संस्कारों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है, क्योंकि इनसे हमारा जीवन सही मार्ग पर अग्रसरित होता है। वास्तव में ये संस्कार, हमारे ऊपर हमारी संस्कृति की, भारतीय मुहर है, जो बार-बार लगाई जाती है, जिससे हम हजारों के बीच में भी आसानी से पहचाने जा सकें। इन संस्कारो में से मुख्य है—जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णछेद मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह तथा अन्त्येष्टि। सूर के अप्रस्तुतों में, इन संस्कारों में से, कुछ का संकेत मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि उस समाज में इन संस्कारों की मान्यता थी। जात संस्कार का संकेत पद ७०४ से मिलता है, जिसमें जातसंस्कार के अवसर पर ज्योतिषी कृष्ण के बारे में भविष्यवाणी करता है। चोटी और यज्ञोपवीत का भी उल्लेख हुआ है (१८६५)। विवाह का तो विस्तृत विवरण ही मिलता है विवाह में दूल्हा और दूल्हन (१६६२) आमने-सामने बैठते थे। दूल्हा सिर पर मौर (१६८६) बाँधता था। विवाह के अवसर पर दो कलश रक्खे जाते थे (५६८)। स्वर्ण-कलश समृद्धि का द्योतक है। दूल्हा, दूल्हन की माँग में सिन्दूर (५६८) भरता था और दूल्हन दूल्हे के तिलक (६६८) लगाती थी। अग्नि को साक्षी देकर भाँवरि फेरी जाती थी (१६८६)। विवाह के चित्र से तत्कालीन विवाह प्रणाली का पता चलता है। विवाह की यह प्रणाली वैदिक विवाह कहलाती है। राधा-कृष्ण की रासलीला से गंधर्व विवाह की ओर संकेत मिलता है। पद १७३ से से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में अनमेल विवाह भी प्रचलित था। ऐसे

विवाह के दुष्परिणाम का भी मार्मिक चित्रण हुआ है । वृद्ध की युवती घर आते ही सास-ससुर को अलग कर देती है । उसका भाई घर का अधिकारी बन जाता है । ऐसी कुलटा स्त्री निर्लज्ज होती है और घर को नष्ट कर देती है (१७) । पति-पत्नी के सहवास की भी झाँकी प्रस्तुत की गई है (३१४२) । अन्त्येष्टि संस्कार की ओर भी मृतक (४७६८) प्रेत (३५८) और श्मशान (३७८६) से संकेत मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि मुर्दे को जलाने की प्रथा मुख्य थी और भूत-प्रेत बाधा में भी समाज का विश्वास था । 'सिर ठोंकी लकरी' (७१) से कापालिक क्रिया का संकेत मिलता है । हिन्दू समाज में 'जीवेम शरदः शतम्' की भावना थी और इन सौ वर्षों को चार भागों में विभक्त कर दिया गया था जिसे आश्रम धर्म की संज्ञा दी गई । जीवन के चार भाग थे — ब्रह्मचर्य, गृहस्थी, वानप्रस्थ और संन्यास । इस आश्रम धर्म की ओर भी सूर के अप्रस्तुतों से संकेत मिलता है । विद्याध्ययन का संकेत चटसार (४७८) से मिलता है । गृहस्थ आश्रम का विवाह (१६८९) से, वानप्रस्थ का मुनि (४२६२) और तप (१२७६) से तथा संन्यास आश्रम का संकेत बैरागी (८२३) और सिद्ध (१९२) से मिलता है । इन संकेतों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में आश्रम धर्म मान्य था ।

सूर के समाज में सती प्रथा का भी प्रचलन था, जिसका उल्लेख उनके अप्रस्तुतों में अनेक बार हुआ है (३२१, २८३४) । यह प्रथा तत्कालीन नारी समाज का मुख्य अंग थी । सूर के उल्लेखों से लगता है कि उनके समय में यह प्रथा अत्यन्त सामान्य थी । इस प्रथा के आरम्भ में तो स्त्रियाँ स्वेच्छा से पति के शव के साथ अपने को भस्म कर देती थीं, किन्तु सूर के समय तक इसका वीभत्स रूप हो गया था । स्त्री की अनिच्छा पर भी उसे बलपूर्वक चिता में झोंक दिया जाता था । बाद में राजाराम मोहनराय के प्रयासों से इस कुरूप प्रथा का उन्मूलन हुआ । मध्यकाल में इसी सती प्रथा ने जौहर का रूप धारण कर लिया था । सती प्रथा मुख्यरूप से उच्च वर्गों में प्रचलित थी । निम्न वर्गों में इसका प्रचलन नहीं था, क्योंकि विधवा (२९२) का भी उल्लेख हुआ है । सब सती हो ही जायँ तो विधवा कहाँ से बचें ? सूर के अप्रस्तुतों से तत्कालीन समाज के कुछ प्रमुख त्यौहारों पर भी प्रकाश पड़ता है । गोवर्द्धन पूजा (४४०८) से दीपावली त्यौहार की ओर संकेत मिलता है, क्योंकि इसी दिन गोवर्द्धन पूजा होती थी । हिंडोला (२९८९) से सावन-झूले का संकेत मिलता है । बसन्तोत्सव का संकेत बसंत (३२०६) से मिलता है तथा होली त्यौहार का संकेत होली जलाने (३२०६) से मिलता है । होली पर अबीर (३६७७) लगाई जाती थी । राधा-कृष्ण का होली से विशेष सम्बन्ध रहा है । आज भी ब्रज की होली अपूर्व और दर्शनीय होती है । नन्दगाँव के पुरुष और बरसाने की स्त्रियाँ एकत्र होती हैं और होली का हुड़दंग मचता है । यह भी द्रष्टव्य है कि समाज में नार-

जाने वाले फाग गीतों में से आज भी अधिकांश का सम्बन्ध राधा और कृष्ण से है। जैसे 'कान्हा मोरी गागरि फोरी', 'मोहन मारै डाका' आदि फाग गीतों के बोल।

सूर ने अपने अप्रस्तुतों में साहित्य, संगीत और कला की ओर भी संकेत किया है। तत्कालीन समाज में लेखन और पाठन का प्रचलन था। लेखन-सामग्री-कागज, दावात, स्याही (१८३), बारहखड़ी (४७४४) और चटसार या पाठशाला (४७८३) का उल्लेख हुआ है, जिससे अध्ययन-अध्यापन पर प्रकाश पड़ता है। विद्यार्थी पाठशालाओं में पढ़ते थे, पढ़ाई का श्री गणेश बारहखड़ी से होता था। ग्राम (४६१६) से व्याकरण विद्या की ओर संकेत मिलता है। सूर के समाज में अध्ययन-अध्यापन का प्रचलन बहुत कम था, क्योंकि इस क्षेत्र के अप्रस्तुतों की संख्या नगण्य है। कलाओं में चित्रकला प्रमुख थी, जिसका उल्लेख सूर के अप्रस्तुतों में अनेकशः हुआ है (२२७८, ३२१८)। यवनिका (८७२) से नाटकों के अभिनय की ओर भी संकेत मिलता है। संगीत और वाद्य का सूर के समाज में विशेष प्रचलन था। राग-रागिनियों का लोगों को विशेष ज्ञान था, क्योंकि तान बजते ही लोग जान लेते थे (४४५६)। उस समय के प्रमुख वाद्य थे वीणा (२६८३), झांझ (३४७१) और मृदंग (३००१)। नृत्य का भी उल्लेख अनेक बार हुआ है। 'अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल' (१५३)। इस पद में नर्तक की पूरी वेश-भूषा चोलना, माला, नूपुर, पखावज, फेंटा और तिलक तथा ताल का भी उल्लेख हुआ है। नर्तक के भाव बताने (१८३४) का उल्लेख मिलता है। भाव मुख्य रूप से कटाक्ष द्वारा बताया जाता था (३००)। नर्तक के पीछे बजाने वाले रहते थे, जो ताल को भली भाँति पकड़े रहते थे 'ताल धरे रहैं पाछे' (३००१)। कला और संगीत की दृष्टि से सूर का समाज पर्याप्त सम्पन्न था। कला और संगीत के क्षेत्र में मुगल-शासकों की देन हमारे इतिहास में अमर है।

समाज में मनोरंजन के अनेक साधन थे—खेल-कूद, नाच-गाना, शिकार आदि। बालकों के खेल थे गेंद (३६७७), खिलौना (४५८४), पतंग (२४७१), लट्टू (२५३१), चकडोर (४१६२) आदि। पतंग उड़ाने का विशेष प्रचलन था। वयस्कों के मनोरंजन थे। चौपड़ (६०), जुआ (३२५), मल्लयुद्ध (३११५) तथा शिकार (४७१२)। चौपड़ सूर के समाज का लोकप्रिय खेल था। चौपड़ एक कपड़े पर बनाया जाता था, बीच में घर और चारों ओर चौपड़ का प्रसार किया जाता था। यह खेल पासे से खेला जाता था। चाल चली जाती थी और बाजी की हार-जीत हुआ करती थी। आज यह खेल लुप्तप्राय हो गया है। सूर के समाज में जुआ भी पासे से खेला जाता था। जुआ साधारण नहीं होता था, अपितु लोग जुए में सब कुछ हार जाते थे (४६६१)। युधिष्ठिर तो जुए में राजपाट और द्रौपदी तक को हार गए थे। सूर के अप्रस्तुतों में यह खेल जिस रूप में ग्रहण किया गया है, उससे

लगता है, उनके समाज में जुआ खेलना अच्छा नहीं माना जाता था। आज तो पांसे का जुआ समाप्त हो चला है, उसका स्थान ताश के जुए ने ले लिया है। शेष सभी खेल आज के समाज में भी उसी रूप में प्रचलित है।

तत्कालीन समाज के कुछ लोकविश्वास थे, जिन्हें प्रायः समाज का सभी वर्ग मानता था। उफनता हुआ दूध (१७९८) तुरन्त उतार लेना चाहिए। यदि दूध उफन कर बह गया तो इसे लोकविश्वास में बुरा माना जाता था। बुरी वस्तुओं और व्यक्तियों का नाम प्रातः न लेने का लोकविश्वास था (१९१७)। मुख से अशुद्ध बात निकल जाने पर लोग तुलसी का पत्ता खाकर मुख-शुद्धि कर लेते थे, इसीलिए तुलसी का पत्ता मुख में लेकर बात कहना, बात की सच्चाई का द्योतक था (२३८२)। दही और दूब सिर पर रखना शुभ माना जाता था (६३८)। सिर पर फूल बरसना भी सौभाग्य का लक्षण माना जाता था (६४१)। हल्दी और दही छिड़कने की भी शुभ मान्यता थी (६४२)। इनके अतिरिक्त टोना लगना (४४) तिनका तोड़ना (९२८) और तृन गहना (४५२) भी लोक विश्वास ही थे।

इनके अतिरिक्त कुछ सामान्य बातें थीं जो तत्कालीन समाज में समान रूप से मानी जाती थीं। कन्या, परिवार का दुख मानी जाती थी (२३०)। आज भी कन्या पैदा होने पर वह खुशी नहीं होती जो पुत्र पैदा होने पर होती है। कन्या का परिवार पर बोझ माना जाता है। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान यों तो समाज में सभी को रहता है, किन्तु प्रतिष्ठित लोगों को अपनी प्रतिष्ठा का विशेष ध्यान रहता है। प्रतिष्ठा एक बार चली जाती है तो फिर वापस नहीं आती। सूर के समाज में भी यह मान्यता थी 'ज्यौं मरजादा जाइ सुपत की, बहुर्‌यौ फेरि न आई' (२९३४)। तत्कालीन समाज में किसी बात का प्रचार सूप पीटकर किया जाता था (४४३५)। आज भी प्रचार लोहे का टीना पीटकर किया जाता है, जिसे 'डुग्गी देना' कहते हैं। समाज में थाती रखने का भी प्रचलन था (१९६)। किसी से मिलने पर शिष्ट तरीके से प्रणाम किया जाता था, उसके लिए सूर के अप्रस्तुतों में जोहार (४२८७) मिलता है। अतिथि सत्कार भी उस समाज की एक विशेषता थी। समाज में अतिथि-सत्कार का एक विशिष्ट तौर-तरीका था। अतिथि के आ जाने पर लोगों को प्रसन्नता होती थी। आसन से उठकर अतिथि का सत्कार किया जाता था और आधी शय्या पर उसे आसन दिया जाता था। अतिथि को अर्घ्य, धूप और सुवास दान किया जाता था। मिष्ठान्न, घी, नमकीन आदि से अतिथि की भरपूर सेवा की जाती थी (३४४०)। आज भी अतिथि-सत्कार का प्रायः यही रूप समाज में प्रचलित है।

समाज में कुछ अशिष्ट और अवांछित तत्व भी रहते थे। चोर (४११) और ठगों (४५९०) का तो समाज में बोलबाला था। इनका विस्तृत अध्ययन नैतिक

जीवन के अन्तर्गत किया गया है। जुआरी (४६६१) और मद्यप (६०३) भी समाज में रहते थे। इनके अतिरिक्त कुछ और अवांछित तत्व समाज में थे, जिनका विस्तृत वर्णन 'नैन समय के पद' प्रसंग में हुआ है। गोपियों ने समाज के समस्त अशिष्ट लोगों का आरोप अपने नेत्रों पर कर डाला है। जैसे—अकृतज्ञ (२८७६), अविश्वासी (२८६३), कपटी (२६२३), निकम्मा (२८७०), निर्लज्ज (२६३१), नीच (२६३६), स्वार्थी (२८७५) नमकहरामी (२६०३) आदि। इनकी विस्तृत सूची कवि ने पद १८६ में भी दिया है—जिसका अध्ययन आगे किया गया है। ऐसे अवांछित तत्व आज के समाज में भी वर्तमान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के अप्रस्तुतों से सामाजिक जीवन के प्रायः सभी अंगों पर कम-बेश मात्रा में प्रकाश पड़ता है और तत्कालीन समाज का मूल ढाँचा उभर कर सामने आ जाता है।

(ख) आर्थिक जीवन

सूरदास के वर्ण्य विषय या प्रस्तुत का सम्बन्ध सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं से नहीं है। आर्थिक जीवन के उल्लेख का अभाव स्वाभाविक ही है, किन्तु अप्रस्तुत के रूप में उन्होंने आर्थिक जीवन को ग्रहण किया है, जिससे तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था पर कुछ प्रकाश पड़ता है। वाणिज्य का उल्लेख तीन स्थलों पर हुआ है। विनय के कुछ पद (२६७, ३१०) दधिदान प्रसंग के कुछ पद (१६४८, २१४२) तथा भ्रमरगीत के कुछ पद (४१३५, ४२८१, ४५८)। वाणिज्य को उस समय वनिज (२१४२), व्यापार (२१८६) कहा जाता था तथा वणिक् को व्यापारी (२१४६) और साहु (४५८३)। वाणिज्य की सामग्री को गथ (१८५), सौंज (३१०) और माल (२१४४) कहा जाता था। सामग्री, सम्पत्ति रखने का स्थान कोठी (१६४८) कहलाता था। क्रय-विक्रय की जाने वाली वस्तुओं को सौदा (३१०) और क्रय करने वाले को गाहक (४१३५) कहते थे। क्रय करने के पहले वस्तु का मोल (२१४७) होता था। बेचने के लिए सामान को घोड़ों या बैलों (२१४६) पर लाद-कर नगर (४२८१) के हाट (३१०) में ले जाया जाता था। एक स्थान पर हाथी (२१४७) पर लादने का भी उल्लेख है। लादी हुई सामग्री, गठरी (४२८१) या खेप (४५८३) कहलाती थी। व्यापार में वणिक् को पूँजी लगाना पड़ता था, इसे अमल (१४२), जमा (१४३) और मूल (१४२) कहते थे। वाणिज्य में नफा (२६७), लाहा (३१०) होता था, किन्तु कभी-कभी मूल में भी हानि (३१०) हो जाती थी। रास्ते में सामान के लूट लिए जाने का भी भय रहता था 'घाट बाट कहुँ अटक होय नहिं' (३१०)। इससे तत्कालीन सामाजिक अराजकता की ओर संकेत मिलता है। वाणिज्य में घटवारे (२१४२) भी लगते थे। घटवारा सम्भवतः उसे कहते थे, जो नौकाओं पर सामान लादकर पार उतारने के पहले चुंगी लेते थे। इससे समुद्री

व्यापार की ओर भी संकेत मिलता है। वाणिज्य में दलाल भी लगते थे, जो व्यापारियों से दलाली (३१०) किया करते थे, किन्तु दलालों को बिना बोहनी हुए कुछ भी नहीं दिया जाता था (२०८२)। 'बोहनी' पहली बिक्री को कहते हैं। इस प्रकार तत्कालीन वाणिज्य की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत होती है। वाणिज्य के इस चित्रण से सूरकालीन वणिकों की सम्पन्नता पर भी प्रकाश पड़ता है।

सेठ और साहूकार रुपया उधार देकर उस पर ब्याज लेने का भी व्यवसाय करते थे। रुपया उधार देने को ऋण (१९६) और लेने वाले को ऋणी (४०४९) कहते थे। ऋण लेने के लिए थाती (१९६) रखना पड़ता था, इसे ओल (गिरवी) (१२४८) भी कहते थे। थाती उस वस्तु को कहते थे जो ऋण लेने वाला रुपये के एवज में सेठ के यहाँ रख देता था और बाद में रुपया चुकता हो जाने पर उसे वापस ले लेता था। थाती और गिरवी रखने की प्रथा से सिद्ध होता है कि जनता अत्यन्त गरीब थी। ऋण देते समय जमानत (१९६) ली जाती थी, क्योंकि कभी-कभी ऋणी मुकर जाता था (१९६)। मुकर जाने पर ऋणी को बांध लिया जाता था। यह जमानत लिखित होती थी और उस पर कुछ सम्भ्रांत व्यक्ति साक्षी होते थे। इस लिखित प्रपत्र को कागद (३६९) और रुक्का (६१६) भी कहते थे। ऋण देने से ब्याज (४०४९) का लाभ होता था। ब्याज सहित मूलधन वापस कर देने पर लोग उरिन (४०४९) हो जाते थे। ऋण के लेन-देन का विस्तृत वर्णन इस प्रकार हुआ है—

> इक कौं आनि ठेलत पांच।
> करुनामय कित जाउँ कृपानिधि, बहुत नचायौ नाच।
> सबै कूर मोसौं ऋन चाहत, कहौ कहा तिन दीजै।
> बिना दियैं दुख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै।
> थाती प्रान तुम्हारी मो पै, जनमत ही जो दीन्ही।
> सो मैं बांटि दई पांचनि कौं, देह जमानति लीन्हीं।
> मन राखैं तुम्हरे चरननि पै, नित-नित जो दुख पावैं।
> मुकरि जाइ, कै दीन बचन सुनि, जमपुर बांधि पठावैं।
> लेखौ करत लाख ही निकसत को गनि सकत अपार।
> हीरा जनम दियौ प्रभु हमकौं, दीन्हीं बात सम्हार।
> ... ... पद १९६।

आर्थिक जीवन में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि भारत एक कृषि-प्रधान देश है। सूर के समय में भी कृषि मुख्य आजीविका थी। सूर के अप्रस्तुतों से तत्कालीन कृषि-जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन कृषि-प्रबन्ध पर आगे राजनैतिक-जीवन में विचार किया गया है। कृषि का मुख्य आधार जमीन, जायदाद है। यह जायदाद सूर के समय में दो प्रकार की हुआ करती थी—सीर (७७९)

और मिलकियत (३६५२)। इन पर किसान का पूर्ण अधिकार होता था। बंजर भूमि (१८?) या ऊसर (४६६२) में कृषि नहीं होती थी। किसान को खेतिहर (१०७) भी कहते थे और किसानों के मुखिया को महतो (१४८) कहा जाता था। कृषि के मुख्य आधार बैल (४६०) थे, जिनसे जोतने सींचने और मांड़ने का काम लिया जाता था। बैल हांकने वाले को हांकनहारा (१८५) कहा जाता था। बलों को जुए (२३१) में नांधा जाता था और हाकने के यन्त्र को सुतारी पैनी (१६६) कहते थे। यह एक लकड़ी में नाखून के बराबर निकली हुई कील होती थी, जिससे बैल को तेज चलने के लिए चोंक दिया जाता था। खेतों की मेड़बन्दी भली-भांति की जाती थी (३०८८), जिससे डाली हुई खाद वर्षा में बहने न पावे। कृषि के अन्य यन्त्रों में कुदाल (४६५६) का भी उल्लेख हुआ है। सूरकालीन ब्रजप्रदेश की मुख्य उपज थी—धान (४२१८), क्योंकि सूर के अप्रस्तुतों में इसका बार-बार उल्लेख हुआ है। दूसरी मुख्य फसल थी ईख (५१)। ईख से गुड़ बनाने का भी प्रचलन था गुड-निर्माण प्रक्रिया का वर्णन पद ६३ में हुआ है। चीनी का उल्लेख नहीं मिलता, अन्य पैदावारों में जौ (४७४०), ज्वार (३२०३), राई (४५३७), तिल (२ ६५) अरसी (४१२३) उल्लेखनीय हैं। मसालों और तरकारियों में धनिया (४२२२) लहसुन (३७७०), हल्दी (३८६६) भांटा (३२०), लौकी (४०६?), मूली (४२८२), प्याज (३६६०), सेम (४४४४), ककड़ी (४६०६), खीरा (४५?८), कुम्हड़ा (४५२०) की उपज होती थी। नील की भी खेती की जाती थी (३५८), फसल को काटकर खलिहान (१४२) में रखा जाता था, बाद में मड़ाई की जाती थी। फसल कट जाने के बाद खेती में गिरी हुई बाल की बिनाई की जाती थी, इसके लिए प्रचलित शब्द थे सिलवारना (३१ ७) और नरवाई (४३५८)। सिंचाई के साधनों मे रहंट का बार-बार उल्लेख हुआ है (०६ , ४६३५)। पद ४१३७ में 'जैसे करनि किसान बापुरो नव-नव बाहैं देत' पक्ति में 'नव नव बाहैं देत' का अर्थ कुछ विद्वानों ने 'बार-बार पुर नवाना' किया है। यदि यह अर्थ मान लिया जाय तो सिंचाई के दूसरे साधन 'पुर' पर भी प्रकाश पड़ता है, किन्तु मेरे विचार से इसका अर्थ है 'जल को रोकने के लिए बार बार मिट्टी चढ़ाना'। अतः तत्कालीन ब्रज प्रदेश में सिंचाई का एक ही साधन रहंट प्रचलित था। किसानों पर उनकी जोत के अनुसार लगान (१४२) तथा अन्य कर जकात (१४२) लगते थे। ग्राम-प्रबन्ध के अधिकारी गण किसानों को तरह-तरह से परेशान करते थे। कभी-कभी जाली रसीद देकर किसानों को ठगा जाता था। लगान इतना अधिक था कि किसान आसानी से दे नहीं पाता था। लगान न दे पाने पर कुड़की (१४३) करके घर-

गृहस्थी कुड़क कर ली जाती थी। अधिकारियों का व्यवहार भी किसानों के साथ अच्छा नहीं था। घूस लेने की भी प्रथा प्रचलित थी। लगान न दे पाने पर अधिकारी किसानों को पकड़ ले जाते थे, किन्तु घूस दे देने पर वे छूट भी जाते थे। जमानत पर छोड़ने का प्रचलन था, किन्तु गरीब किसानों की जमानत लेने को कोई जल्दी तैयार नहीं होता था। किसानों की दशा बड़ी दयनीय थी, यहाँ तक कि वे मांड़ भी पी जाते थे (४२२२)। किसानों की निर्धनता के कारण लगान न दे पाने की असमर्थता तथा अधिकारियों के अत्याचार का मार्मिक वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों के अप्रस्तुतों में हुआ है—

... ...

अधिकारी जम लेखा मांगैं, तातैं हौं आधीनौ।
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दियैं मैं छूटौं।
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ।
अहंकार पटवारी कपटी झूठी लिखत बही।
लागैं धरम बतावै अधरम, बाकी सबै रही।
सोई करौ जु बसतैं रहियै, अपनौ धरियै नाउँ।
अपने नाम की बैरख बांधौ, सुबस बसौं इहिं गाउँ।—१८५

इससे स्पष्ट है कि कभी-कभी अधिकारियों से परेशान होकर किसान अपना गाँव तक छोड़ देता था। निम्नलिखित पंक्तियों में खेती तथा खेती से सम्बद्ध प्रायः सभी सामग्रियों का उल्लेख मिल जाता है—

प्रभु जू, यौं कीन्ही हम खेती।
बंजर भूमि गाउं हर जोते, अरु जेती की तेती।
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौ।
अति कुबुद्धि मन हांकनहारे, माया जूआ दीन्हौ।
इन्द्रिय मूल किसान महातृन अग्रज बीज बई।
जन्म-जन्म की विषय बासना उपजत लता नई।
... ...

—१८५

कृषि के अतिरिक्त समाज में आजीविका के लिए अनेक अन्य छोटे-मोटे व्यवसाय भी प्रचलित थे। इन व्यवसायों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—नैतिक और अनैतिक। नैतिक व्यवसाय भी दो प्रकार के थे—जातीय और सामान्य। जातिगत व्यवसायों में अनेक ऐसे व्यवसाय थे, जिनका सम्बन्ध विशिष्ट

जाति या वर्ग से था। अन्य वर्ग या जाति उस व्यवसाय को अपनाना गर्हित समझते थे। ये जातिगत व्यवसाय हैं—अहीर—(१४२२-१६३१)। इनका व्यवसाय पशुपालन और दूध-दही का व्यापार करना था। गोपियाँ दूध-दही लेकर बाहर गाँवों में भी बेचने जाया करती थीं। इससे इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि ब्रज प्रदेश में गोपालन से दूध-दही की अधिकता थी। निजी उपयोग से बचे हुए दूध-दही को बेचकर धनार्जन किया जाता था। दूसरी जाति है केवट या धीवर—(५९०)। इन्हें खेवट (१८४) और मल्लाह (२९१४) भी कहते थे। इनका मुख्य व्यवसाय नौका चालन (६८) था। ये लोगों को नौका से नदी पार उतारते थे और उनसे उतराई (४६१२) के रूप में धन प्राप्त करते थे। लंगर (२४१५) और बेड़ा (४६१२) से पानी के जहाजों की ओर भी संकेत मिलता है तीसरी जाति है सुनार (१९६३)। इनका मुख्य व्यवसाय सोने, चांदी के आभूषण बनाना था। सोने की कलई (३२०४) भी ये करते थे। चौथी जाति है लुहार (४७२६)। ये लोहे का काम करते थे। लोहे को गलाकर उससे तरह-तरह के औजार बनाकर बेचते थे और धनार्जन करते थे। पाँचवीं जाति है बढ़ई (१३२)। इनका मुख्य व्यवसाय लकड़ी के सामान बनाना था। इनके मुख्य औजार थे कुठार (६८) और कुल्हाड़ी (१५२)। छठीं जाति है तेली (१०२)। इनका व्यवसाय था तिलों से तेल निकालना तेल निकाल लेने पर जो खरी (२९०४) बचती थी, उसका भी विक्रय होता था। सातवीं जाति है, धोबी (४५७४)। ये मुख्य रूप से कपड़ा धोने का काम करते थे। एक स्थान पर पटककर कपड़ा धोने का भी उल्लेख हुआ है (३६५६), आठवीं जाति है, कुम्हार (४३९९)। इनका मुख्य काम मिट्टी के बर्तन बनाना था। बर्तन बनाने का उपादान था चाक (२४८३)। ये बर्तनों पर चित्र भी बना लेते थे (४३९९)। पद ४३९९ में घड़ा पकाने की पूरी विधि का वर्णन है। घड़ा आवें में पकाया जाता है। प्रायः आंवा जेठ मास के अन्त में लगाया जाता है, उस समय वर्षा का भी भय रहता है, अतः कुम्हार आवां के ऊपर अटा छा देता है, जिससे वर्षा से घड़ा गलने न पावै। नवीं जाति है दरजी (४०१९)। इनका कार्य कपड़ा सिलना था। कपड़ा काटने का कार्य कैंची (९०) से किया जाता था। इन जातियों के अतिरिक्त और बहुत सी छोटी-छोटी व्यावसायिक जातियाँ थीं, जैसे रंगरेज (३१०३)। इनका कार्य वस्त्रों की रंगाई करना था। माली (४५३५)—इनका कार्य बगीचे में फूलादि लगाना था। फूलों से हार बनाकर बेचते थे। गांधी या गांधिन (१९९३)—इनका व्यवसाय नाना प्रकार के इत्र तथा सुगन्धित पदार्थ बेचना था। चोलिन (१९९३)—इनका मुख्य कार्य पान बेचने का था। बंदीजन, चारण या भांट (३८४५)—इनका मुख्य कार्य राज-दरबारों में यशःगान था, जिससे

इन्हें वृत्ति मिलती थी। दाई (२३४१)—इनका कार्य बड़े घरों में बच्चों का लालन-पालन करना था। गूजर-गूजरिन (२२१८)—यह घूमने-फिरने वाली जाति थी। पशुपालन और घूम-घूमकर घी-दूध बेचना इनका कार्य था। गणिका (३५२)—इनका व्यवसाय पुरुषों की वासना-तृप्ति करके धनार्जन करना था। ये अपना शरीर बेचकर आजीविका चलाती थी। पद ४४ मे गणिका के कार्य-व्यापारों का विस्तृत वर्णन हुआ है। नट, नटी, नटिनी (२२७८, ४२, ४२५७)—यह भी घूमने-फिरने वाली जाति थी। इनका व्यवसाय अपनी कला दिखाकर लोगों को प्रसन्न करना था। इनकी वेश-भूषा और नृत्य-ताल का सुन्दर चित्रण निम्नलिखित पद में हुआ है—

> अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
> काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
> महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा-सब्द रसाल।
> भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल।
> तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
> माया को कटि फेंटा बाध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल।
> कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
> सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल॥—पद १५३

बहेलिया (२६९७)—इन्हें बधिक (३२१) और पारधी (९७) भी कहते थे। इस जाति का मुख्य व्यवसाय पक्षियों को फँसाकर बेचना था। पक्षी फँसाने का इनका एक विशिष्ट ढंग था। बहेलिया कांपा पर टाटी खड़ी कर देता था, लासा लगा देता था और अन्दर अनाज के कण बिखेर देता था। पक्षी ज्यों ही दाना चुनने आता था और पिंजड़े में बन्द कर देता था (३८९०)। निम्नलिखित पद में पक्षी पकड़ने की पूरी विधि का चित्रण हुआ है—

> प्रीति करि दीन्हीं गरैं छुरी।
> जैसे बधिक चुगाइ कपट-कन, पाछैं करत बुरी।
> मुरली मधुर चेप कांपा करि, मोरचन्द्र फंदवारि।
> बक बिलोकनि लगी, लोभ बस, सकी न पंख पसारि।
> तरफत छांड़ि गए मधुबन कौं, बहुरि न कीन्हीं सार।
> सूरदास प्रभु संग कलपतरु, उलटि न बैठी डार।—पद ३८०३

पक्षियों को पकड़ कर ये लोग पालते भी थे और खाते भी थे। बहेलिया जाति मृग पकड़ने का भी कार्य करती थी। ये वंशी बजाते थे, मृग वंशी की धुनि में मस्त हो जाता था, बधिक निकट पहुँचकर मृग को मार गिराता था (३६०८) मृग का शिकार करते समय बहेलिया माथे पर पत्ता बांध लेता था (४६४३) जिससे

मृग को उसका सिर न दिखाई दे। मृग का शिकार धनुष-बाण द्वारा भी किया जाता था (४०६६)। मछुआ (२०७२)—इनका कार्य मछली पकड़ना और बेचना था। मछली पकड़ने का कार्य बंशी या कंटिया (६७६) द्वारा होता था। बांस के डंडे में रस्सी लगाकर, रस्सी में कंटिया के साथ चारा (३२२८) बांध दिया जाता था। मछली चारा खाने के लोभ में (१८६) कंटिया में फँस जाती थी। रस्सी बाहर खींच ली जाती थी, जिसके साथ मछली भी बाहर आ जाती थी। ये लोग मछली खाते भी थे। बनजारा (४२२२)—यह घूम-फिरकर सामान बेचने वाली जाति थी। डोम (१८७६)—यह नीच जाति थी और इनका व्यवसाय स्वच्छता तथा सफाई करना था। कसाई (२१२६)—इनका व्यवसाय गाय, बकरी आदि काटकर कच्चा चमड़ा निकालना था। इस प्रकार ये अनेक जातियाँ थीं जो अपने जातीय व्यवसाय द्वारा आजीविका चलाती थीं। इनमें से बढ़ई, कुम्हार, रंगरेज आदि जातीय व्यवसायियों से तत्कालीन शिल्प पर भी प्रकाश पड़ता है।

सामान्य व्यवसायों में उल्लेखनीय हैं—वैद्यक (४४८२)। उस समय के प्रमुख रोग थे ज्वर (३८७५), कफ (३२७), पित्तज्वर (४४०६), सन्निपात (४४१), त्रिदोष (३९६३), राजरोग (४३४३), तथा पान्डुरोग (८५८७)। इनमें ज्वर का प्रचलन सर्वाधिक था। सन्निपात और त्रिदोष में मनुष्य विक्षिप्त हो जाता है, इधर-उधर की बड़बड़ाने लगता है। ऐसे रोगी के बचने की बहुत कम उम्मीद रहती है। राजरोग आधुनिक तपेदिक है। यह रोगों का सरदार है। पान्डुरोग में खून सूख जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है। सूर के समाज में भारतीय वैद्यक का ही प्रचलन था। वैद्य नाड़ी (४२६७) देखकर दवा करते थे। वैद्यक से वैद्य धनार्जन करते थे। गारुड़ी (९४५)—यह भी एक व्यवसाय ही था। सर्पदंश को मंत्र और जड़ी-बूटियों के बल पर उतारने वालों को गारुड़ी कहते थे। सर्पदंश पर विष की लहर शरीर भर में फैल जाती है। मंत्र के बल पर फैले हुए विष को गारुड़ी उतार देता था (१८६५)। अध्यापक—(४७८८) तत्कालीन समाज में अध्यापन भी एक व्यवसाय था। कुछ लोग चटसार (३१२२) में पढ़ाकर वृत्ति प्राप्त करते थे। मल्ल—(३११५)—इनका कार्य लोगों को कुश्ती के दांव-पेंच सिखाना था। महावत (४६५५)—ये राजदरबारों में और जमींदारों के यहाँ हाथियों का चालन और देखरेख करते थे। इनके अतिरिक्त दास (१५७१), दासी (४०६) अपने स्वामियों की सेवा करके अपना भरण-पोषण करते थे। राज दरबार के अन्य अनेक कर्मचारी भी इसी प्रकार वृत्ति प्राप्त करके जीविकोपार्जन करते थे।

अनैतिक व्यवसायों में चोरी और ठगी मुख्य थे। चोर (४०) भरे घर में घुसकर सामान उठा ले जाते थे। चोर और चोरी का वर्णन सूर के अप्रस्तुतों में

अनेक बार हुआ है, जिससे स्पष्ट होता है कि यह प्रथा काफी व्यापक थी । ठग (१८७) या बटपार (२६६६) का भी समाज में काफी आतंक था । ठगी अपने ढग की एक प्रक्रिया थी । मध्यकाल में लोग प्रायः पैदल यात्रा करते थे । ठगों के पास भेदी रहते थे जो यात्रियों के आने की सूचना ठगों को देते थे । मार्ग में आगे सुनसान स्थान पर बैठकर ठग यात्रियों की प्रतीक्षा करते थे । ठग यात्रियों को विष-लाड्डू खिलाकर बेहोश कर देते थे और उनका सारा सामान लूट लिया करते थे (२९०८) समाज में कुछ भिक्षुक (२१७) भी होते थे जो भिक्षा मांगकर जीवनयापन करते थे । इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में स्त्रियों में भी कुछ अनैतिक व्यवसाय प्रचलित थे । बिटनारी (३९९३) पर पुरुषों से सम्बन्ध बनाकर कमाई करती थी । इसी प्रकार गणिका (४४) भी पर पुरुषों की वासनातृप्ति करके धनार्जन करती थी । इस तरह समाज में प्रचलित प्रायः सभी व्यवसायों और जीविका को सूर ने अप्रस्तुत सामग्री बनाया है ।

आर्थिक जीवन में नग, धातु, सिक्कों का विशेष महत्व है, क्योंकि इन्हीं के लिए सारे व्यवसायों का जाल पसारा जाता है । सूर अप्रस्तुतों द्वारा इन पर भी कुछ प्रकाश पडता है । सूर के समाज में अनेक प्रकार के नग प्रचलित थे । नगों और रत्नों को खान से निकाला जाता था (१६५६) । पारस (२१२) वह पत्थर होता था, जिसके स्पर्शमात्र से लोहा सोना हो जाता था । हीरा (१८३१) सबसे बहुमूल्य रत्न था । हीरे का रंग सफेद भी होता है और लाल भी, किन्तु सफेद हीरा ही विशेष प्रसिद्ध है । इसमें बहुत अधिक चमक होती है । भारत का प्रसिद्ध हीरा कोहेनूर, जो शाहजहां के सिंहासन मे लगा था, अंग्रेज उठा ले गये । मोती (७५५) का रंग बिल्कुल सफेद होता है । सच्चा मोती समुद्र से निकाला जाता है और इसका मूल्य आकार पर निर्भर करता है । कवि प्रसिद्धि है कि सीप में स्वाती का जल पड़ने पर मोती बन जाता है (७११) । दूसरी कवि प्रसिद्धि है कि हंस मोती चुनता है (३८८२) । मरकतमणि (१२०६) नीले रंग का होता है । नीलमणि (१७९८ भी नीले रंग का नग है प्रवाल या मूंगा १७३६) लाल रंग का होता है । यह बच्चों को पहनाया जाता है। इसमें चमक नहीं होती । पौराणिक मणियों मे 'चिन्तामणि' (४ ०) का उल्लेख मिलता है, जिसके लिए प्रसिद्ध है कि सोचते ही अभीप्सित वस्तु प्रदान कर देती है । इन नगों को पहचानने के लिए विशेष जानकारी की आवश्यकता होती है । सूर के समय में नगों को कथरी में छिपाकर रखने की परम्परा थी (४३-२) । धातुओं में स्वर्ण (११६), रजत (२७३०), ताम्र (२७८९) पीतल (२७६५) और लोहा (४९२०) का उल्लेख मिलता है । बारहबानी कनक (१८००) पूर्ण शुद्ध होता था । स्वर्ण शुद्धीकरण प्रक्रिया का भी उल्लेख हुआ है । रसायनी-सोने को घरिया या शीशे में रखकर धीमी आंच पर तपाकर शुद्ध करता था

(३९१४, ४०२२)। स्वर्ण भस्म भी इसी प्रक्रिया से बनाया जाता है। सोने की परख के लिए कसौटी (४४४) का भी उल्लेख हुआ है। सिक्कों में रुप (१४२) दाम (४६५४) कौड़ी (२.६३) और दमरी (१८६) का उल्लेख मिलता है। घिसे-पिटे सिक्के को खोटा दाम (६४) कहते थे। चाम के दाम (४-५७) का भी उल्लेख हुआ है जो सम्भवतः एक दिन के शासन में भिश्ती द्वारा चलाए हुए चमड़े के सिक्के के लिए आया है। इससे इतिहास की ओर संकेत हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के अप्रस्तुतों में तत्कालीन आर्थिक जीवन के विविध पक्षों का चित्रण मिलता है, जिनसे उनके समय के आर्थिक जीवन का एक अच्छा खासा स्वरूप उभर कर सामने आता है।

(ग राजनैतिक जीवन

सूर के अप्रस्तुतों के माध्यम से तत्कालीन राजनैतिक जीवन पर भी प्रकाश पडता है। राज्य-दरबार, दरबार के कर्मचारी और रीति-रिवाज, शासन-प्रबन्ध, युद्ध, अस्त्र-शस्त्र, प्रजा की स्थिति, राजा और प्रजा का सम्बन्ध आदि तथ्य उभर कर सामने आए हैं। सूर के अप्रस्तुतों में राजा के लिए ठाकुर (४५२), सरकार (४५२७), साहिब (६४) और सुलतान (१४५) आदि शब्द भी मिलते है। सम्भवतः सुलतान मुगलशासकों का सूचक है, सरकार प्रशासकीय अधिकारियों का, राजा, हिन्दू राजाओं का और ठाकुर जमीदारों का सूचक है। सुलतान की स्थिति राजाओं के ऊपर होती थी। राजाओं की अनेक पत्नियाँ होती थीं, जिन्हें रानी (४०६) कहा जाता था, किन्तु इन सब में एक मुख्य होती थी, जिसे पटरानी (४४५९) कहते थे। रानी और पटरानी से राजाओं में बहु विवाह प्रथा सिद्ध है। राजा का जिन लोगों पर शासन होता था, वही प्रजा (४६०९) कहलाती थी। सूर के समाज में राजधर्म था 'राजधरम तौ यहै सूर जो प्रजा न जाहिं सताए' (४६०९) राजा की सफलता की कसौटी प्रजा की समृद्धि थी। राजा के निवास-नगर को राजधानी (४०८६) कहा जाता था। राजधानी के भीतर राजा गढ़ या किला (३३२०) बनाकर रहता था। किले सुरक्षा की दृष्टि से बनाए जाते थे। किले के भीतर राजा का महल (२०६) होता था, जिसमे वह निवास करता था। राजा दरबार या सभा (१२७१, अथवा समिति (३९३) करते थे, जिसमें अनेक सभासद (३९९३) होते थे। कभी-कभी यह सभा वितान (३५-०) के अन्दर होती थी। राजा का जितनी भूमि में शासन होता था, उसे देश (१४१) कहते थे। राजसभा में राजा, सिंहासन (१४१) पर बैठता था। सिंहासन राजा की समृद्धि का सूचक होता था, अतः बहुत मूल्यवान् सिंहासन बनाए जाते थे। राजा के तथा राजमहल में अनेक कर्मचारी होते थे, जैसे—द्वारपाल (१४१), प्रतिहारी (४०६), पौरिया (२८४५), छड़ीदार (४०)। ये सेवक राजमहल या राजसभा के द्वार पर

खड़े होकर वहाँ की रक्षा करते थे। इनकी आज्ञा के बिना कोई अन्दर प्रवेश नहीं पा सकता था। राजभवनों में कुछ व्यक्तिगत सेवक दास (१५७१), गुलाम (२८५७), चेरे (२८५६) और दासी (४०६) भी रहते थे। दासी के ही समान लौंडी (४२७०) भी होती थी जो मुस्लिम संस्कृति की देन है। दास, दासियों के अतिरिक्त खवास, मोदी (१४१) भी राजा का सेवक होता था। राजवैभव की अन्य सामग्रियों में छत्र (१४४), चवर (१७१), रथ (४०६), नौबत (१४१), निसान (४६५) तथा बन्दीजन (२४०३), सूत (१६८८), मागध (१६६८), नकीब (१४१) आदि राजा का यश और गुण गाने वालों की गणना की जा सकती है। राजाओं के यहाँ परस्पर व्यवहार के लिए दूत (२२०६) रखे जाते थे। राज्य या शासन की गोपनीयता का दारोमदार इन्हीं पर होता था। राजदूतों की प्रथा आज भी कायम है। इस प्रकार राज दरबार विभिन्न कर्मचारियों और वैभवों से भरपूर समृद्ध रहता था। नौकर-चाकर की गलतियों पर उन्हें कोड़े (३९८८) लगाए जाते थे। कभी-कभी राजा, साँटी (२०७) भी लगाता था। बिना अपराध के कभी-कभी सेवकों को दंडित कर दिया जाता था—'बिनु अपराध दास कौं मारै ठाकुर कौं सब सोहै' (४४)। ऐसे दण्ड की कहीं कोई फरियाद नहीं हो सकती थी।

शासन-व्यवस्था अनेक कर्मचारी मिलकर सम्हालते थे, जिनमें मन्त्री (३३९३) या वजीर (४४५९) का स्थान सर्वोपरि था। मन्त्री राजा का सलाहकार भी होता था। यह पद बड़े विद्वान् और सूझ-बूझ वाले व्यक्ति को दिया जाता था। हमारे इतिहास में चाणक्य और राक्षस जैसे प्रतिभाशाली मन्त्री हो चुके हैं, जो आज भी अमर हैं। राजा की नीति की निर्धारण मन्त्री पर ही निर्भर करता है। मन्त्रित्व का पद हमारे यहाँ प्रायः ब्राह्मणों को मिलता है, क्योंकि विद्वत्ता उन्हीं का क्षेत्र था। मन्त्री के बाद फौजपति (३९२२) का स्थान था। अन्य कर्मचारियों में कोतवाल (६४)—नगर की शान्ति का रक्षक होता था। काजी (३७६५), मुस्लिम धर्म के अनुसार न्यायकर्ता न्यायाधीश होता था, अन्य कर्मचारियों में अमल (६४) और अहदी (६४) भी उल्लेखनीय हैं। शासन में गुप्तचरों (३३९३) का महत्वपूर्ण योगदान था। गुप्तचर शासन की गुप्त बातों की सूचना अधिकारियों को दिया करते थे।

सूर के अप्रस्तुतों से तत्कालीन ग्राम-प्रबन्ध का पूरा चित्र हमारे सामने आता है। यद्यपि इन अप्रस्तुतों की संख्या सीमित है, किन्तु पूरे ग्राम-प्रबन्ध का चित्रण इनके द्वारा हो गया है। ये अप्रस्तुत विनय के ही दो-तीन पदों में मिलते हैं। गाँव के विशिष्ट या सम्माननीय लोगों को महतो (१४२) कहा जाता था। गाँव के विश्वसनीय व्यक्ति को सिकदार (१४७) भी कहा जाता था, किन्तु वस्तुतः

सिकदार पूरे परगने का मालिक हुआ करता था। प्रबन्ध की दृष्टि से राज्य अनेक परगनों में बँटा था। जमीन की नाप-जोख और हिसाब-किताब का काम पटवारी (१८५) करता था। जमीन की नाप-जोख के लिए प्रचलित तत्कालीन शब्द था मसाहत (१४२)। कर तथा लगान का हिसाब लिखहार (१४२) करता था। अन्य कर्मचारियों में आय-व्यय परीक्षक मुहासिब (१४२) तथा बाहर का काम करने वाला अदालती कर्मचारी अमीन (६४) उल्लेखनीय हैं। लिखने के लिए मोहरिल (१४३) होते थे। इनके अतिरिक्त अमल (६४), अधिकारी (१८५) और मुस्तौफी (१४३) भी हुआ करते थे। लगान और कर के लिए तत्कालीन प्रचलित शब्द थे पोता (१४२), अहुतिया जकात (१४२)। एकत्र किये गए धन के लिए प्रशासनकीय शब्द था मुजमिल (१४२)। हिसाब-किताब की कापी को वासिज (१४२), अवारजा (१४२), बही (१८५) कहते थे। लगान-वसूली पर रसीद दी जाती थी, जिसे फरद (१४२) अथवा रुक्का (६१६) कहते थे। पूरा लगान दे पाने पर बाकी (१४३) अथवा जिम्मे (१४३) भी रह जाता था। बाकी लगान के लिए बट्टा (१४२ काटने का भी प्रचलन था। इन अधिकारियों का एक परगने से दूसरे परगने में तबादला भी होता था, जिसके लिए तत्कालीन शब्द था तगीरी (१४)। लगान पूरा दे देने के लिए साफ (१४३) शब्द प्रचलित था और रुपया मिलने के लिए बरामद (१४३)। लगान न दे पाने पर जायदाद, पशु, सामान आदि की कुड़की भी होती थी, जिसके लिए प्रशासकीय शब्द था दस्तक (१४३)। प्रशासन और ग्राम-प्रबन्ध की शब्दावली अरबी-फारसी की है। इससे स्पष्ट है कि सूर के समय तक मुगलों का शासन सुदृढ़ हो चुका था और उनकी भाषा फारसी का प्रभाव हमारे समाज पर बहुत कुछ पड़ चुका था। कृषि-प्रबन्ध की हिन्दी शब्दावली का लोप हो चुका था और उसका स्थान फारसी की शब्दावली ने ले लिया था। फारसी शब्दावली का इतना प्रचार हो चुका था, कि किसान भी उससे परिचित होने लगे थे। इस फारसी शब्दावली से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि उस समय प्रशासन की भाषा अरबी-फारसी थी।

सूर के अप्रस्तुतों से तत्कालीन युद्ध और अस्त्र-शस्त्र पर भी प्रकाश पड़ता है। राजाओं के पास अपनी सेना (१४४) होती थी, जिसका प्रधान फौजपति (३६२२) होता था। युद्ध के समय सेना प्रयाण करती थी तो आकाश धूल (४४०३ से भर जाता था, इससे स्पष्ट है कि सेना की संख्या पर्याप्त होती थी। युद्ध क्षेत्र में सेना को व्यूहाकार (२७४३) खड़ी करने का भी प्रचलन था। सेना के आगे ध्वजा (१४८५) फहराती चलती थी। मुगल सेना के झण्डे को सहिया फरहरा (३६७३) कहते थे। युद्ध प्रयाण के समय के सैनिकों को उत्साहित करने के लिए ओजस्वी वाद्य बजाए जाते थे। उस समय के ये वाद्य थे—निसान (२४६५),

मारू (६२१' और रनतूरा (३०७३) । सैनिक वीर और उत्साही हुआ करते थे । घायल (४२८०) हो जाने पर भी मैदान नहीं छोड़ते थे, क्योंकि युद्धभूमि छोड़ने पर उनकी गणना कायरों (४५७८) में होती थी और कायर कहाना समाज की दृष्टि से हेय था। युद्ध भूमि में जाने से पहले सुरक्षा के लिए लौह-वस्त्र कवच (३०७९) और सन्नाह (२७४७) पहनने का प्रचलन था। हारे हुए विरोधी सैनिकों को पकड़कर बेड़ी (३८०६) पहना दी जाती थी। तत्कालीन अस्त्र-शस्त्रों में मुख्य थे—बन्दूख (२९ ४), गोला (४८८५), बारूद (४८८५), पलीता (४८८५), धनुष-बाण (३०७), तरकस (६४, ढाल (०६७), तलवार (१४८५), कांती (४१०८, भाला (२९३४), सैल्हा (३९४६), तथा नेक्षा (३०७३) । युद्ध और इन अस्त्र-शस्त्रों से स्पष्ट है कि राजाओं के बीच आए दिन युद्ध हुआ करते थे। छोटे-मोटे राजा छोटी-छोटी बातों को लेकर उलझ जाते थे और युद्ध प्रारम्भ हो जाता था। इन युद्धों का परिणाम यह होता था कि प्रजा पिसती थी, क्योंकि युद्धों के व्यय का भार अन्ततोगत्वा अतिरिक्त कर के रूप में प्रजा के ही सिर आता था। दो राजाओं के युद्धों के बीच प्रजा की दुर्दशा होती थी (४६५६)। तत्कालीन समाज में उस समय दोहरा शासन था। एक शासन अकबर और उसके अधिकारियों का था और दूसरा राजाओं और जमींदारों का। ऐसे दोहरे शासन में प्रजा को दोनों ओर से चूसा जाता है। इस दुराज (४५१०) में प्रजा की हालत क्यों न चिन्त्य होती? इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर के समय में मुगलों का शासन दृढ़ हो चुका था, किन्तु राजनीति के क्षेत्र में पर्याप्त अराजकता थी। शासन से प्रजा प्रसन्न नहीं, अपितु क्षुब्ध थी, क्योंकि प्रजा के साथ तरह-तरह का दुर्व्यवहार किया जाता था। शासन के अधिकारी और कर्मचारी भी ईमानदार नहीं थे। वे भी स्वार्थ साधन के लिए अनेक प्रकार से प्रजा को कष्ट दिया करते थे, सताते थे। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार इसीलिए समाज में भी काफी अराजकता थी। चोरी और ठगी धड़ल्ले के साथ दिन-दहाड़े हुआ करती थी। इन पर शासन का कोई नियन्त्रण नहीं था। जमीदार लोग प्रजा पर कितना भी अत्याचार क्यों न करें, लेकिन उसकी कोई सुनवाई मुगल दरबार में नहीं होती थी।

(घ) धार्मिक जीवन

सूर के अप्रस्तुत प्रयोग से तत्कालीन समाज के धर्म और दर्शन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। भगवान् के विराट् रूप का वर्णन सूर ने किया है (३७१)। सूर सगुण के भक्त थे, अतः निर्गुणोपसना के मार्ग ज्ञान और कर्म को कठिन बताते हुये 'भ्रमरगीत' में इसकी धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं। पूरे ब्रज में कृष्ण को छोड़कर अन्य देव को मानने वाले को ब्रज-समाज में व्यभिचारी ४५४६) की

उपाधि से विभूषित किया जाता था। सूर की कला का चरम विकास इस बात में परिलक्षित होता है कि सूरसागर की कृष्ण कथा ही अप्रस्तुत बन करआई है। कृष्ण (३६२६), हरि-हलधर की जोटी (३२६६), माखन के लिए कृष्ण का हठ (२६५८), कृष्ण की वेशभूषा (३६३३), कृष्ण की केलि (४३७८), माखन-चोरी (२५५५), राधा (३०६२), गोवर्धन-धारण (४४०८), अक्रूर (४२०२) आदि अप्रस्तुत बनकर आए हैं। इनके अतिरिक्त कृष्ण ने जिन राक्षसों का वध किया वे कंस (३६३८), कालिय (४२३८), अघासुर (४२३८), तृणावर्त (४२३८), बकासुर (४१०८), और बकी (४२३८) भी अप्रस्तुत रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि राधा-कृष्ण और कृष्ण की सारी लीलाएँ ब्रज प्रदेश के कण-कण में समाई हुई थी, जन-जन के मानस के निभृत अन्तस्तल में प्रविष्ट थी, अतः कृष्ण के प्रति ब्रजवासियों में अगाध आस्था क्यों न होती ? ऐसे कृष्ण को ब्रजवासी परमेश्वर (१७६८) मानते थे। ब्रह्म के रूप में वे घट-घट में व्याप्त हैं। उन्हीं से सारा संसार उद्भूत होकर उन्हीं में समा जाता है, जल के बुदबुदे की तरह (४६-२०)। वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार कृष्ण की रासलीला भी आध्यात्मिक है। गोपियाँ परब्रह्म की आनन्द प्रसारिणी शक्ति हैं तथा इसकी पराकाष्ठा राधा है। कृष्ण के अगाध प्रेम के कारण मुक्ति मार्ग के तीनों साधनों—ज्ञान, योग और भक्ति में, तत्कालीन समाज में भक्ति को सर्वोपरि माना जाता था।

सूर के समाज में कृष्ण का स्थान तो सर्वोपरि था ही, किन्तु कृष्ण को मानते हुए अन्य अनेक देवी-देवताओं की पूजा का भी प्रचलन था। इन देवताओं में मुख्य हैं—शंकर (७८७), ब्रह्मा, १८६५) इन्द्र (६५)—(इन्द्र के स्थान पर कृष्ण ने गोवर्धन पूजा का प्रचलन किया), वरुण (४०५), बराह (७८२), शेष (६६), कामदेव (३०७)। देवियों में मुख्य थीं—पार्वती (१३२४), इन्द्राणी (१३२४), सरस्वती (७७६), लक्ष्मी (६५०), दुर्गा (४२३३), रति (३७३२), उर्वशी (१३२४) आदि। इनके अतिरिक्त कामधेनु (१०६७), ऐरावत (३३६५) और उच्चैःश्रवा (४७८४) भी पूज्य थे। पूजा के अवसर पर आरती का भी विधान था। आरती का विस्तृत वर्णन पद ३७१ में हुआ है। तत्कालीन समाज में यज्ञों (३०६) का प्रचलन था। यज्ञ में पशुओं की बलि भी दी जाती थी (४००८)। यज्ञ की पूर्णाहुति पर होम या हवन किया जाता था (१८२३)। राजसूय यज्ञ (१६८८) भी किए जाते थे। सूर्यग्रहण (३८१) और चन्द्रग्रहण (३६०४) को धार्मिक पर्व मानने का विधान था। चन्द्रग्रहण के अवसर पर दान देने की प्रथा का भी उल्लेख हुआ है (३६०४)। वेद (४२७६) सबसे बड़े धार्मिक ग्रंथ माने जाते थे। श्रुति की ऋचाओं (१७६३) को अत्यन्त पवित्र माना जाता था। धार्मिक कृत्यों में रोचना आदि से ऐपन की पुतली (५५८) बनाने का भी प्रचलन था।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में कुछ ऐतिहासिक पौराणिक व्यक्तियों और कथाओं के प्रति भी आस्था थी। इनसे समाज भली भाँति परिचित था और इन्हें देवताओं की तरह पूज्य मानता था। ये हैं—**मोहिनीरूप** (७६४) समुद्र मंथन के समय निकले हुए अमृत के बटवारे के लिए भगवान विष्णु को मोहिनी रूप धारण करना पड़ा था। **गजोद्धार की कथा** (४७२७)। ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया। हाथी ने भगवान् को याद किया, भगवान् तुरन्त दौड़कर आए। **इले-बिले** (२६१७)—ये दोनों स्वर्ग द्वार के रखवारे माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त रामायण और महाभारत के कुछ पात्रों और कथाओं का उल्लेख हुआ है, जिससे तत्कालीन समाज में इन कथाओं के प्रचलन और इनके प्रति जन-मानस की आस्था का पता चलता है। ये पात्र और कथाएँ हैं—दशरथ (३७५१), विभीषण (१६०१), राम (३८४७), सीता (३८४७), लक्ष्मण (३८८१), कुरुक्षेत्र (४०११), गीता (४१०१), द्रौपदी-चीर-हरण (१६५), भीष्म शैय्या (३८३०) कर्ण और अर्जुन का बैर (२७४०) तथा महाभारत के युद्ध में हाथी के घण्टे से भरुही के अण्डे की रक्षा (४७७७) आदि।

तत्कालीन धार्मिक जीवन में मुनि (१२७६), सिद्ध (३१६२), तपी (३२३१), दिगम्बर (४१८४), बैरागी (८२३) और योगी (३३६६) का महत्वपूर्ण स्थान था। समाज इन्हें आदर की दृष्टि से देखता था। मुनि लोग भ्रमण करते हुए तप करते थे, किन्तु वर्षा के चार महीने एक ही स्थान पर निवास करते थे, (४२६२)। सिद्ध लोग गुफा के भीतर ताड़ी और आसन लगाकर ध्यान लगाते थे, पवन-साधना करते थे और समाधि लगाते थे (३१६२)। तप-साधना में एक साधना शीर्षासन लगाकर तप करने की भी प्रचलित थी (३२३१)। कुछ दिगम्बर (४१८४) साधु भी होते थे, जो वस्त्र नहीं धारण करते थे, बल्कि नंगे ही रहते थे। योग की साधना करने वालों को योगी कहा जाता था।

सूर के समाज में योग-साधना का बहुत महत्व और प्रचलन था। मध्य काल में योग वास्तव में सन्त साहित्य की देन है। सन्तों ने योग का भरपूर प्रचार किया। सूर के समाज में भी योग का प्रभाव अक्षुण्ण बना रहा। योग एक कठिन साधना है। जिन साधनों द्वारा आत्मा का सम्बन्ध बलपूर्वक परमात्मा से जोड़ा जाय, उसे योग कहते हैं। योग के अनेक प्रकार-भेदों में से सूर के समाज में हठयोग साधना का विशेष प्रचलन था। योग का चित्रण सूर के अप्रस्तुतों द्वारा, पद ४१४८ और ४३११, ४३१२ में हुआ है। योग आसन लगाकर किया जाता है। योगी सर्वप्रथम प्राणायाम द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त करता है, प्राणायाम से नाड़ियों और चक्रों में से शक्ति आती है। शिवसंहिता में ३५००७० नाड़ियाँ बताई गई है, जिनमें तीन मुख्य हैं—इडा, पिंगला और सुषुम्ना। सुषुम्ना नाभि से निकल कर

ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। इसमें छः चक्र तथा छः कमल होते हैं। कण्ठ से इस नाड़ी के दो भाग हो जाते हैं—एक त्रिकुटी (४१४८)—भौंहों के बीच से होती हुई और दूसरी सिर के पीछे से ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। इड़ा नाड़ी मेरुदण्ड से बांई ओर और पिंगला दाहिनी ओर होती है। सुषुम्ना नाड़ी के निचले भाग में कुण्डलिनी होती है। प्राणायाम से कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है, ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल कमल तक पहुँचती है और योगी को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। मानव शरीर में स्थित पञ्चवायु - प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान—को योगी पवन अवरोधन (४१४८) द्वारा उठाता है। छः चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—में से त्रिकुटी में स्थित आज्ञा-चक्र के भेदन से महत्वपूर्ण सफलता मिल जाती है। इसके दोनों ओर इड़ा और पिङ्गला वरुणा और असी तरह हैं, अतः इसे वाराणसी भी कहा जाता है। छः चक्रों के भेदन के बाद कुन्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। यह योग की चरम स्थिति है, ब्रह्म की प्राप्ति है। यहाँ पहुँचने पर अनाहद शब्द (४१४८) सुनाई देता है। पद ४३११, ४३१२ में योग के उपकरणों पर प्रकाश डाला गया है। गोरखनाथ के अनुयायी होने के कारण योगी गोरख की जय जयकार करता है। गोरखनाथ ही हठयोग के प्रवर्तक हैं। योग-साधना में शरीर में भस्म (४३११) लपेटा जाता है। योगी कंथा (४-१२) वस्त्र पहनता है। कानों में मुद्रा (४३११) धारण करता है, हाथों में भिक्षापात्र खप्पर (४३१२)। चमत्कार दिखाने के लिये और कुत्तों को भगाने के लिये योगी दण्ड (४३११) धारण करता है, सींग-निर्मित वाद्य सिंगी (४३११) भी लिये रहता है। योगी जटा (४३११) रखता है और सोने या बैठने के लिये योगी के पास अधारी (४३११ होती है। गले में सेल्ही (४३१२) धारण करता है। योग सम्बन्धी ये पद इस प्रकार हैं—

हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।
मन, क्रम, बच हरि सौं धरि पतिव्रत, प्रेम-जोग तप साध्यौ।
मातु-पिता हित, प्रीति, निगम पथ तजि, दुख सुख भ्रम नाख्यौ।
मानऽपमान परम परितोषी, सुस्थल थिति मन राख्यौ।
सकुचासन कुल सील करषि करि, जगत बंध करि बंदन।
मौनऽपवाद पवन अवरोधन, हित-क्रम काम-निकन्दन।
गुरु-जन कानि अगिनि चहुँ दिसि, नभ तरनि ताप बिनु देखे।
पिवत धूम उपहास जहाँ तहँ, अपजस स्रवन अलेखे।
सहज समाधि सारि बपु बानक निरखि, निमेष न लागत।
परम ज्योति प्रति अंग माधुरी, धरति यहै निसि जागत।
त्रिकुटि संग भ्रूभंग, तराटक, नैन, नैन लगि लागैं।
हंसनि प्रकास सुमुख कुंडल मिलि, चँद सूर अनुरागैं।

मुरली अधर स्रवन धुनि सो सुनि, सबद अनाहद कानैं ॥
बरसत रस रुचि वचन संग सुख, पद आनन्द समानैं ।
मंत्र दियौ मनजात भजन लगि, ज्ञान ध्यान हरि ही कौ ।
सूर कहौ गुरु कौन करै अलि, कौन सुनै मत फीकौ । पद ४१४८

तथा—

हम तौ तबहिं तैं जोग लियौ ।
जबहीं तै मधुकर मधुबन कौं, मोहन गौन कियौ ।
रहित सनेह सिरोरुह सब तन, श्रीखंड भसम चढ़ाये ।
पहिरि मेखला चीर पुरातन, फिरि फिरि फेरि सियाये ।
श्रुतिताटंक मेलि मुद्रावलि, अवधि अधार अधारी ।
दरसन भिच्छा मांगत डोलतिं, लोचन पात्र पसारी ।
बांधे बेनु कंठ सिंगी, पिय, सुमिरि सुमिरि गुन गावत ।
करतल बेंत दंड डर डरत न, सुनत स्वान-दुख धावत ।
रहत जु चित उदास फिरतिं, बन बीथिनि दिन अरु राति ।
बारक आवत कुंटुंब जातरा, सोऊ अब न सुहाति ।
भोग भुगति भूलें नहिं भावत, भरीं बिरह बैराग ।
गोरख सब्द पुकारत आरत, रस रसना अनुराग ॥
... ...पद ४३११

सूर के समाज में अनेक अन्धविश्वास भी प्रचलित थे । हमारे हिन्दू समाज में ये अन्ध विश्वास धर्म के अंग बन गए हैं । समाज में इनकी मान्यता धर्म के समान ही है । तत्कालीन समाज में प्रचलित अन्ध विश्वास निम्नलिखित थे । केहरि या बाघ का नख पहनना (७३९) । ऐसा, बच्चों को बुरी नजर से बचाने के लिये किया जाता था । बच्चे पर टोना लगने का भी अन्ध विश्वास प्रचलित था (२२०४) । राई लोन उतारना (१३६) अन्ध विश्वास बच्चे को कुदृष्टि से बचाने के लिए प्रचलित था । तृन तोरना (७१४) आपत्ति को टालने के लिये माना जाता था । खाते समय नजर (दीठि) लगने (१६०५) की भी मान्यता थी । सिर से उतार कर जल पीना (६९६) भावी आपत्ति को टालने के लिये प्रचलित था ।

बालकों के कल्याण से सम्बन्धित इन अन्धविश्वासों के अतिरिक्त समाज में शकुन विचार भी अन्धविश्वास के रूप में प्रचलित थे । ये शकुन दो प्रकार के थे—शुभ सकुन और अशुभ शकुन । शुभ शकुनों में मुख्य इस प्रकार के हैं—कुच, भुजा और नेत्रों का फड़कना (४८९४), उड़ाने पर कौवे का उड़ जाना (६०८), कौवों का बोलना (४८९४), दाहिनी और मृगपंक्ति देखना (३५६२) और भुजा फड़कना (४०७२) । इन शकुनों के होने पर कर्म-सिद्धि समझी जाती थी । अशुभ शकुन इस प्रकार हैं—कुत्ते का द्वार पर कान पटकना (११५९), कौवे का रात में बोलना (२८६), गररी पक्षी का लड़ना (११५९), घोड़ों का रोना (२८६), छींक होना

(११५८); दाहिनी ओर गधे का बोलना (११५८), परिवा का प्रस्थान (४४४६), पीपल का पेड़ बाएँ पड़ना (२१०६), बाएँ की छींक (११४२), बाएँ कौवा बोलना (११५८), बिल्ली का आगे से निकल जाना (११६०), बिल्ली का रास्ता काटना (१२०७, बुरी चीजों का सुबह नाम लेना (२५४४), माथे पर से कौवे का उड़ जाना (११५६), हाथी का रोना (२८६), सियार का दिन में बोलना (२८६) इत्यादि। शकुन सम्बन्धी इन अन्ध विश्वासों के अतिरिक्त समाज में स्वप्न सम्बन्धी कुछ अन्धविश्वास भी प्रचलित थे। स्वप्न को सच मानने की मान्यता थी और स्वप्न के अच्छे या बुरे होने के साथ लोगों में उसकी प्रतिक्रिया हर्ष या विषाद के रूप में होती थी (५२७, ११३५)।

इनमें से प्राय: सभी अन्धविश्वास आज भी उसी रूप में हमारे समाज मे चले आ रहे हैं। इन्हें मात्र अन्धविश्वास कहकर टाल देना अदूरदर्शिता होगी। हो सकता है, इनमें से कुछ कोरे अन्धविश्वास हों, लेकिन कुछ के पीछे कुछ न कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी निश्चित ही छिपा होगा, क्योंकि हमारा हिन्दू धर्म अत्यन्त ठोस है और इसका प्रत्येक अंग विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है। आज का युग विज्ञान का युग है, अतः हर वस्तु का परीक्षण, हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते है, इसी प्रकार हमारा युग प्राचीन युग-धर्म का युग था और हर वस्तु का परीक्षण धार्मिक दृष्टिकोण से हुआ करता था। अतः वैज्ञानिक दृष्टि से लाभकारी अनेक तथ्यों को हमारे पूर्वज महर्षियों ने धर्म का बाना पहना कर हमारे सामने रख दिया। वह समाज ही धर्मभीरु समाज था, अतः वैज्ञानिक दृष्टि से लाभकारी क्रियाओं या वस्तुओं को धर्म का अंग बना देने से पूरा समाज उसे मानने के लिए बाध्य था। समाज में प्रचलित अनेक धार्मिक रूढ़ियों और परम्पराओं में हम वैज्ञानिक तथ्य ढूँढ़ सकते हैं। जनेऊ पहनने का धार्मिक नियम बना दिया गया था, किन्तु इसके पीछे वैज्ञानिक सत्य है। फालिज प्राय: लघुशंका और दीर्घशंका के समय गिरती है, किन्तु यदि सिर पर सूत हो तो फालिज गिरने का भय नही रहता। इसी वैज्ञानिक सत्य के कारण जनेऊ पहनने और दीर्घशंका, लघुशंका के समय जनेऊ को एक कान में लपेटकर सिर के ऊपर ले जाकर दूसरे कान में लपेटने का विधान है। गोखुर के बराबर चोटी रखने का धार्मिक विधान है। यह भी वैज्ञानिक है। प्राचीनकाल में लोग प्राय: मुण्डे रहते थे। बुद्धि का कार्य करने वाला लघु मस्तिष्क धूप से बचता रहे और तेल आदि से शक्ति पाता रहे, इसीलिये लघु मस्तिष्क के ऊपर गोखुर के बराबर चोटी रखने का विधान हिन्दू धर्म में किया गया है। पीपल की जड़ में जल चढ़ाने का विधान है। यदि पीपल की जड़ पर जल गिराया जाय तो उसमें से एक अलौकिक स्वास्थ्यवर्द्धक सुगन्ध निकलती है। दक्षिण दिशा में पाव करके सोना, मुँह करके खाना और घर का द्वार दक्षिण दिशा में करना वर्जित है। इन परम्पराओं के पीछे भी वैज्ञानिक सत्य है। वास्तव में उत्तर दिशा में एक पुच्छल

तारा होता है, जिसमें हमारे मस्तिष्क की शक्ति के आकर्षण की क्षमता होती है। अतः हमारा लघु मस्तिष्क कम से कम समय तक उत्तर दिशा की ओर रहे, इसीलिये दक्षिण दिशा सम्बन्धी ये विधान बनाये गए। गर्जना के साथ तेज वर्षा होने पर लोग तवा या मूसल आंगन मे फेंक देते है। इसमें भी वैज्ञानिक तथ्य है। यदि बिजली गिरी तो लोहे के आकर्षण से आंगन में आ जायेगी और जान-माल का खतरा नहीं होगा। इसी दृष्टिकोण से मन्दिरों के ऊपर लौह-त्रिशूल भी लगाया जाता है। झाड़-झंखाड़ युक्त बांस का पेड़ लोग प्रायःघर के पास ही लगाते हैं, क्योंकि इसमें ऐसे कीटाणु होते हैं, जो राजरोग के कीटाणुओं को विनष्ट कर देते हैं। हर कार्य के प्रारम्भ में गणेश-पूजा होती है। यहाँ तक कि 'श्रीगणेश करना' कार्य प्रारम्भ करने के अर्थ में ही रूढ़ हो गया। गणेश चार वस्तुओं का समन्वय है—गजानन, लम्बोदर, मूषक वाहन और पत्नी रम्भा (केला)। इन चारों का वैज्ञानिक अर्थ इस प्रकार है—कोई भी कार्य करने के लिय बुद्धि और बल अनिवार्य है। ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत है जिघ्रण और जिघ्रण इन्द्रिय (नाक) संसार के सभी जीवों में सबसे बड़ी हाथी की होती है। अतः गजानन रूप की पूजा में इसी बुद्धि का आह्वान है। लम्बोदर अर्थात् मुटापा के लिये पेट या चर्बी की आवश्यकता पड़ती है जो शक्ति की प्रदाता है, अतः लम्बोदर—पूजा के रूप में हम शारीरिक शक्ति की प्राप्ति की कामना करते हैं। इस प्रकार बुद्धि और बल की प्राप्ति से हर कार्य सम्भव है, किन्तु कभी-कभी कार्य में विघ्न-बाधाएँ भी आ जाती हैं—जिनका कटना अनिवार्य है, अन्यथा कार्य-सिद्धि नहीं होगी। दुनिया के सभी जानवरों में कुतरने में सबसे तेज होता है मूषक (छोटा चूहा)। गणेश वाहक मूषक के रूप में हम विघ्न-बाधाओं के टल जाने की कामना करते हैं। हम अपने कार्य का अधिक से अधिक फल चाहते हैं और एक फूल में सबसे अधिक फल केला में लगते हैं। अतः गणेश की पूजा के रूप में हम बुद्धिबल की कामना करते हैं, विघ्न-बाधाओं के कटने की अभिलाषा करते हैं तथा अधिक से अधिक फल प्राप्ति की वांछा करते हैं। गणेश पूजा का यही वैज्ञानिक सत्य है। शंकर पूजा में भारतीय संस्कृति का त्याग गुण छिपा है। अर्थात् संसार द्वारा त्याज्य को ही ग्रहण करे और संसार के भोग्य को संसार के लिए छोड़ दे। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है, जिसे दिन में नहीं, रात में दिखाई देता है और सम्पत्ति भी चोरी-डकैती के रूप में रात में ही चलती है। गाय का दूध, गोबर, मूत्र, चमड़ा, हड्डी, गोवत्स सब कुछ उपयोगी है, अतः उसे क्यों न माता माना जाय? हल्दी हमारे स्वास्थ्य के लिए कितनी उपयोगी है? इसीलिए हल्दी को हर कार्य में शुभ माना गया। इसी प्रकार से और भी हमारे धर्म के अनेक अंग, परम्पराएँ और रूढ़ियाँ हैं, जो वैज्ञानिक सत्य से समन्वित हैं।

वास्तव में धर्म और साहित्य का चरण पड़ जाने के बाद का अगला चरण विज्ञान का होता है। राम के पुष्पक विमान पर हमें आश्चर्य होता था, किन्तु आज के जहाजों के युग में हम पुष्पक विमान को सत्य मानने लगे। वियोगी राम वृक्ष और लताओं से भी सीता का पता पूछते हैं (पूँछते चले लता अरु पाती) तथा कण्व ऋषि ने वृक्षों से शकुन्तला की विदाई की आज्ञा देने को कहा (सेयं जाति शकुन्तला पतिगृहं, स्वम् सर्वैरनुज्ञायताम्) इसे हम कोरी भावुकता समझते थे, किन्तु जब सर जगदीशचन्द्र बोस ने सिद्ध कर दिया कि वृक्षों में भी जीव है, तब हम इस तथ्य को ग्रहण कर सके। हमारे धार्मिक साहित्य में कहा गया 'शब्द एवं ब्रह्म' अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है, यह स्वर ही ईश्वर है। इसका प्रत्यक्षीकरण हम आज कर सके जब शब्द को रेडियो, तार और बिना तार के तार द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचा देते हैं। शब्द अजर-अमर है, आकाश में व्याप्त है— इसी सूत्र पर निकट भविष्य में ही वैज्ञानिक उपलब्धि होगी, कि हम बैठे-बैठे गौतम का उपदेश, कृष्ण की गीता और गाँधी का सन्देश सुन सकें। इस प्रकार जिन आश्चर्यों को विज्ञान सिद्ध करता जा रहा है, वे हमारे लिए सत्य बनते जा रहे हैं। हमारे आधुनिक विज्ञान को अभी और आगे जाना है। चन्द्रमा पर पहुँच जाना कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है। हमारे प्राचीन इतिहास में तो राजा लोग देवताओं की सहायता करने के लिए अनेक ग्रहों पर जाया करते थे। हमारे वैज्ञानिकों को खोज करना है कि वह कौन-सा रसायन था, जिसका लेपन करके नल-नील द्वारा समुद्र में रखने पर पत्थर तैरते रह गए? वह कौन-सा रसायन था, जिससे लक्ष्मण ने रेखा खींच दी, जिसकी विशेषता यह थी कि अन्दर का व्यक्ति तो बाहर आ सकता था, किन्तु बाहर का व्यक्ति अन्दर जाते ही रेखा के स्पर्श से भस्म हो जाता। वह कौन सी विद्या थी, जिससे सूर्य के उत्तरायण होने तक भीष्म स्वेच्छा से जीवित रहे। अर्जुन का वह कौन-सा बाण था कि एक ही बाण में धरती से जलधारा फूट पड़ी। ब्रह्मास्त्र में क्या विशेषता थी कि जिस पर छोड़ दिया जाये, वह तीनों लोकों में भी नहीं बच सकता था और वह कौन-सी कला थी कि एकलव्य ने बाणों से कुत्ते का मुँह तो भर दिया, जिससे उसका भूँकना बन्द हो गया, किन्तु उसके मुँह में रंचमात्र जख्म नहीं हुआ। हमारे विज्ञान को इन तथ्यों की तह में प्रवेश करना है। इसी प्रकार समाज में प्रचलित अन्धविश्वासों को यों ही छोड़ा नहीं जा सकता। वह एक बड़ा सुन्दर शोध-विषय होगा कि धार्मिक अन्धविश्वासों का वैज्ञानिक परीक्षण किया जाय। इन अन्धविश्वासों में से अधिकांश के पीछे निश्चित ही किसी न किसी वैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन होगा।

(ङ) नैतिक जीवन

सूर के अप्रस्तुतों के अध्ययन से तत्कालीन समाज के नैतिक जीवन पर भी

प्रकाश पड़ता है। महान् सम्राट अकबर की शासन-कुशलता मात्र राजधानी की चहारदीवारी में ही सिमट कर रह गई थी और सुदूर कोनों में वही पुरानी अराजकता विद्यमान थी। शासकीय कर्मचारी प्रजा के साथ नाना प्रकार के अत्याचार किया करते थे। 'अर में गथ नहिं भजन तिहारो जौन दियैं मैं छूटौ' (१८५) से संकेत मिलता है कि अधिकारी घूस भी लेते थे। घूस पा जाने पर स्याह का सफेद कर देते थे और न पाने पर सफेद का भी स्याहा—'बाकी सबै रही' (१८५)। 'मनु रघुपति भयभीत सिन्धु पत्नी प्यौसार पठाई' (५६८) इससे अधिकारियों की कामलोलुपता पर भी प्रकाश पड़ता है। लगता है, अधिकारी गाँवों में जाकर किसानों के यहाँ ठहरते थे, और वासना की तृप्ति भी चाहते थे। अधिकारियों के आगमन के भय से लोग पत्नी को प्यौसार (मायके) भेज देते थे। अधिकारियों का अत्याचार जब अपनी सीमा पर पहुँच जाता था, तो कभी-कभी किसान, 'स्वर्गादपि गरीयसी' मातृभूमि अपने गाँव को भी छोड़कर अन्यत्र जा बसता था—यह संकेत 'सुबस बसौ इहि गाउ' (१८५) से मिलता है।

अधिकारियों की अनैतिकता के अतिरिक्त समाज मे चोर-डाकुओं और ठगों की भरमार थी, क्योंकि इनसे सम्बन्धित अप्रस्तुत सूरसागर मे शत-सहस्त्र बार आए हैं। लगता है, इनके प्रति शासन की कड़ी निगाह नहीं थी क्योंकि शासन की उपेक्षा के कारण ही इतनी अराजकता सम्भव थी। रास्ते में आते-जाते दिन-दहाड़े व्यापारियों का सामान छीन लिया जाता था ऐसा संकेत 'घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं, सब कोउ देहि निबाहि' (३१०) से मिलता है। चोर, रास्ता चलते हुए धन लूट लेते थे 'ज्यों मग चलत चोर धन हरै' (४११)। चोर इतने ढीठ होते थे कि लोगों के जग जाने पर भी नहीं भागते थे 'नहीं त्यागत नहीं भागत रूप जाग प्रकास' (२८८७)। चोरों में भय की मात्रा भी कम थी 'त्यौं लुब्धे ये टरत न टारे लोक-लाज न डरे' (२९१७), किन्तु कभी-कभी इन्हें पकड़ भी लिया जाता था' 'लोग जाग पकरे (२९१७)। पकड़ जाने पर रस्सी से बाँध दिया जाता था' लोचन चोर बाँधे दाम' (८८९) किन्तु कभी-कभी वे रस्सी तोड़कर भाग जाते थे 'गये छंडाइ तोरि सब बन्धन' (४३५२)। पकड़ जाने पर चोरों को कैद की सजा दी जाती थी—इसका भी संकेत मिलता है 'हम तैं गये लूटि लेने कौं हरा सो परे अगोट' (२९२९)। लगता है, चोरों को कठिन दण्ड नहीं दिया जाता था, क्योंकि ऐसा संकेत 'काम क्रोध मद लोभ मोह ये भये चोर तै साहु (४०) से मिलता है। शासकीय कर्मचारी इस मामले में भी धांधली करते थे। कभी-कभी चोर को छोड़ देते थे और साहू को पकड़ ले जाते थे' 'पकरौ साहू चोर कौ छाड़ौ' (४५२७)। ऐसी सरकार को सूर ने 'अंध-धुंध सरकार' कहा है (४५२७)। रात्रि के चुराए हुए धन को चोर प्रातःकाल मिलकर बांट लेते थे (३४८६)। इस प्रकार चोरों का आतंक तत्कालीन समाज के हर वर्ग में व्याप्त था

ठगों का आतंक भी समाज में कम नहीं था। सूर के अप्रस्तुतों में ठग और ठगी प्रथा का भी अनेक बार उल्लेख हुआ है। सूर के समाज में सवारियों की कमी के कारण लोग प्रायः पैदल ही यात्रा करते थे। ठगों से बचने के लिए अकेले न चलकर समूह बाँधकर यात्रा करते थे। ठग जंगल मे रास्ते पर बैठे रहते थे। उनके पास भेदिया (२९०८) होते थे, जो यात्रियों के आने की सूचना ठगों को दिया करते थे। ठग लोग यात्रियों को सही रास्ते से हटाकर, जंगल का रास्ता बता दिया करते थे (१८७)। ठग पहले यात्री के साथियों को अलग करते थे। ठगों को देखकर ही साथी लोग जान लेकर भागते थे और शहर में घुस जाते थे। अकेला यात्री माल देकर अपनी जान बचाता था (२९९६)। उस समय की ठगी की प्रथा विचित्र थी। पहले ठग, यात्रियों का विश्वास प्राप्त करता था। विश्वसनीय बन जाने पर विष मिला गुड़ (३८२१) या विषमोदक (४४५०) खिलाता था, जिससे यात्री मूर्छित हो जाता था। मूर्छित करने के लिए जादू डालने (२२०१ का भी उल्लेख हुआ है। यात्री के मूर्छित हो जाने पर उसके गले में फन्दा डालकर उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली जाती थी (२९०८)। कभी-कभी ठग यात्रियों की नाक भी काट लेते थे। ठगों का विस्तृत चित्रण निम्नलिखित पद में हुआ है—

> नैना हैं री ये बटपारी।
> कपट-नेह करि करि इन हमसौं, गुरुजन तैं करी न्यारी।
> स्याम-दरस-लाडू कर दीन्हौं, प्रेम ठगौरी लाइ।
> मुख परसाइ हंसनि माधुरता, डोलत संग लगाइ।
> मन इनसौं मिलि भेदबतायौ, बिरह-फांस गर डारी।
> कुल-लज्जा-संपदा हमारी, लूटि लई इन सारी।
> मोह विपिन मैं परी कराहति, नेह जीव नहिं जात।
> सूरदास गुन सुमिरि सुमिरि वै, अंतरगत पछितात॥—पद २९०८

तत्कालीन समाज में जुआ खेलने का भी व्यसन प्रचलित था, जिसका अनेक बार उल्लेख सूर के अप्रस्तुतों में हुआ है। छोटे-छोटे नहीं, अपितु इतने बड़े जुए होते थे, जिनमें जुआरी सब कुछ हार जाता था (४६९१)। इसी प्रकार समाज में कुछ मद्यप भी रहते थे, क्योंकि मद्य और मद्यप का भी उल्लेख हुआ है (६९१, ४१८३)। समाज में और भी अनेक प्रकार के अवांछित तत्व थे, जिनका उल्लेख सूर ने दो स्थलों पर किया है—विनय के पद १८६ में, जहाँ सारी बुराइयों को कवि अपने ऊपर ले लेता है और दूसरा स्थल है 'नैन समय के पद' जिसमें समाज की सारी बुराइयों का आरोप गोपियाँ अपने नेत्रों पर करती हैं। पद १८६ में जहाँ सारी बुराइयों को कवि अपने ऊपर ले लेता है और दूसरा स्थल है 'नैन समय के पद' जिसमें समाज की सारी बुराइयों का आरोप गोपियाँ अपने नेत्रों पर करती

हैं। पद १८६ में निम्नलिखित बुराइयों का आरोप कवि ने अपने ऊपर किया है—अधर्मी, अपत, उतार, अभागा, कामी, विषयी, कुकर्मी, घाती, कुटिल, ढीठ, क्रोधी कपटी, कुमति, दुष्ट, अन्यायी, बटपारो, ठग, चोर, उचक्का, गाँठिकटा, लठबाँसी चंचल, चपल, चबाइ, चौपटा, चुगुलखोर, जुआरी, अपराधी, झूँठा, खोटा, लोभी लौंद, मुकुरबा, झगरू, पढ़ेलो, लूटा, लंपट, धूल, दमरी का पूत, कृपन, सूम, लङ्गर, गुणार्भी, टूँडक, मसखरा, रूखा, मचला, अकलै मूल, पातर, निधिन, नीच, कुब्ज टुटुँक, भोंड़ू, रौऊ, कठोर, सुन्न हृदय, कृतघ्नी, निकम्मा, बेचन, मत्त, बुद्धिहीन, मूढ़, निन्द, निगोड़ा, भोंडा, कायर, स्वार्थी कलहा, कुही, मूर्ख, रोगी, परनिंदक परधन-द्रोही और संतापी। इसी प्रकार 'नैन समन्द के पद' में गोपियाँ अपने नेत्रों पर अनेक बुराइयों का आरोप करती हैं, जैसे—स्वार्थी (२८७५), चेरे (२८५६), गुलाम (२८५७), लोभी (२८६१), निकम्मा (२८७०), अकृतज्ञ (२८७६, अधिकारी (२८८१), चोर (२८८७), अविश्वासी (२८६०), नमक हरामी (२६०३), ठग (२६०७), निष्ठुर (२६२२), निर्लज्ज (२६३१), नीच (२६३६), चुगलखोर (२६५३), कपटी (२६५३), ढीठ (२६८०), नट (३००२) और लम्पट (३०१४)। इन बुराइयों से सूर के अनैतिक समाज का बड़ा सुन्दर चित्र उभर कर सामने आता है।

इन दुर्व्यसनों और बुराइयों के अतिरिक्त तत्कालीन समाज के काम जगत में भी अनैतिकता व्याप्त थी। वेश्यावृत्ति इसका ज्वलन्त उदाहरण है। गणिकाएँ लहँगा, चुनरी और उपरना पहनकर मुस्कान का जादू लोगों पर डालती थीं। गणिका निर्लज्ज होती थीं। कोई व्यक्ति उनसे उबरने नहीं पाता था। परपुरुषों के साथ रात भर सुख की नींद सोती थी, छैलों के साथ आनन्द विहार करती थीं (४४)। सूर के समाज में बिट और बिटनारियों का योगदान भी इस क्षेत्र में कम नहीं था। बिट पराई स्त्री के साथ रात काटता था (३२५) और बिटनारी को अपना घर भाता ही नहीं था, अन्य पुरुषों के साथ रंगरेलियाँ करती थीं। यदि भूले-भटके कभी घर भी आ गई तो गौने की दुल्हन जैसी व्याकुल हो जाती थी (२६६०)।

गणिका और बिटनारी के विशिष्ट वर्ग के अतिरिक्त सामान्य समाज में भी इस प्रकार की अनैतिकता व्याप्त थी। वृद्ध पुरुष का तरुणी से विवाह हो गया। ऐसी तरुणी स्त्री का कुलटा हो जाना स्वाभाविक ही है। वह निर्लज्ज होकर घर-घर घूमती है। पति के माँ-बाप को अलग कर देती है और उसकी प्रीति अपने भाइयों और बहनों के प्रति उमड़ पड़ती है। ऐसी स्त्री घर को नष्ट कर देती है (१७३)। इससे समाज में अनमेल विवाह के प्रचलन की ओर संकेत मिलता है। इसी प्रकार समाज में बहु विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। लोगों के पास दो या दो से अधिक स्त्रियाँ होती थीं। ये स्त्रियाँ आपस में सौति (१२७२) कहलाती थीं।

यह अप्रस्तुत सूर के काव्य में मुरली स्तुति प्रसंग में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है, जिससे लगता है, बहु-विवाह समाज की सामान्य प्रथा थी। सौति के समस्त कार्य-कलापों का सुन्दर चित्रण हुआ है (१२७३) (१२७४), (१२७९)। समाज के किसी अंग में पराई स्त्री के साथ विवाह कर लेने की भी प्रथा प्रचलित थी (२९२१)। लगता है, निम्न वर्ग में ऐसी प्रथा थी। नारी के परपुरुष भजन का भी उल्लेख हुआ है—'जैसै नारि भजै पर पुरुषहिं' (२९०३)। इतना होते हुए भी सम्भ्रांत परिवारों में कुलशील, लज्जा, और मर्यादा थी। ऐसे परिवारों की स्त्रियाँ घर से बाहर भी नहीं निकलती थी—ऐसा संकेत 'सूरदास पुरनारि फिरावत संग लगाए नट कौं' (२९३६) से मिलता है। नट अपनी स्त्री को गाँव-गाँव घुमाता था—इसे बुरा माना गया है। जो स्त्रियाँ अपने पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुष में मन लगाती थीं, उन्हें अपयश मिलता था और 'अधम गति' मिलने की सामाजिक मान्यता थी (१७९९)। समाज में पतिव्रत धर्म की भी मान्यता थी। पतिव्रता स्त्री सत्पुरुषों की ओर ताक भी नहीं सकती थी (४४३६)। सम्भ्रांत कुल शील का नियम बड़ा कठोर था। एक बार जिस स्त्री के चरित्र पर लाछन लग गया और वह कुल से बाहर कर दी गई, उसे पुनः कुल में वापस नहीं लिया जाता था 'ज्यौं कुल वधू बाहिरी परिकै, कुल मैं फिरि न समाई' (२९०५)। लेकिन ऐसा कठोर नियम केवल नारी जगत के लिए ही था, पुरुषों को इससे छूट थी। वे कहीं से कुछ भी करके आवैं, उन पर कोई कलंक नहीं लगता था, बल्कि उन्हें सब कुछ शोभा देता था 'पुरुष कौं री सबै सोहै' (३७६८)। इसके अतिरिक्त पूरी दान-लीला पुरुषों की उच्छृङ्खलता और छेड़-छाड़ से भरी है। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज के प्रायः हर क्षेत्र में नैतिकता का अभाव था। काम-सम्बन्ध में भी लोगों को पर्याप्त छूट थी।

इस प्रकार हम देखते है कि सूर के अप्रस्तुतों द्वारा उनके समाज के हर पहलू का स्पष्ट चित्र हमारे सामने आता है। वस्तुतः पारम्परिक और तत्कालीन समाज से ही ये अप्रस्तुत ग्रहण किए गए हैं, फिर समाज के चित्र का उद्घाटन इनसे क्यों न हो? सूर का दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था और उनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी। समाज के हर वर्ग, हर क्षेत्र और हर पहलू की उन्हें विशिष्ट जानकारी थी और अपने सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर अपनी जानकारी का प्रयोग उन्होंने अपने अप्रस्तुतों में किया है। अप्रस्तुतों के माध्यम से जिस सामाजिक चित्र का उद्घाटन हुआ है, उसकी सत्यता का आग्रह तो नहीं किया जा सकता, किन्तु मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत अध्ययन में सूर के समाज की एक स्पष्ट रूपरेखा झांकती हुई मिलेगी। दूसरी बात यह कि अप्रस्तुतों द्वारा किए गए इस सामाजिक अध्ययन से सूर के व्यक्तित्व पर लगे असामाजिकता के कलंक का भी प्रक्षालन यथेष्ट मात्रा में हो जाता है। कुछ विद्वानों ने सूर पर असामाजिकता का आरोप लगाया, सम्भवतः उनके काव्य के प्रस्तुत पक्ष को ही देखकर। शायद उनका ध्यान सूर के अप्रस्तुतों पर नहीं गया। अप्रस्तुतों में सामाजिक जीवन की बोलती हुई इस छाया से उनका मत अपने-आप खण्डित हो जाता है।

अध्याय ४

अप्रस्तुतों का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

(क) अप्रस्तुत और अलंकार

काव्य के अप्रस्तुत पक्ष के भी वस्तुतः दो भेद होते हैं—अप्रस्तुत सामग्री और अप्रस्तुत शैली। प्रस्तुत के प्रति हृदयस्थ भावना को जिस बाह्य सामग्री द्वारा व्यक्त किया जाता है, उसे अप्रस्तुत सामग्री कहते हैं और जिस रूप में जिस ढंग से, जिस शैली में उस सामग्री का उपयोग होता है, उसे अप्रस्तुत शैली कहते हैं। उदाहरण के लिए 'उसका मुख कमल जैसा सुन्दर है'—इस वाक्य में 'कमल' अप्रस्तुत सामग्री है और अप्रस्तुत शैली उपमा। पिछले अध्यायों में हमने अप्रस्तुत सामग्री का अध्ययन किया। इस अध्याय में अप्रस्तुत शैली के अध्ययन का प्रयास किया गया है। अप्रस्तुत शैली वस्तुतः अलंकार ही है। कवि, अप्रस्तुतों की योजना नाना प्रकार से करता है, इन्हीं नाना-विध प्रणालियों का नाम अलंकार है। अप्रस्तुतों और अलंकारों का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अप्रस्तुत प्रायः शत-प्रतिशत अलंकार के लिए लाये जाते हैं और अलंकारों तो बिना अप्रस्तुतों के सम्भव ही नहीं है। अप्रस्तुतों को प्रस्तुत बना देना ही तो अलंकार है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच साम्य या सादृश्य भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस सादृश्य-भावना से हमारे अन्तःकरण का प्रसार होता है। यह भावना हमारी मनसा का रागात्मक सम्बन्ध इतर जगत से जोड़ती है। इस साम्य भावना का उद्रेक मानव हृदय के भीतर अबोधता से बोधता के सोपान पर प्रथम चरण रखते ही प्रकृतितः होने लगता है और इस जागतिक लीला में आयु तथा अनुभव के प्रसरण के साथ यह भावना भी दृढ़तर होती चली जाती है। कभी-कभी अबोध बालकों में भी सादृश्य की क्षमता देखने को मिल जाती है। एक अबोध बालक शहर से पहली बार गाँव में आया। शहर में उसने कभी सुअर नहीं देखा था, किन्तु भैंस प्रायः देखता था। गाँव में पहली बार सुअर देखकर उसने कहा 'कितनी छोटी भैंस जा रही है।' अलंकारों के मूल में भी यही सादृश्य भावना विद्यमान है। जो कवि जितना ही प्रतिभाशाली होगा, अनुभव का धनी होगा और जितनी ही पैनी दृष्टि वाला होगा, उसका सादृश्य-विधान भी उतना ही प्रसरित और सूक्ष्म होगा। इसीलिए अपनी उपमाओं के कारण कालिदास अमर हो गए।

साम्यभावना द्वारा अलंकार सृष्टि में मनोविज्ञान का बहुत बड़ा हाथ रहा है। हमारे यहाँ अलंकारों के विशिष्ट मनोवैज्ञानिक अध्ययन का अभी तक अभाव

है। अप्रस्तुत के साहचर्य या सामीप्य से सर्वप्रथम हमारे भीतर सन्देह भावना जाग्रत होती है, इसीलिए सन्देह अलंकारों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच कवि की साम्यभावना पर्याप्त अन्तर करती है। सन्देह के बाद कवि, प्रस्तुत और अप्रस्तुत मे साम्य के कारण तुलना करता है, जिससे उपमा अलंकार का सृजन होता है। इसीलिए उपमा अलंकार में भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच की दूरी बनी रहती है। दूरी के और कम होने पर अप्रस्तुत पक्ष प्रबल होता जाता है और कवि उपमेय में मानों उपमान देखने लगता है, जिससे उत्प्रेक्षा अलंकार जन्म लेता है। रूपक अलंकार में यह दूरी और सिमट जाती है तथा प्रस्तुत और अप्रस्तुत तद्रूप हो जाते है, कवि उपमान का आरोप उपमेय पर कर बैठता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच विद्यमान सादृश्य भाव के और निकट आने पर कवि प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत का कथन करता है, जिससे अपह्नुति अलंकार का प्रसव होता है। कवि की साम्य-भावना और आगे बढ़ती है तथा कवि प्रस्तुत और अप्रस्तुत को एक ही में चिपकाकर अप्रस्तुत को ऊपर और प्रस्तुत के नीचे करके रख देता है। हमें केवल अप्रस्तुत ही दिखाई देता है, प्रस्तुत तो उसी के गर्भ में छिपा रहता है, यह है रूपकातिशयोक्ति अलंकार। इस साम्य भावना की चरम परिणति हम भ्रान्तिमान अलंकार में देखते हैं, जहाँ न केवल अप्रस्तुत में प्रस्तुत का भ्रम ही हो जाता है, अपितु हम अप्रस्तुत को ही सत्य मानकर उसकी प्रतिक्रिया से प्रभावित होने लगने है। इस प्रकार इन तमाम अलंकारों का एक वैज्ञानिक क्रम है, जिसका विस्तृत अध्ययन आज भी अपेक्षित है।

अप्रस्तुत सामग्री का उपयोग अर्थालंकारों में ही होता है, शब्दालंकारों का अप्रस्तुत से कोई प्रयोजन नहीं। अप्रस्तुत सामग्री के प्रस्तुतीकरण की विभिन्न शैलियाँ ही ये अर्थालंकार हैं। कवि अप्रस्तुतों को नाना रूपों में, विभिन्न शैलियों मे प्रस्तुत करता जाता है, जिससे अलंकार उद्भूत होते जाते हैं। यदि एक ही अप्रस्तुत लेकर इन विभिन्न आलंकारिक प्रणालियों का उद्घाटन किया जाय तो इस भावना को हृदयंगम करना अधिक सुकर होगा। उदाहरण के लिए 'चन्द्रमा' अप्रस्तुत को विभिन्न अलंकारों में इस प्रकार रक्खा जा सकता है--चन्द्रमा के समान मुख है—उपमा। चन्द्रमा के समान मुख है और मुख के समान चन्द्रमा—उपमेयोपमा। मुख जैसा मुख है—अनन्वय। मुख के समान चन्द्रमा है—प्रतीप। चन्द्रमा को देखकर मुख का स्मरण हो जाता है—रूपक। मुख-चन्द्र से ताप शान्त होता है—परिणाम। यह मुख है या चन्द्रमा—सन्देह। चन्द्रमा समझकर चकोर ने मुख का पीछा किया—भ्रान्तिमान। मुख को चन्द्रमा समझकर चकोर और कमल समझकर भ्रमर प्रसन्न होते हैं—उल्लेख। चन्द्रमा है, मुख नहीं—अपन्हुति। मुख मानों चन्द्रमा है—उत्प्रेक्षा। मुख चन्द्रमा ही है—अतिशयोक्ति। मुख से चन्द्रमा और कमल हार गए—तुल्ययोगिता। रात में मुख और चन्द्रमा आनन्दित होते है—दीपक। मुख

है, इससे मन और चन्द्रमा है, इससे चकोर प्रसन्न होते हैं—प्रतिवस्तूपमा । आकाश में चन्द्रमा और पृथ्वी पर मुख है—दृष्टान्त । मुख चन्द्रमा की कान्ति धारण करता है—निदर्शना । निष्कलंक मुख चन्द्रमा से बढ़-चढ़कर है—व्यतिरेक । मुख के साथ चन्द्रमा रात में हंसता है—सहोक्ति । मुख के सामने चन्द्रमा फीका लगता है—अप्रस्तुत प्रशंसा । इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न वाचक शब्दों द्वारा अप्रस्तुतों का प्रसार ही अलंकार है ।

(ख) सूरसागर में प्रयुक्त अलंकार

यों तो अर्थालंकार की संख्या अनिश्चित है, किन्तु हिन्दी के अलंकार-ग्रन्थों में गोविन्ददासकृत 'दूषणोल्लास' में इनकी अधिकतम संख्या ११६ आई है ।[1] यह ग्रन्थ संस्कृत के अप्पयदीक्षित कृत 'कुवलयानन्द' के आधार पर लिखा गया है, जिसमें ११४ अर्थालंकार गिनाए गए हैं । इन अलंकारों के अनेक भेदोपभेद भी किए गए हैं । सूरसागर इतना विशाल ग्रन्थ है कि यदि उसे टटोला जाय तो प्रायः इन सभी अलंकारों तथा उनके प्रमुख भेदोपभेदों के उदाहरण ढूढ़कर निकाले जा सकते हैं । यही नहीं, कवि जब भाव-विभोर हो उठता है, तब उसके अन्तस्तल से ऐसी-ऐसी अप्रस्तुतयोजनाएँ निकलती हैं, जिनका अभी तक शास्त्रीय नामकरण भी नहीं हो पाया है । कवि की भावुकता के सामने अलंकारों का दायरा छोटा पड़ जाता है और वह इस दायरे का बन्धन तोड़कर अनेक नवीन प्रणालियों में भाव प्रकाशन करता है । इस प्रकार के भी अनेक उदाहरण 'सूरसागर' में ढूढ़े जा सकते हैं ।

'सूरसागर' में प्रयुक्त अलंकारों पर दृष्टिपात करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमें चार अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है—उपमा, उत्प्रेक्षा, सांगरूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का भी प्रयोग बारम्बार मिलता है । 'सूरसागर' में प्रयुक्त मुख्य अलंकार इस प्रकार हैं—

उपमा

यह सबसे प्राचीन अलंकार है । इसका इतिहास भरत के 'नाट्यशास्त्र' से चला आ रहा है । 'सूरसागर' में यों तो उपमाओं की भरमार है, किन्तु यहाँ रमणीय उपमाओं पर ही ध्यान दिया जा रहा है । 'गोपियाँ कृष्ण की ओर वैसे भागती हैं, जैसे नदी समुद्र की ओर दौड़ती है । गोपियाँ कृष्ण से मिलकर उसी प्रकार एक रंग हो गयी जैसे चूना और हल्दी का रंग (२२४९) । 'गोपियों के शरीर से छलकते हुये यौवन की उपमा 'मटुकी से छलकते हुए मट्ठे' से दी गई है (२२५६) । गोपियाँ कृष्ण से 'दूध और पानी की तरह मिल गई, उन्हें कैसे अलग

---

१. गोविन्ददास कृत दूषणोल्लास, सम्पा० बेनीबहादुर सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण, सन् १९६५ ई०, पृ० २० ।

किया जाय' (२२७५) ? कृष्ण के मुख ने चन्द्रमा के सारे तत्व को छीन लिया और अब आकाश में सारहीन चन्द्रमा वैसे ही दिखाई देता है जैसे जूठा थाल (२:१४)। ललिता के वश में कृष्ण उसी प्रकार हैं, जैसे पंखा के वश पवन, शरीर के वश छाया, चन्द्रमा के वश चकोर, सूर्य के वश चक्रवाक, कमलकोष के वश भ्रमर, स्वाती के वश चातक और शरीर के वश में जैसे जीव (२६८७)। जो गोपीनेत्र हरि रूप माधुरी का पान कर चुके हैं, उन्हें और कुछ अच्छा नहीं लगता, जैसे—औटाया दूध पीने वाले को नीरस छाछ नहीं रुचता, षटरस पान करने वाले को खली नहीं भाती (२६७४)। शरीर और यौवन वैसे ही चला जायेगा, जैसे फागुन की होली, यह भीगकर वैसे ही नष्ट हो जायगा जैसे कागज की चोली (३२०६)। यौवन वर्षा की नदी के समान है (३२०६)। यौवन और रूप चार दिन के लिए है, जैसे अंजली का जल, तृण की अग्नि, धूम का मन्दिर, ओस का पानी (३२१०) अथवा बदरी की छाया (३३६३) श्रीकृष्ण गोपियों से उसी प्रकार निस्संग हैं, जैसे जल से पुरइनि पात (३५६६)। कृष्ण के बिना गोपियां उसी प्रकार अनाथ हो गई हैं, जैसे तोड़े मधु की मक्खी (३७७८)। कृष्ण अपना स्वार्थ साधकर गोपियों को उसी प्रकार अलग कर गए जैसे गुड़ी की डोर तोड़ दी जाय (३६७६)। गोपियां ऊधौ से कहती हैं—'हे ऊधो! आपका योग हमारे लिए उसी प्रकार है, जैसे रोगी के लिए कुपथ्य। यह शरीर छोड़कर हम तो कृष्ण से उसी प्रकार मिलेंगे, जैसे गंगा समुद्र से मिलती है' (४०१६)। उसी प्रकार की और भी अनेक रमणीय तथा ललित उपमाओं की मोती से सूर का सागर भरा पड़ा है, उन्हें भला कौन 'निरुआरे'।

उत्प्रेक्षा

इस अलंकार का प्रयोग 'सूरसागर' में सबसे अधिक हुआ है, लगभग २५० उत्कृष्ट उत्प्रेक्षाएँ आयी हैं। सूर की कल्पना, उक्तिवैचित्र्य, उड़ान और अप्रसिद्ध उपमान—सब का विधान इसी उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा ही तो हुआ है। कुछ प्रमुख उत्प्रेक्षाओं की बानगी इस प्रकार है—'कृष्ण जन्म पर बधावा देने के लिए गोपियां सज-धजकर निकल पड़ीं, मानों लालमुनियों की पंक्ति पिंजड़ा तोड़कर निकल चली हों। कृष्ण के सिर पर जो दूध-दही छोड़ा गया, उसकी धारा बह चली, मानों वर्षा की नदी हो। बन्दीजन द्वार पर यशोगान कर रहे हैं मानों आषाढ़ की प्रथम वर्षा में दादुर, मोर बोल रहे हों (६४२)।' किलकारी मारते हुए कृष्ण के दांतों की शोभा ऐसी होती है, 'मानों कमल पर बिजली जमा दी गई हो' (७००)। आभूषणों से लदे कृष्ण ऐसे लगते हैं 'मानों फला-फूला, शिशु-शृंगार-तरु हो' (७०७)। कनक-भूमि पर घुटनों के बल चलाते हुए कृष्ण के कर, चरण-कमलों की छाया धरती पर पड़ रही है' मानो पृथ्वी कृष्ण के बैठने के लिए पद-पद पर आसन प्रदान कर रही है, (७२८)। कृष्ण के मुख पर माखन-कण इस भांति सुशोभित हो रहे हैं, 'मानों चन्द्रमा, मोती और तारे चुआ रहा हो' (६६७)। आंसू भरे कृष्ण-नेत्र ऐसे

लग रहे हैं' मानो कामदेव के झण्डे में दो मछलियां खेल रही हों। कज्जलमिश्रित आंसू कपोलों पर फैल गया है, मानो कलंक सहित चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो, (६७१)। आसू भरी पलकें ऐसी पलकें ऐसी लग रही हैं, 'मानो थोड़े जल पर सीप रक्खी हों' (६७८)। नेत्रों से आंसू ढरते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे हैं 'मानो खंजन, मोती चुग रहा हो, किन्तु मोती उसकी चोंच में न समा पा रहा हो' (६८४)। दोनों ओर लटकती मुक्तालर गले में मिल रही है, 'मानो दो गंगा मिल रहा हो। स्वर्ण-खचित मणिमय आभूषण और श्रमकण युक्त मुख की शोभा ऐसी है, मानों समुद्र को मथकर चन्द्रमा, श्री और सुधा एक साथ प्रकट कर दिये गए हों' (१२४६)। लकुट डुलाते हुए कृष्ण ऐसे लगते हैं' मानों सूँड डुलाता हुआ हाथी का बच्चा हो' (१२५० । कृष्ण की कटि में कनक मेखला सुशोभित हो रही है' मानो आकाश मे हंसों की पंक्ति हो और कमर में कछनी इस तरह शोभा दे रही है मानों कमल-केसर-खण्ड हो, (१२५१)। 'कृष्ण की रोमावली मानों भ्रमरों की पंक्ति हो, अथवा आकाश में गिरती हुई जमुना की सूक्ष्मधारा हो' (१२५२ । कृष्ण मुरली बजा रहे हैं 'मानों मोहिनी रूप धारण करके भगवान मधुपान करा रहे हों' (१२६६)। सुरति के बाद राधा-कृष्ण फूंक-फूंक कर श्रमकणों को सुखा रहे हैं' मानो बुझी हुई मदन-ज्वाला को पुनः प्रज्वलित कर रहे हों' (१३०४)। 'राधा-कृष्ण का आलिंगन मानो कंचन में मरकत मणि जड़ दी गई हो' (१३०६)। कृष्ण के उर में श्वेत, लाल, शित, पीले, अनेक प्रकार के फूलों की बनमाला सुशोभित हो रही है' मानों सुरसरि के तट पर वर्ण-वर्ण के शुक निःशंक बैठे हों, कटितट में छुद्रावलि बोल रही है मानो कनकभूमि के पास रुचिर मराल बोल रहे हों' (२३७२)। कृष्ण के अधरों पर मुरली, राग अलाप रही है 'मानो सुधा पयोधि घिरकर ब्रज पर वर्षा कर रहे हों। कृष्ण के कपोलों पर कुन्डल और श्रमसीकर झलक रहे हैं 'मानो-शरद तड़ाग में मकर और मीन क्रीड़ा कर रहे हों' (२३९५)। कृष्ण के विशाल हृदय पर मोतीमाला के बीच कौस्तुभ मणि सुशोभित है, 'मानो आकाश में तारा-गण हों और उनके बीच चन्द्रमा विराजमान हों' (२४०१)। कृष्ण झुककर वंशी बजा रहे हैं, उनके हाथ, मुख, नेत्र मुरली पर आ गए हैं 'मानो कमल चन्द्रमा से अपना बैर छोड़कर आ मिला हो और चन्द्रमा अपने वाहन हिरन को चुचकार रहा हो। कृष्ण के मुख पर कुंचित अलकें लटक रही हैं, मानों चन्द्रमा ने अपने रथ के मृगों को बिड़रता हुआ जानकर सशंकित होकर लंगर डाल दिया हो, (२४०५)। हसते हुए कृष्ण की दसनावली इस प्रकार सुशोभित हो रही है 'मानों मरकतमणि के पुट के बीच स्थित मोतियों पर सिन्दूर छिड़क दिया गया हो' (२४१६)। कृष्ण की पलकों में नेत्रों का लाल, श्वेत और काला रंग झलक रहा है 'मानो सरस्वती, गंगा और जमुना ने एक स्थान पर आश्रम बना लिया हो' (२८३१)। राधा ने तनिक-सा देखकर मुख पर घूंघट डाल लिया 'मानो पावस ऋतु में बिजली

तनिक-सी दमककर छिप गई हो' (२७३१)। राधा की दोनों भृकुटियों के बीच में सखियों ने सवार कर केसर-आड़ बनाया है 'मानों इन्दुमण्डल मे सुधा की परी बंधी हो और लाल गुलाल के बीच राधा के कुच ऐसे लग रहे हैं, मानो सभी दिशाओं में अग्नि जलाकर शंकर भगवान् तप रहे हों' (२७३२)। राधा ने मुख से घूंघट हटा लिया 'मानों दुग्ध सिन्धु से निष्कलंक चन्द्रमा कढ़ आया हो। भाल पर सिन्दूरबिन्दु के ऊपर मृगमद लगा है, मानो बन्धूक पुष्प के ऊपर भ्रमर पंख पसार कर बैठा हो। बेसर मुक्ता की झलक चार रंगों में प्रकाशित हो रही है, मानो चन्द्रमा के भीतर गुरु, शुक्र, भौम और शनि चमक रहे हों' (७३८)। राधा-कृष्ण ने आलिंगन किया है, 'मानो गंगा ने जमुना से संगम किया हो' (२७४९)। राधा और कृष्ण की सुरति का वर्णन कवि ने अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया है— 'मानो कनक बेलि तमाल से उलझ गई, चन्द्रमा के ऊपर भृंग-यूथ आ-जा रहे हैं, सुरसरि पर तरनितनया उमंग कर समा नहीं रही है, बादल के तारे गिर रहे हैं' (२७५०)। सुरति के बाद राधा-कृष्ण के गंडस्थल पर श्रम-सीकर सुशोभित हैं 'मानो सुधा-कुम्भ के झकझोरने से कुछ बूँद छलक गए हैं' (२७५१)। सुरति के बाद कृष्ण के अलसाए निश्चंचल नेत्र ऐसे है 'मानो कमल पर रसपान कर मस्त भौंरा बैठा हो और उड़ न पा रहा हो' (३१६९)। राधा के हृदय पर उरपदिक के चारों ओर गजमुक्ता का हार सुशोभित है 'मानो नक्षत्रों की माला ध्रुव की परिक्रमा कर रही हो। बाँहों में पहनी हुई बाजूबन्द के फुंदने ऐसे लग रहे हैं मानो काम-बिटप की डालों में फूल खिला हो। शृंगार किए हुए राधा ऐसी लग रही है मानो मौर बांधकर दूल्हा बैठा हो' (-२२८)। बेसरि के मोती इस भाँति सुशोभित हैं 'मानो मृग अमृत भरे भाजन से अमृत पी न सकने के कारण ढरका दिए हों। श्याम-कंचुकी में जटित नगों की शोभा इस प्रकार है, मानो भवन के भीतर दीपक जल जाने से अंधकार सकुचाकर शरणागत हो गया हो (३२२९)। ताम्बूल के रंग में भीगी हुई दसनावली ऐसी लग रही है 'मानो चन्द्रमा मे सिन्दूर के साथ बिजली के बीज बो दिए गए हों। चिबुक पर डिठौना इस प्रकार सुशोभित है मानो प्रभात जानकर कमल-कोष से अलि-शिशु निकल आया हो' (३२३१)। आलिंगन के कारण कृष्ण के उर पर चन्दन चर्चित कुच के चिन्ह विद्यमान है, 'मानो हृदय पर दो चन्द्रमा निकल आए हो' (३२६०)। नयन-कोर में अंजन-रेखा ऐसी सुशोभित है 'मानो पन्नगी ने खंजन को ग्रसित कर लिया हो अथवा दुग्धसिन्धु का विष हो अथवा सागर से मान करके जमुना उल्टी बह रही हो अथवा स्मरारि का यश और कुयश एक ही साथ प्रकट हो गया हो अथवा दासों के हित के लिए हरि और हलधर की जोड़ी हो' (३२६६)। सुरति के बाद राधा के नेत्र 'मानो महावर से धोए हुए मीन हो' (३२८१)। राधा के कपोलों पर सुरति के दन्तक्षत विद्यमान हैं, मानो

आलबाल के भीतर रति ने बेलि श्रमजल से सींच दिया हो। कंचुकी बन्द के विगलित हो जाने पर उच्च कुचों पर नखरेखा इस प्रकार सुशोभित हो रही है, मानो सिंदूर पूरित कंचन-कुम्भ पर दरार पड़ गई हो' (२२८२)। सुरति के बाद कृष्ण के अधरों का अलक्त तक मिट गया और उसके स्थान पर कज्जल रेखा दिखाई पड़ रही है' मानो कुम्हिलाया हुआ बन्धूक पुष्प हो' (३१९७)। सुरति के बाद कृष्ण डगमगाते हुए चले आ रहे हैं' मानो पाँव की साँकर पकड़कर मत्त गज को लाया जा रहा हो' (३३०४)। सुरति के बाद कृष्ण के सारे अंग शिथिल हो गए हैं, ऐसे कृष्ण चले आ रहे है 'मानो रैनाहृद से गजराज चला आ रहा हो। कृष्ण के हृदय पर पीक और नखरेख शोभित हो रही है, मानो अरुण किसलय धारण किए बसन्त ऋतु का वृक्ष हो' (३३५२)। गोपी ने स्वप्न देखा कि कृष्ण उसके घर आए है और हँसकर उसकी भुजा पकड़ लेते है, किन्तु इसी बीच बैरिन नींद खुल गई, एक क्षण भी और नहीं रुक सकी, कि अगले सुख का भी अनुभव गोपी कर लेती। 'मानो सरोवर-तट पर बैठी चकई, अपने प्रतिबिम्ब को ही चकवा समझकर आलिंगन के लिए आगे बढ़ती है कि निष्ठुर विधाता ने पवन को चंचल कर दिया और चकई की साध राख में मिल गई हो' (३८८६)। अवधि बीत गई, पर कृष्ण नहीं आए, वृक्षों पर पक्षी बोल रहे हैं 'मानो विरह का विवाह हो और मंगल गान हो रहा हो।' (४२७१)। कृष्ण का सन्देश सुनकर गोपियों के मुख और कुचों के बीच जलधारा बढ़ गई, 'मानो सनाल कमल चन्द्रमा से निकल कर सुमेरु-शृंग से मिलने जा रहा हो, (४७३०)। उत्प्रेक्षा के ऐसे और भी असंख्य रमणीय उदाहरण सूरसागर में भरे पड़े है।

सांगरूपक

सांगरूपक भी सूर का प्रिय अलंकार है। इसके द्वारा उन्होंने अनेक प्रसंगों, में अपनी प्रतिभा का उन्मेष किया है। 'सूर सागर' में लगभग १६० सांगरूपक आए हैं, जिनमें सबसे अधिक राज्य से संबंधित है। मुख्य सांगरूपक इस प्रकार हैं—राजा सम्बन्धी (१४१, १४४, २२०६, ३८४५), सेना सम्बन्धी (३०६७, ३९३१, ४३८.) युद्ध सम्बन्धी (१२६८, २७३४, ३०७२) गढ़ सम्बन्धी (३१९१, ३३८७), राजसूय यज्ञ (१६८८), ठकुराई (४०), साहिबी (६४), समुद्र (१७५, १२४३), समुद्र मंथन (७६०), दह (२४५.), नदी (१६२, १६२७, ४७३१) सरोवर (३३८, २५८१, ३२३१), गंगा (२०७६, ३० २) जमुना (१२५५, २५२६), संगम (२७४९) वर्षा (१८०७, ३८२४, ४७३५) भ्रमर (२८९५, २८९६) नटी (४२), नट (१५६, ३००१) गणिका (४४), अंधा (४८) मृग फंसाना (२८९८, ३३५८) चौपड़ (६.) योग (४१४८, ४३११) पक्षी (९७, ८०१०) पक्षी फंसाना (२८९०, ३८०३), गाय (५१, ५६), चकई (३३७), हाथी (२०५७, ३९२१), लिखहार (१४२), अमल (१४३). खेती (१८५ ३११) बल (३ १), होली

(३८७१), विरहिणी (३८०६), बालक तरुणा (३६६०), ब्याह (५६५, १६८६), सौति (१२३३), मोहिनी रूप (२८६१) स्वागत (२८२८), खग (१६६), वाणिज्य (३१०, १६८८), बन (३८०, २६६६), आरती (३७१), गारुड़ी (३७५, १३६५), चोरी (२४६०, २६१०) शंकर (७८०, २७३५), तपस्वी (३२३१), चन्द्रमा (२४१३), चन्द्रग्रहण (३६२४) आदि। विनय प्रसंग में आए हुए ठकुराई सम्बन्धी (४०), चौगड़ सम्बन्धी (६०), साहिबी सम्बन्धी (६४), लिलहार सम्बन्धी (१४२), अनत सम्बन्धी (१४३) तथा खेती सम्बन्धी (१८५) सांगरूपक यद्यपि कबीर की परम्परा के हैं तथापि सूचना की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन समस्त सांगरूपकों में कुछ इतने हृदयहारी हैं, जो हठात् मन को मुग्ध कर लेते हैं।' कृष्ण सुन्दरता के सागर हैं। नागर मन अपने बुद्धि-विवेक के बल पर इसे पार नहीं कर पाता, अपितु मग्न हो जाता है। कृष्ण का श्याम शरीर ही अगाध जल है, पीतपट, तरंग है, नेत्र-मीन है, कुण्डल मगर है और भुजाएँ ही सागर में निवास करने वाले सर्प हैं। मोती-माला, मानो दो धाराओं में गंगा मिल रही हैं। मुख, समुद्र से निकला चन्द्रमा है, आभूषण, लक्ष्मी और श्रमकण ही अमृत है। ऐसे सौन्दर्यसागर को भला गोपियाँ कैसे तैर सकें '(१२४६)' राधा कृष्ण का आलिंगन सरोवर है। गजबालिकाएँ जल हैं, नेत्र कमल है, अलक मधुप हैं, कुण्डल ही मीन हैं, राधा के कुच ही चक्रवाक हैं, जो मुख-चन्द्र से बिछुड़कर अनबोले हो गए हैं। मुक्तामाला, बगुलों की पंक्ति है, जो कोलाहल कर रही है। वैजयन्ती माला के अनेक फूल ही सारस, हंस, मोर और शुक पंक्ति है तथा निचोल ही कपिश पुरइनि है' (१२६७)। पनघट से राधा जल भर कर चली आ रही है। ऐसी राधा के लिए हाथी का सांगरूपक बांधा गया।' राधा की गति ही गयन्द है, कुच, हाथी के कुम्भ हैं, किंकिणी ही घण्टा है, मोती का हार मदजल है, खुभी ही हाथी के दाँत हैं। भाल पर लगा चंदन ही महावत है, जो बेसरि का अंकुश धारण किए हुए है। राधा की रोमावली ही हाथी की सूँड़ है जो नाभि-सरोवर की ओर दौड़ रही है। पाँवों की पायल ही हाथी के पाँव की जंजीर है, जिसमें वह बँधा है। घड़े से छलके हुए कण कपोलों पर विद्यमान हैं, मानो हाथी मद चुवा रहा हो। दोनों नितम्बों पर वेणी डोल रही है, मानो हाथी पूँछ डुला रहा हो। गज-सरदार कृष्ण यह शोभा देखकर सुख पाते हैं' (२०५७)। कृष्ण और चन्द्र विकास का बड़ा सुन्दर सांगरूपक बांधा गया है—'नन्दनन्दन वृन्दावन के चन्द्र हैं। यदुकुल आकाश हैं, देवकी, द्वितीया तिथि हैं, जठर (गर्भ) ही कुहा है और मधुपुरी पश्चिम दिशा, वसुदेव, शंभु हैं, जिन्होंने सिर पर धारण करके इन्हें लाया। ब्रज 'प्राची दिशा है, यशोदा राका-तिथि हैं, और नन्द शरद-ऋतु। ग्वालबाल, बलदेव ही उडगन हैं। इसने दनुज रूपी तमकुल का विनाश कर दिया। गोपीजन, चकोर हैं तथा कृष्ण की सोलह कलाएँ ही चन्द्रमा की सोलह कलाएँ हैं' (२४१३)। 'कृष्ण

का वदन मण्डल-सुधा-सरोवर है । रूप के जल में कुण्डल-मकर क्रीड़ा कर रहा है । नेत्र, मीन हैं, भौंह सांप है और नासिका बीच का थल है । मृगमद का तिलक कीचड़ है, मुख का विकास ही कमल है और युवतियों के नेत्र ही भ्रमर हैं । बिथुरी अलकें, तरंग हैं तथा कृष्ण के शरीर की छबि ही अमृत है' (२४३३) । राधा चली आ रही है, उनका बेड़ा ही सुन्दर और उदात्त चित्र गंगा के सांगरूपक द्वारा खींचा गया है—'मानो' गिरिवर से गंगा चली आ रही है । अनुपम अंगों वाली राधा अत्यन्त रमणीय सुशोभित हो रही हैं । राधा का गौर गात ही गंगा का विमल जल है, 'राधा की त्रिवली ही गंगा की तरंग है, रोमराजि मानों जमुना मिल रही हों । राधा का भ्रूभंग ही गंगा की भंवर है, राधा के कुच ही गंगा के तट पर बैठे चक्रवाक हैं । राधा के मुख, नेत्र, पद, पाणि, ही गंगा के कमल हैं, राधा की गति ही मराल बिहंग है । मणिमय आभूषण ही गंगा के तीर हैं और मांग के मोती ही गंगा की मध्यधारा हैं । ऐसी सुरसरी राधा, कृष्ण सागर से मिलने चली जा रही हैं' (२०७२) । राधा ने मान किया है । राधा के इस मान को सरोवर के सांगरूपक द्वारा व्यक्त किया गया है—'सुकुमारी राधा मान के सरोवर में विहार कर रही है, कितना ही प्रयत्न करने पर भी वह निकलती नहीं । राधा-मौन ही सरोवर का पाल है, आंसू ही जल है, स्वांस ही सुहंस है, नेत्रों का झुलना ही जलचरों का छिलना है, काम ही ग्राह है, राधा के चिकुर ही सरोवर की सिवार है । नीला आंचल ही कमल-पत्र है, कुच-कमल हैं तथा राधा का मन ही मराल है । ऐसी राधा को कृष्ण ही अपने हाथों से पकड़ कर मान-सर से बाहर निकाल सकते हैं (३१९३) । कृष्ण के ब्रज से गमन को चन्द्रग्रहण के सांगरूपक द्वारा व्यक्त किया गया है—'ज्यों ही कृष्ण ने चलने की बात कही, ब्रज में मानों बिना पर्व के चन्द्रग्रहण लग गया । अंजन ही राहु है, जो विरह की संधि पाकर गोपियों के मुख चन्द्र को ग्रस रहा है । वह राहु दांतों से इस प्रकार काटता है कि वह स्पर्श सहा नहीं जाता । आंसू के रूप में अमृत ऊपर बहा जा रहा है और अब यह चन्द्र ऐसा लग रहा है, मानो बिना माखन का मट्ठा हो' (३६०४) । कृष्ण के आगमन पर मथुरा नगरी सजाई गई । ऐसी सजी-धजी मथुरा नगरी का वर्णन वासक सज्जा नायिका के सांगरूपक द्वारा किया गया है 'मथुरा आज ऐसी बनी-ठनी है मानो पति का आगमन सुनकर धनी शृंगार किये हो । महलों के कोट ही किंकिणी है, उपवन लालवस्त्र है, भवन-चित्र ही भूषण हैं, घन्टों की ध्वनि ही नूपुर ध्वनि है, महलों पर विराजमान ध्वजा ही उसके आंचल हैं जो उड़ रहे हैं । ऊँची अटारी पर शोभित छत्र ही उसके कर्णफूल हैं, स्वर्णकलश ही उसके कुच हैं, जो दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि आनन्दातिरेक में वह कंचुकी पहनना भूल गई है । जालियों के बीच से परदों पर विद्रुमस्फटिक की छाया पड़ रही है, वह मानों नायिका दर्शनातुर होकर

पलक भाजना ही भूल गई हैं' (३६४०)। कृष्ण के वियोग में जमुना की दशा का चित्रण विरहिणी नायिका के सांगरूपक द्वारा किया गया है "हे पथिक! उन कृष्ण से कहना कि तुम्हारे विरह के ज्वर में वह जल रही है। गिरि की शैय्या से वह धरती पर गिर-गिर पड़ती है, उसके शरीर में तरंगों की तड़पन व्याप्त है। तट के बालू ही उपचार-चूर्ण हैं, भरा हुआ जल ही प्रस्वेद-पनारी है। कूल के कांस-कुस ही झड़ते हुए बाल हैं, कीचड़ ही काली साड़ी है, जमुना की भंवर ही उसकी भ्रमित गति है। चकई का बोलना ही उसकी पी-पी की रटन है। गोपियाँ कहती हैं, जो दशा जमुना की है, वही हमारी भी (३८०६)। बालकों का वर्णन हाथी के सांगरूपक द्वारा किया गया है—'चारों दिशाओं में काले बादल दिखाई दे रहे हैं, मानों मदन के हाथी बन्धन तोड़ चले हों। थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है, वही मानो हाथी के गण्डस्थल से चूता हुआ मद है। पवन रूपी महावत से वह रुकता नहीं, अंकुश से भी नहीं मुड़ता। सरोवर रूपी उरको फोड़कर बगपंक्ति रूपी दांत दिखाई दे रहे हैं' (३६२१)। इसी प्रकार ऊधौ का चित्रण धूम के हाथी द्वारा किया गया है। 'हे ऊधौ! आप देखने में तो भले लग रहे हैं, लेकिन काम के लिए आप धूम के हाथी जैसे हैं। आपके गण्डस्थल पर जो श्रमकण है वही हाथी का गण्ड-मद है। आपके ज्ञान और योग, उस हाथी के दोनों दांत हैं' (४५५४)। इसी प्रकार के और भी बहुत से सुन्दर सांगरूपक 'सूरसागर' में भरे पड़े हैं, किन्तु उनका वर्णन विस्तार-भय की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता।

रूपकातिशयोक्ति

इस अलंकार का भी प्रयोग सूर ने सैकड़ों बार किया है। इस अलंकार के माध्यम से मुख्यतः नारी रूप और सुरति का चित्रण हुआ है। सुरति-प्रसंगों का चित्रण स्पष्ट रूप से न करके, दुरावपूर्वक किया है। इस अलंकार में केवल अप्रस्तुत ही वाच्य होता है, अतः दुराव के लिए यह अलंकार विशेष उपयुक्त होता है। दुराव की भावना के लिए ही कवि को इस अलंकार में प्रायः दृष्टकूटों का सहारा लेना पड़ा है। कुछ सुन्दर रूपकातिशयोक्तियों के उदाहरण निम्नलिखित हैं। 'कृष्ण ने ज्यों ही सरोज (हाथ) को श्रीफल (कुच) पर रखा, त्योंही यशोदा आ गई' (१३००)। यशोदा के आ जाने के कारण ही कवि को यह दुराव करना पड़ा। 'चार कमल (हाथ, कुच, एक साथ दिखाई दिए' (१८१३)। 'राधा ने शृङ्गार किया है, कमल के पुत्र ब्रह्मा, उनके पुत्र महादेव, उनका वाहन गौ अर्थात् मोर और उसका भक्षण साँप (वेणी) को लाल रेशम से गूंथा है। मुद्रा अर्थात् लोपमुद्रा के पति अगस्त्य, उनका अंचवन समुद्र, उसकी तनया सीपी, उसका पुत्र मोती का हार हृदय में पहने हुए हैं, मानो गिरिसुत वृक्ष, उसका पति कल्पवृक्ष (कृष्ण) को वश में करने के लिए माररिपु अर्थात् शंकर (कुच) की पूजा अच्छत (मोती) लेकर कर रही

हो' पंथ—वेद, उसका पिता ब्रह्मा, उसका आसन हंस अर्थात् सूर्य, उसका पुत्र सुग्रीव अर्थात् सुन्दर ग्रीवा सुशोभित हो रही है। श्यामघटा (नीलाम्बर) और बगपंक्ति (मोतीमाला) शोभा पा रहे हैं। ऐसी राधा, कृष्ण के साथ यमुना-किनारे क्रीड़ा कर रही है' (१८२०)। कृष्ण गोपियों से कहते है कि सब अंगों का दान लूँगा—'ताड़फल से भी गुरु उरजों का, खंजन, कंज, मीन, मृगशावक (नेत्र) और भंवरज के समान भ्रूभंगों का, कुन्दकली (दांत) बन्धूक, बिम्बाफल (अधर) और सुन्दर ताटंक का—ऐसा कहने वाले कृष्ण हँसकर करोड़ों कामदेव को भी वश मे कर लेते हैं' (२०८३)। आगे भी कृष्ण कहते हैं कि इन अंगों का दान तुमसे लूँगा। 'मत्तगयन्द', हंस (गति) हमारे सामने हैं, मुझसे क्या छिपा रही हो, सिंह (कटि), अमृत भरे कनक-कलश (कुच) कैसे छिपेंगे। बिद्रुम (अधर) हेम, वज्रकण (दांत) की चर्चा नहीं करती हो। कपोत (ग्रीवा) कोकिल (वाणी), कीर (नासिका), खंजन, चंचल मृग (नेत्र) को नहीं जानती। मणि और सोने के चक्र (ताटंक) जड़े हैं, इतने पर भी नहीं मानती। धनुष (भौंह) बाण (कटाक्ष), घोड़ों (नेत्र) का बनिज तुम लिए जा रही हो, चंदन, चवर (केश) और सुगन्ध जहाँ-तहाँ व्याप्त है—कैसे निर्वाह होगा? इतने पर भी कहती तो हमारे पास क्या है' (२१६७)। गोपी कह रही है कि हे-सखी! पीताम्बर की शोभा मुझसे कहते नहीं बनती।' सागर सुत ऐरावत, उसका पति इन्द्र, उसका आयुध बज्र अर्थात् बिजली (पीताम्बर) मानों बन-रिपु दावाग्नि, उसका शत्रु मेघ (कृष्ण शरीर) में दिखाई दे रही हो। जिसका रिपु भवन है, ऐसा दीपक अर्थात् सारंग-जल, उसका सुत कमल उसका स्वामी सूर्य की आभा कुण्डल द्युति के सामने फीकी पड़ जाती है। सूर्य के समान मुख सुशोभित है और अधरों को देखकर बन्धूक भी लज्जित हो जाते हैं। नाकी-नायक इन्द्र का बाहन ऐरावत के समान गति है और सुन्दर मुरली बजा रहे है। हरसुत कार्तिकेय के बाहन मोर के पंख को सिर पर धारण किए हुए हैं' (२४८६)। राधा का नख-शिख वर्णन कवि रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से बाग के सागरूपक द्वारा करता है—'एक अद्भुत अनुपम बाग (राधा) है। दो कमलों (चरण) पर हाथी (नितम्ब) क्रीड़ा कर रहा है, उस पर सिंह (कटि) अनुराग कर रहा है। सिंह पर सरवर (पेट) सर पर गिरिवर (कुच) और गिरि पर पराग युक्त कंज (मेंहदी लगा हाथ) फूला है। उसके ऊपर रुचिर कपोत (ग्रीवा) है और उस पर अमृतफल (चिबुक) लगा है। फल पर पुष्प (अधर), पल्लव (ओष्ठ) हैं और उस पर (नासिका), पिक (वाणी) मृगमद काग (बेंदी) है। उसके ऊपर खंजन (नेत्र), धनुष (भौंह) और चन्द्रमा (भाल) हैं तथा उसके ऊपर भी एक मणिधर नाग (शीशफूल युक्त वेणी) है' (२७२८)। राधा के सौंदर्य-वर्णन में कवि आगे कहता है कि 'एक शरीर में इतनी बातें विराजमान हैं—अपने हाथ से विधाता ने छः

खग—भौंरा (केश), खंजन (नेत्र), शुक (नासिका) पिक (स्वर) कपोत (ग्रीवा), हंस (गति) तथा नौ कमल—दो कमल (चरण), दो कमल (कर) दो कमल (नेत्र), एक कमल (हृदय), एक कमल (नाभि), एक कमल (मुख), दो पतंग (कर्णफूल), बीस शशि (नख) एक सर्प (वेणी) और चार धातु—स्वर्ण (शरीर का वर्ण), रजत (हास), ताम्र (हाथ का रंग), लौह (केश का रंग), दे रखा है। दो पके बिम्ब (अधर) बत्तीस वज्रकण (दांत) एक कमल (मुख) पर स्थित हैं। एक धनुष (भौंह) और एक बाण (कटाक्ष) हैं, जिनकी ओर देखते ही चित्त बिक जाता है। दो कमलनाल (भुजाएँ), दो श्रीफल (कुच) दो बिना पात के कदली खम्भ (जांघ), एक केहरि (कटि) और एक गुप्त हंस (गति) उस शरीर में विद्यमान है' (२७३०)। राधा-कृष्ण का वर्णन भी कवि रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से करता है' रसना! युगल रसनिधि (राधा-कृष्ण) का उच्चारण कर। कनक वेलि (राधा) तमाल (कृष्ण) से उलझ गई है। भुजाओं का यह बन्धन खोला नहीं जा सकता। भृंगयूथ (केश) चन्द्रमा (मुख) पर आ जा रहे हैं। सुरसरि (राधा) के ऊपर तरनि-तनया (कृष्ण) उमंग कर समा नहीं रही हैं। नील कमल (कृष्ण-मुख) पर सूर्य (राधा का कर्णफूल) मीन, खंजन (नेत्र) के साथ ताण्डव कर रहा है। कीर, तिल (नासिका, जल (रूप), शिखर (कुच) पर संगम कर रहे हैं। जलद (केश) से तारा (फूल) खिसककर पयनिधि (कुच) में गिर रहा है। दो सर्प (भुजा) प्रसन्न मुख कनक-घट (कुच) पर लिपट रहे हैं। कनक संपुट (अधर, ओष्ठ), पिक-ख (वाणी) करता हुआ विवश होकर दान दे रहा है। फूला हुआ कंज (खुला मुख) अनार (अधर) का रसपान कर रहा है। दामिनी (राधा) स्थिर है और घनघटा (कृष्ण) चल है। कभी दिन हो जाता है (मुख पर से बाल हट जाते हैं) और कभी कुहू रात (मुख बाल से ढँक जाता है) हो जाती है। सरस सर (भग) के किनारे सिंह (कटि) से मध्य मणिगण नाद कर रहे हैं। दो कमल बिना नाल के (जांघ) उलटे हैं और कुछ तीक्ष्ण धारा बह रही है। हंस (नूपुर) शाखा-शिखर (कन्धा) पर चढ़कर नाद कर रहा है। मकर (कुण्डल) पद्मों के पास विहर रहा है और मिलने के लिए आतुर है' (२७५०)। कृष्ण, राधा के वक्षस्थल पर अपना मुखार-विन्द रखे हुए हैं। इस दृश्य को देखकर एक सखी दूसरी से कहती है कि 'हे सखी! पाँच कमल (मुख, दो नेत्र, नाभि, हृदय) तथा दो शम्भु (कुच) देखो। एक कमल (राधा मुख) वक्ष के ऊपर शोभित है, जिसे देखकर आश्चर्य होता है। एक कमल (हाथ) राधा अपने हाथों में लिए है। युगल-कमल (राधा-कृष्ण) की प्रीति कभी भंग न हो—ऐसा विचार कमल-सुत (ब्रह्मा) कर रहे हैं। छः कमल (राधा, कृष्ण के मुख, नेत्र) सम्मुख देख रहे हैं—इनमें तीन राधा के वश में हैं और तीन कृष्ण के' (३८०८४)। राधा ने क्रोध के कारण मुख को घूँघट में छिपा लिया है।

इसका वर्णन किया जा रहा है—'हे राधा ! तुमने बिना कारण कृष्ण से क्रोध करके मुख पर घूँघट डाल लिया है। जल-सुत—कमल (मुख) की छाया जल (वस्त्र) के भीतर से दिखाई दे रही है, मानो राहु ने चन्द्रमा को ग्रस लिया हो। सर्प (वेणी) स्वर्ण खम्भ (शरीर) पर चढ़कर चन्द्र (मुख) का अमृत (कान्ति) पी रहा है' (३३८८)। इन पदों के अतिरिक्त पद (२७८६, ३०८६, ३३६०, ३३९०, ४०२४, ४४८५) में भी रूपकातिशयोक्ति का सौन्दर्य दर्शनीय है।

दृष्टान्त

गोपियों को सास-ननदें डराती-धमकाती हैं। इस पर क्या प्रतिक्रिया होती है—इसका वर्णन अनेक दृष्टान्तों द्वारा किया गया है—'राधा और कृष्ण का उपहास करने वाले उनकी महिमा क्या जानें ? इनके अन्दर जैसी बुद्धि है, वैसी ही बात मुख से निकल रही है। सूर्य सदा आकाश में पूर्ण ही रहता है, लेकिन उसके तेज को उल्लू क्या समझ सकता है ? विष का कीट विष ही में रुचि मानता है, सुधारस उसके लिए क्या है ? तिल-तेल का सवादी भला घी का स्वाद क्या जान सकता है' (२५४२) ? कृष्ण से भला कैसी पहचान ? क्षण-क्षण न तो वह रूप रहता है और न वह छवि, किससे रति की जाय ? 'नेत्रों की बानि तो ऐसी है कि इनकी रुचि मिटती ही नहीं। घी डालने से कहीं होम की अग्नि मिटती है' (२४७०) ? भ्रमरगीत प्रसंग में दृष्टान्त के बड़े अच्छे उदाहरण मिलते हैं। श्याम रंग पर तर्क करते हुए गोपियाँ कहती हैं—'सखी ! काले लोग सभी बराबर है। सुहावनी और मीठी वाणी बोलते हैं, जो हृदय को जलाती है। भंवर, कुरंग, काग और कोकिल—ये कपटियों की चटसार हैं। कमल नैन कृष्ण मधुपुरी चले गए अतः मंगल तो मिट ही गया। दोष भी किसको दिया जाय ? विधि ने जो कुछ लिलार में लिख दिया, उसे भोगना ही पड़ेगा। यह करतूत केवल उन्हीं की नहीं है, पहले भी ऐसा ही हो चुका है। बादल की काली घटा देखने में तो बड़ी भली लगती है, सरिता-सर का पोषण भी कर देती है, किन्तु चातक बेचारा रटता ही रह जाता है' (४३६७)। गोपियाँ ऊधौ से कहती हैं—'हे ऊधौ ! कृष्ण को छोड़कर आकाश भजने की बात आप कर रहे हैं और हम सुन रही हैं तथा ऐसा कहते-सुनते दोनों के प्राण शरीर में ही हैं—इससे तो सिद्ध होता है कि न हम उनकी विरहिणी हैं और न आप उनके दास। विरहिणी मीन है, जो जल छोड़ते ही जीवन की आशा छोड़कर शरीर त्याग देती है और दास पपीहा है, जो प्यासा भले मर जाय, किन्तु अपना भाव नहीं छोड़ता। कमल सरोवर में बिहार करता है, सूर्य ने उस जल को सुखा दिया, फिर भी कमल सूर्य का दोष नहीं मानता चन्द्रमा से ही वह सदा उदास रहता है सच्ची प्रीति का पालन दशरथ ने किया, जो प्रियतम

राम के बन जाते ही जगत का उपहास मेटकर प्राण त्याग दिया' (४४२१)। एक गोपी दूसरी को प्रबोध दे रही है कि 'अपने सगुण गोपाल को इस तरह क्यों दे रही हो ? ऊधो की इन मीठी बातों से निर्गुण कैसे ले रही हो ? ऊधो तो मुक्ति समेत सारे सुख और अर्थ, धर्म, काम की चर्चा सुना रहे हैं, किन्तु चित्त में चेतकर देखो मन का लड्डू खाने से किसकी भूख मिटी है ? जिसे मोक्ष कहा जाता है, बेद उसी को 'नेति-नेति' कहते हैं। अतः हे मधुप ! तुम्हारे लिए कृष्ण को छोड़कर कौन भुस फटके' (४४७९) ? 'मधुकर ! योग की बात अपने पास रखो, कृष्ण की कथा कहकर हमारा गात शीतल करो। जो निर्गुण, गुणहीन है, उसकी बात सुनकर गोपियाँ अकुला रही हैं। बड़ी नदी को कागज की नौका पर चढ़कर पार करते किसने देखा है ? हमारे शरीर और अपने वस्त्र को चेतकर, देखकर लात पसारिए' (४५११)। गोपियाँ ऊधौ से कहती है 'हे ऊधो ! आपकी बातों को यहाँ कोई बुरा नहीं मानता। हे मधुप ! रस की बात रसिक ही जान सकता है—नीरस भला क्या जाने ? मेढक जीवन भर कमल के पास ही रहता है, किन्तु रस नहीं पहचान पाता। भंवर अनुराग बाँधकर उड़ता फिरता है, निन्दा को कान से भी नहीं सुनता। सरिता सागर से मिलने के लिए चलती है तो रास्ते के सभी द्रुम गिरा देती है। कायर बकता ही है रणभूमि से भागता है जो सम्मुख लड़े, वही सच्चा सूर है' (४५७८)। इन उदाहरणों में बड़े सुन्दर, मार्मिक और भावबोधक दृष्टान्त दिए गए हैं।

उदाहरण

गोपियाँ कहती हैं 'कृष्ण के दर्शन की साध मर गई। हम नेत्रों के साथ उड़ी-उड़ी फिर रही हैं, जैसे फल फूटने पर आक की रुई उड़ती है। न जाने कहाँ से वह मूर्ति मन में उई चली आ रही है। अदर्शन की व्यथा से विरहिणी जल रही हैं, छुआ भी नहीं जाता। कहती कुछ है, निकलता कुछ है, प्रेम पुलक के कारण प्रस्वेद चू रहा है। ऐसी गोपियाँ सूख रही हैं, जैसे बिना वर्षा के धान का अंकुर सूखता है' (२४७२)। नेत्र गोपियों के पास से भागकर चले गए 'जैसे कोई जलता हुआ घर छोड़कर भाग जाए और पीछे मुड़कर भी न देखे। वे कृष्ण मे दूध और पानी की तरह मिल गए हैं, उन्हें कौन अलग कर सकता है' (२२६८) ? इसी प्रकार 'भ्रमरगीत' में ऊधौ के स्वभाव का वर्णन अनेक उदाहरणों द्वारा इस प्रकार किया गया है—'जो जिसकी प्रकृति हो गई वह कहाँ छूटती है ? कोई कितना भी क्यों न करे, लेकिन कुत्ते की दुम सीधी नहीं हो सकती। कौवे ने जन्म की घड़ी से ही जो भक्ष अपना लिया, उसे कैसे छोड़ सकता है ? काली कमरी को कितना ही क्यों न धोया जाय, लेकिन उसका रंग नहीं छूट सकता। डंसने से साँप का पेट नहीं भरता है, लेकिन डसना उसका स्वभाव ही हो गया

है (४१४४)।' हे ऊधौ ! आप घर के ही बाढ़े हैं, आप बावरे अनख्योगे अलिही तो हैं। अभी तक आप प्रीति-वियोग में नहीं पड़े हैं, क्या जानें ? सिंह का तो यही स्वभाव है कि वह मर भले ही जाय, पर तिनका नहीं चरता। जिनके कान मुरली सुधा से पोषित हैं, उन्हें योग का जहर मत खिलाइए। आप हमें सीख क्या देते हैं, कृष्ण के बिना हमें अन्यत्र ठांव नहीं है ? आप स्पर्श से शाल्मलि नदी में नाव चला रहे हैं' (४२३४)। गोपियाँ ऊधौ से कहती हैं कि 'हे ऊधौ ! आप हमें निर्गुण का उपदेश देने चले हैं, जो हमें सुहाता भी नहीं। आप कच्चे सूत से तृण बाँध रहे हैं अथवा कमलनाल के रेशे से मस्त हाथी बाँधना चाहते हैं (४२२४)।

सन्देह

कृष्ण में गोपियों की तन्मयता का वर्णन किया जा रहा है—'गोपियाँ लज्जा छोड़कर श्याम-रङ्ग में भूल गई हैं, मानो पूर्ण मुखचन्द्र को देखकर कुमुदिनहँ फूल गई अथवा नवजलद में चातक ने मन लगाया है, अथवा स्वाति-बूँद पड़ जाने से सीपी हर्षित हो रही है, अथवा सूर्य को देखकर कमल विकसित हो रहा अथवा चक्रवाक को देखकर चकई प्रसन्न हो रही है, अथवा वंशीध्वनि में मृगयूथ रीझ रहे हैं' (१२६०)। श्याम-अधरों की लालिमा के लिए एक सखी दूसरी से कहती है—'सखी ! अधरों की लाली देखो। बनमाली का सुभग कलेवर मरकत मणि जैसा है, मानो प्रातः की काली घटा पर अरुण प्रकाश पड़ रहा हो और पीले वस्त्रों के बीच में बिजली चमक रही हो। अथवा तरुण तमाल पर बेलि चढ़ गई है और दो पके बिम्बाफल लगे हैं, नासा रूपी कीट आकर बैठ गया है, किन्तु फल लेते नहीं बनता। दाँतों की शोभा के लिए हृदय में एक उपमा उठती है। मानों नीलमणि पुट में मुक्तागण पर सिन्दूर बिखेर दिया गया हो, अथवा लाल नगों पर वज्रकण खचित हों और उन पर विद्रुम की पंक्ति फैली हो, अथवा सुभग बन्धूक पुष्प के नीचे जलकण की पंक्ति झलक रही हो, अथवा अरुणिमा के भीतर सुन्दरता ही आकर बैठ गई हो' (२४५०)। इसी प्रकार बादल और कृष्ण का भी सन्देहात्मक वर्णन किया गया है—'यह कन्धर (मेघ) है अथवा मयूर पक्षधारी' कृष्ण। बकपंक्ति है अथवा मोतीमाला, मोर है अथवा मुकुट का मोरपंख, इन्द्रधनुष है अथवा पीताम्बर, बादलों की मन्द गर्जना है अथवा नूपुर ध्वनि, बादल है अथवा श्याम शरीर' (२६७५)।

अर्थान्तरन्यास

गोपियाँ बिना सोचे-समझे कृष्ण से मन लगा बैठीं। गोपियाँ कहती हैं 'प्रीति करते समय नहीं हटकी अब तो बट के बीज की तरह बात फैल गई। पर

घर यही निन्दा चल रही है, हर व्यक्ति यही बात कर रहा है। मैंने तो यह सब सहा, लोकलाज को पटक दिया, मदमस्त हाथी के समान प्रेम में लटकी फिरी। हमारी दशा तो कला दिखाते हुए खेल में चूके नट जैसी है। रसना हरि रट लगाए है। जल और रस्सी मिलकर गांठ पड़ गई है। ऐसी भीगी गांठ भला कैसे छूटे ? प्रेम की ऐसी टटकी छाप पड़ गई है, जो मिटाने पर नहीं मिटती' (२२७८)। सुरति के बाद आती हुई राधा से गोपी पूँछ-तांछ करती है। राधा आना-कानी करती, किन्तु भेद अपने-आप प्रकट हो जाता है 'सुगन्ध की चोरी भी भला कहीं छिपती है' (२११६)। सखियों से राधा दुराव करती है, जिस पर सखियाँ कहती हैं औरों से दुराव करती तब तो सयानी कही जाती हमसे दुराव करने में क्या सयानप है ? दाई के आगे कहीं पेट दुराया जाता है ? हमारे सामने तो दूध और पानी का पानी हो जायेगा' (२१४१)। ऊधौ के योग उपदेश के लिए गोपियाँ कहती हैं 'जिसको विरह-व्यथा है, उसके लिए परमार्थ का उपचार कर रहे हो, जिसको राजयोग और कफ व्याप्त हो, उसे दही खिला रहे हो' (४३४२)।

प्रतीप

इस अलंकार का भी अनेक बार प्रयोग हुआ है। 'ऐ सखी ! हरि की चंचल पुतलियाँ देखो। कमल और मीन में इतनी छवि कहाँ है। खंजन भी इनकी बराबरी नहीं कर सकते' (२४१५)। गोपियाँ ही आपस में कहती है—'हरि के चंचल नेत्र देखो। खंजन, मीन और मृगज में इतनी चपलता कहाँ। राजीव, इन्दीवर, शतदल और कुशेशय— ये सब तो दिन में विकसित रहते है, किन्तु रात में कुम्हिला जाते हैं, किन्तु ये नेत्र तो रात-दिन विकसित रहते हैं' (२४३१)।

निदर्शना

कालिय नाग ने कृष्ण को लपेट लिया, किन्तु ज्यों ही कृष्ण ने अपने शरीर का विस्तार किया, कालिय के अंग पटपटा कर टूटने लगे और वह भगवत्-शरण की पुकार करने लगा जिसे सुनकर करुणामय कृष्ण तुरन्त सकुचा गए। 'द्रौपदी के मुख से यही वाणी सुनकर हरि ने उसके वस्त्र को बढ़ा दिया था। यही वाणी गजराज ने सुनाया था, भगवान् गरुड़ छोड़कर दौड़ पड़े थे। यही वाणी सुन-कर लाक्षागृह में जलते हुये पाण्डवों को बचाया था। प्रभु ऐसे परम कृपालु है कि यह वाणी उनसे सुनी नहीं जाती' (११७४)। ब्रजवासी खड़े हुए देख रहे हैं। अहि-नारी हाथ जोड़कर विनय कर रही है और कहती है—'अविनाशी ! तुम धन्य हो। जिन चरण-कमलों को रमा हृदय पर रखती हैं, जिन चरणों के स्पर्श से भूतल पर गंगा आई और जो चरण-कमल शंभु की संपत्ति हैं, उन्हीं चरणों को कृष्ण फन पर रखे है। जिन चरणों के स्पर्श से शिला का उद्धार हो गया, पाण्डव पुनः घर वापस आ गए, जिन चरणों ने भजन की महिमा से प्रहलाद को बचाया, जो चरण ब्रज

युवतियों के लिए सुखदाई है और जिन चरणों से वामनावतार में तीनों भुवनों को नाप लिया, उन्हीं चरणों को प्रत्येक फन पर रखकर नृत्य करते हुए कृष्ण ने अहि को पावन कर दिया' (११८६)।

तुल्ययोगिता

कृष्ण ने व्रज में इन्द्र की पूजा बन्द करके गोवर्द्धन की पूजा चलाई, जिससे कुपित होकर व्रज में प्रलय कर देने के लिए इन्द्र ने बादलों को भेज दिया। उधर बादल हैं और इधर बादल जैसे कृष्ण।' दोनों और घन छाए हुए दिखाई दे रहे हैं। उधर बादल इन्द्र के वश में हैं और इधर कृष्ण भक्त के वश में—दोनों क्रोधित हो रन में आ गए हैं। उधर इन्द्र धनुष है इधर मोरचन्द्र, उधर बिजली है इधर पीताम्बर। उधर बादलों के सेनापति जल बरसा रहे हैं, इधर अमृत धारा' (१६०१)। इसी प्रकार गोपियाँ आपस में कह रही हैं 'ऊधौ की मीठी बातों में क्यों भूल रही हो। ऐ सखी! ये भी तो उन्हीं के साथी हैं, इनका भी गात श्याम है और चित चंचल है। वे मुरली-ध्वनि से जग-मन मोहित करते हैं, ये गुंजार से फूल, पराग और पत्तों को मोहित करते हैं। वे द्विपद-चतुर्भुज हैं, ये षट्पद हैं, किसी प्रकार का भेद दोनों में नहीं है। वे रात में मानिनी नायिकाओं के घर पर निवास करते है, ये भी रात नव-जलजातों में काटते हैं। वे प्रातः उठकर अन्यत्र मनोरंजन करते हैं, ये प्रातः अन्यत्र रसमग्न हो जाते हैं। दोनों स्वार्थनिपुण और सधरस भोगी हैं। इनका विश्वास करने लायक नहीं है, ये विरह-दुःख देने वाले हैं। वे माधव हैं, ये मधुप हैं। घात में दोनों में कोई घटकर नहीं है' (४३७८)।

व्यतिरेक

ये वृषभानु-सुता! तू धन्य है, बड़भागिनी है 'और स्त्रियाँ नख से शिख तक शृंगार करके भी तुम्हारे स्वाभाविक रूप की बराबरी नहीं कर सकतीं। रति, रंभा उर्वशी, लक्ष्मी तुम्हें देखकर ही सुख जाती हैं। ये स्त्रियाँ सुहागिन नहीं हैं, किन्तु तू कंत-पियारी है। तुम्हारी सुन्दरता धन्य है, तुम-सी दूसरी स्त्री नहीं है (२०६२)। 'नेत्रों की उपमा कुछ भी नहीं रह गई। कविजन कितनी सुधि करते हैं, लेकिन फिर भी कोई उपमा नहीं सूझती। इन्हें चकोर कहा जाय तो भी ठीक नहीं, क्योंकि चकोर बिना चन्द्रमा के जीवित नहीं रह सकता, किन्तु ये नेत्र तो बिना कृष्ण-चन्द्र के जीवित हैं। भ्रमर कहा जाय, तो भी ठीक नहीं क्योंकि भ्रमर तो उड़ता है, किन्तु ये उड़ नहीं पाते। इन्हें मृग कहा जाय तो भी ठीक नहीं क्योंकि मृग तो भाग खड़े होते हैं, किन्तु ये ऊधौ वधिक के आने पर भी नहीं भाग पा रहे है। खंजन कहा जाय तो भी ठीक नहीं, क्योंकि खंजन उड़ जाता है, किन्तु ये उड़कर कृष्ण के पास नहीं पहुँच पाते। इन्हें मीन कहा जाय तो कुछ ठीक है

क्योंकि मीन की तरह ये भी जल कभी नहीं छोड़ते ४१९०

अपह्नुति

'ऐ काम ! यह सुन्दरी है, शङ्कर नहीं, अतः इसे मत बधो। यह मोती-माला है, गंगा नहीं। भाल पर तिलक है, चन्द्रमा नहीं। ग्रथित कबरी है, साँप नाग, चन्दन है, भस्म नहीं, मृगमद है, विष नहीं, काली कंचुकी है, गजचर्म नहीं। समझ-बूझकर देखो नन्दी कहाँ है' (२७३५) ?

प्रतिवस्तूपमा

गोपियाँ कह रही हैं 'नेत्र हमारे हाथ में नहीं रहे। कृष्ण को देखते ही जल की तरह दौड़ पड़ते हैं। जैसे जल नीचे की ओर ही दौड़ता है, वैसे ही ये नेत्र भी हो गए हैं। जल, समुद्र में जाकर समा जाता है, ये कृष्ण के अंग-प्रत्यंग में समा जाते हैं। जल अगाध है, आर-पार समुद्र में आ मिले हैं' (२८४८)।

उल्लेख

नागरी गोपियाँ कृष्ण के अंग-प्रत्यंग को निरख रही है, दृष्टि रोमावली पर टिक गई, जो देखते नहीं बनती। 'कोई कहती है यह काम की सरनी है, कोई कहती है वैसी भी नहीं है। कोई कहती है कि काम ने सांप भेजा है, किसी को डस न ले' (१२५४)।

सम्भावना

गोपी ने कृष्ण का प्रथम दर्शन किया। वह कहती है कि 'कृष्ण के अंग-हृदय, बाहु, कर, अंस, मुख, अधर, दसन, रसना, नैन, भाल सब अत्यन्त सुन्दर है। 'ऐसे गोपाल को तभी देखते बनता, जब विधाता प्रत्येक रोम में एक-एक लोचन देता' (१२६१)।

विभावना

गोपियाँ कहती हैं 'ये हमारे नेत्र अत्यन्त ढीठ हो गए हैं, हम तो कुलकानि किये रहती हैं' किन्तु ये ढुताई करते हैं। यद्यपि वे, उधर समर-बल में कुशल है, इधर ये अत्यन्त निर्बल हैं, तथापि पलकों के वस्त्र को तोड़कर पहुँच जाते हैं और जूझते हुए हार भी नहीं मानते' (२६६०)। गोपियाँ हो ऊधौ से कहती हैं—'हे ऊधौ ! ये आँखें अत्यन्त अनुरागी हैं। एकटक रास्ता देखती हैं, रोती हैं, भूलकर भी पलक नहीं लगती। आप भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बिना पावस के ही इन आँखों ने झड़ी लगा रक्खी है' (४१६४)।

अन्योक्ति

अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग मुख्यरूप से 'भ्रमरगीत' में हुआ है, जहाँ गोपियाँ ऊधौ को भ्रमर मानकर अपना तर्क प्रस्तुत करती हैं। भ्रमर सम्बन्धी ये सभी उक्तियाँ अन्योक्ति के अन्तर्गत आती हैं। कुछ मुख्य उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए

और कोयल की वाणी नहीं सुनूँगी, नेत्रों से काले बादल को नहीं देखूँगी तथा
हाथ में नील कमल नहीं धारण करूँगी, क्योंकि इन सबको श्याम सरीखा काला
मानती हूँ' (३३१८)।

सूक्ष्म

सूक्ष्म अलंकार यद्यपि एक युक्ति मात्र है, क्रीड़ा है, किन्तु इससे भी भाव का
संकेत तो होता ही है। प्रेम के विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिए इस अलंकार
का प्रयोग हुआ है। 'सूरसागर' में आए हुए ये अलंकार इस प्रकार है---बेंदी
सँवारना, पाग मसकना, हाथी के कमल को हृदय पर रखना, कमल को गले
लगाना (१४९६), चरण छूकर आँखों से लगाना, भुजाओं के द्वारा गोद में भरना,
हाथ के कमल को अधर से छुवाना (१४९७) आँचल से पुष्प दिखाना, हाथ से सिर
छूना (३२२०) चन्द्रमा की ओर देखना, भूमि पर तीन रेखा खींचना, मुख में
अंगुली डालना (३२२१) और तृन तोड़कर दिखाना (४८३२)।

इन उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त भी 'सूरसागर' में छोटे-बड़े अलंकारों
के और भी अनेक जीव-जन्तु उलथा लगा रहे हैं। ये द्रोपदी के चीर के समान असीम
है। इनकी गणना कराना सिर के बाल गिनाना है।

(ग) प्रयुक्त अलंकारों का वैज्ञानिक आधार

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'सूरसागर' में प्रयुक्त समस्त अलंकारों को तीन वर्गों
में रखा जा सकता है—सादृश्य या साम्यमूलक अलंकार और विरोधमूलक
अलंकार। इनमें साम्य भावना सबसे प्रबल है, इसीलिए साम्यमूलक अलंकारों की
संख्या सर्वाधिक है। सादृश्य का आधार आकार, गुण या ध्वनि होता है। इन्हें
रूप, धर्म और प्रभाव भी कहा गया है, किन्तु 'सूरसागर' में इन साम्यों के
अतिरिक्त कल्पनामूलक और व्यंग्यमूलक साम्य भी दिखाई देते हैं। आकार साम्य
में व्यक्ति या वस्तु के आकार और रूप की समानता प्रदर्शित की जाती है, गुण-
साम्य में गुण या धर्म की समानता दिखाना अभीष्ट होता है, ध्वनि साम्य में प्रभाव
या प्रतिक्रिया का साम्य प्रस्तुत किया जाता है, कल्पनामूलक साम्य में साम्य का
आधार सांसारिक सत्य न होकर काल्पनिक और कवि प्रतिभा-जन्य होता है तथा
व्यंग्यमूलक साम्य में उपमेय और उपमान के भीतर सन्निहित व्यंजना में समानता
दृष्टिगोचर होती है।

आकार या रूपसाम्य

'सूरसागर' में असंख्य आलंकारिक योजनाएँ रूप साम्य के आधार पर की
गई हैं। मात्र आकार साम्य पर की गई आलंकारिक योजना नीरस होती है। जैसे
'मुख से खरी-खरे परखे गए जो चन्द्रमा के समान थे (१५२६), 'चन्द्रमा के समान

जा रहे हैं। गोपियाँ कहती हैं 'हे मधुप ! हम वे बेलि नहीं है, जिनसे प्रेम करके तुम अन्य फूलों में रसकेलि करते हो। बचपन से ही हमें प्रिय ने अपने हाथों से पोषा है और सींचकर बढ़ाया है। बिना प्रिय के स्पर्श से प्रातः फूलने में हित की हानि होती है। वृन्दावन की ये बिरही बेलें श्याम-तमाल से उलझी हैं। हमारे प्रेम-पुष्प के रस-बास में गोपाल मधुप विलास करते है, हम रूप की डार को इस दृढ़ता से पकड़े है कि योग-समीर से हिल-डुल नहीं सकती' (४१८६)। हम श्रीगोपाल में अनुरक्त हैं, अपने हृदय से पराग का त्याग नहीं कर सकती' (४१८६)। 'हे मधुकर ! तुम लोग रस-लम्पट हो। अपने तो सदा कमल-कोष के वश में रहते हो और हमें योग सिखा रहे हो। तुम अपने कार्य के लिये-वन के भीतर घूमते हुए क्षणभर के लिए भी आकुल नहीं होते, किन्तु पुष्प के झड़ जाने पर लताओं के निकट भूलकर भी नहीं जाते' (४५६६)। 'हे मधुप ! आपकी यही पहचान है। फूल की कानि की परवाह किए बिना सुगन्ध-रस लेकर अन्यत्र जा बैठते हो। विपिन-वाटिका में बहुत से पुष्प है, उनमें से एक कुम्हिला ही गया तो तुम्हारी क्या हानि हुई ? वहाँ अनगिनत पुष्प तो फूले ही है' (४६०१)। इन पदों की अन्योक्तियों में कृष्णपूरक अर्थ भी छिपा हुआ है।

विषम

कुब्जा और कृष्ण के साथ के लिए गोपियाँ कहती हैं—'हंस और काग का साथ हो गया है। कहाँ गोकुल और कहाँ गोपी-गोपी, विधि ने यह साथ दे दिया। जैसे कंचन और कांच का साथ या चन्दन, दुर्गन्धि का साथ। यह संधि तो ऐसी हुई है, मानो खरी और कपूर एक साथ रख दिये गए हो' (४०३६)। गोपियाँ ऊधौ की उपदेश-शिक्षा के लिए कहती है' हे ऊधौ ! आपकी उल्टी रीति सुने, ऐसा कौन है ? हे शठ ! अल्पवयस्का गोपियों को कहीं योग शोभा देता है ? यह तो वैसे ही है, जैसे बूची का खुभी पहनना, अंधरी का काजल देना, नकटी का बेसरि पहनना, मुंडली का पाटी पारना, कोढ़ी का केशर लगाना अथवा बहिरी का पति से परामर्श करना (४१६८)।

मीलित-उन्मीलित

कृष्ण सायंकाल माखन चुराने गए हैं—'सांझ की अंधेरी जानकर कृष्ण, ग्वालिन के घर पहुँच गए। अंधेरे मे उनका श्याम शरीर दिखाई नहीं देता। शरीर के और घर के ऐसे रूप को कौन अलग कर सकता है (८९३) ?'

प्रत्यनीक

गोपी अपनी सखी से कह रही है—'हे सखी ! मैं जब तक जीऊँगी, तब तक गोपाल लाल के घाट पानी भी नहीं पीऊँगी। अंजन नहीं लगाऊँगी, मरकतमणि नहीं धारण करूँगी, शरीर पर मृगमद नहीं लगाऊँगी, हाथ में काला वलय और कटि में काला वस्त्र नहीं धारण करूँगी, कानों से भ्रमर

और कोयल की वाणी नहीं सुनूँगी, नेत्रों से काले बादल को नहीं देखूँगी तथा हाथ में नील कमल नहीं धारण करूँगी, क्योंकि इन सबको श्याम सरीखा काला मानती हूँ' (३३१८)।

सूक्ष्म

सूक्ष्म अलंकार यद्यपि एकमुक्ति मात्र है, क्रीड़ा है, किन्तु इससे भी भाव का संकेत तो होता ही है। प्रेम के विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिए इस अलंकार का प्रयोग हुआ है। 'सूरसागर' में आए हुए ये अलंकार इस प्रकार हैं—बेंदी संवारना, पाग मचकना, हाथी के कमल को हृदय पर रखना, कमल को गले लगाना (४८९६), चरण छूकर आँखों से लगाना, भुजाओं के द्वारा गोद में भरना, हाथ के कमल को अधर से छुवाना (४८९७) आँचल से पुष्प दिखाना, हाथ से सिर छूना (३२२०) चन्द्रमा की ओर देखना, भूमि पर तीन रेखा खींचना, मुख में अंगुली डालना (३२२१) और तृन चीरकर दिखाना (४८३३)।

इन उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त भी 'सूरसागर' में छोटे-बड़े अलंकारों के और भी अनेक जीव-जन्तु उलथा लगा रहे हैं। ये द्रौपदी के चीर के समान असीम हैं। इनकी गणना कराना सिर के बाल गिनाना है।

(ग) प्रयुक्त अलंकारों का वैज्ञानिक आधार

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'सूरसागर' में प्रयुक्त समस्त अलंकारों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—सादृश्य या साम्यमूलक अलंकार और विरोधमूलक अलंकार। इनमें साम्य भावना सबसे प्रबल है, इसीलिए साम्यमूलक अलंकारों की संख्या सर्वाधिक है। सादृश्य का आधार आकार, गुण या ध्वनि होता है। इन्हें रूप, धर्म और प्रभाव भी कहा गया है, किन्तु 'सूरसागर' में इन साम्यों के अतिरिक्त कल्पनामूलक और व्यंग्यमूलक साम्य भी दिखाई देते हैं। आकार साम्य में व्यक्ति या वस्तु के आकार और रूप की समानता प्रदर्शित की जाती है, गुण-साम्य में गुण या धर्म की समानता दिखाना अभीष्ट होता है, ध्वनि साम्य में प्रभाव या प्रतिक्रिया का साम्य प्रस्तुत किया जाता है, कल्पनामूलक साम्य में साम्य का आधार सांसारिक सत्य न होकर काल्पनिक और कवि प्रतिभा-जन्य होता है तथा व्यंग्यमूलक साम्य में उपमेय और उपमान के भीतर सन्निहित व्यंजना में समानता दृष्टिगोचर होती है।

आकार या रूपसाम्य

'सूरसागर' में असंख्य आलंकारिक योजनाएँ रूप साम्य के आधार पर की गई हैं मात्र साम्य पर की गई आलंकारिक योजना नीरस होती है जैसे बहुत से दही-बरे परसे गए जो चन्द्रमा के समान थे १५२६, 'चन्द्रमा के समान

सुन्दर अंदर से' (१८३१), 'भृकुटी नव शशि को लज्जित कर रही है' (१९९८), 'मुख पर चंदक मानो महावत है' (२०५७) दोनों भुजाएँ मानो साँप लड़ रहे हो' (२८३६), 'उच्च उरोज मानो यौवन-कोट के कंगूरे है' (३२८६), किन्तु जहां आकार के साथ गुण साम्य भी होता है वहाँ ये आलंकारिक योजनाएँ मधुर हो जाती हैं। जैसे—'नील जलद के समान शरीर है और बन्धूक पुष्प के समान चरण' (७२३), कृष्ण के सिर पर रंग-बिरंगी कुलही सुशोभित हो रही है, मानो घन के ऊपर इन्द्रधनुष हो' (७ ६) 'सिर पर वेणी की शोभा इस प्रकार है मानो मुख चन्द्र का अमृत पीने के लिए सांप आ गया हो' (२७३२) आदि।

गुण या धर्म साम्य

'सूरसागर' के अनेक अलंकार वस्तु या व्यक्ति के गुण, धर्म के आधार पर आधारित है। 'ललिता की चरणतली बिडाल-रसना के समान अरुण और रुचिर है' (१८१५), 'मांखन मथकर मालपुआ बनाया गया जो राहु शशि सूर्य के रंग का है' (१८३१), 'कृष्ण के चंचल नेत्रों को देखो, खंजन, मीन और मृगशावक की चंचलता इनकी बराबरी क्या करेगी' (२४३१) ? इसी प्रकार नेत्रों को पखेरू (२८९०), भृंग (२८९५), बटपारी (२९०८), सुभट (२९०८), सुभट (२९०६), चोर (२९१८) आदि कहने में भी मात्र धर्मसाम्य ही है। 'गोपियाँ नेत्रों के साथ, फूटे आक-फल की रुई के समान उड़ रही है' (२४७३), 'नेत्र, बोहि के काग हो गए, उड़ने पर समुद्र का आर-पार नहीं पाते, अतः पुनः आकार उसी पर बैठते है' (२९३०), 'तुम्हारे चरण-चिन्ह किसलय-कुसुम पराग हैं अथवा जल के फेन है' (३२०३) आदि। इसी प्रकार के और भी बहुत से उदाहरण जुटाए जा सकते है।

प्रभाव या ध्वनिसाम्य

अनेक साम्यमूलक अलंकार केवल प्रभाव साम्य पर ग्रहीत हुए हैं। 'बनवास से लौटे हुए राम का मलिन शरीर मानो अग्नि ने जला हुआ गंगा का तट है' (६१४)। 'माई ! सुन्दरता का सागर देखो। नागर मन भी बुद्धि-विवेक के बल पर पार नहीं पाता, अपितु मग्न हो जाता है। कृष्ण का सांवला शरीर ही अगाध जल है, पीताम्बर, सागर में उठने वाली तरंग है और कृष्ण की चितवन ही सागर की भँवर है' (१२४६)।' कृष्ण के श्यामल हृदय पर मोतीमाला सुशोभित हो रही है, मानो पर्वत से गंगा चली आ रही हों, दोनों भुजाएँ तट हैं, भृगुरेख, भंवर है और चंदन ही तरंग है (२७३६)। 'कृष्ण ने प्रीति करके गले में छुरी भोंक दिया। जैसे बधिक पहले तो कपट-कण चुनाता है, किन्तु बाद में बुरी हाल करता है' (३८०३), 'कृष्ण के बिना अंधेरी रात काली नागिन बन गई है. यदि कभी चांदनी रात होती है तो वह मानों नागिन ही डसकर उलटी हो गई है ८९० 'हे ऊधो आपने

आकर बहुत अच्छा किया। विधि-कुलाल ने जिस घड़े को कच्चा रक्खा था, उसको आपने आकर पका दिया।' (४२६६)।

कल्पनामूलक साम्य

सूर के साम्यमूलक अलंकारों में कुछ का साम्य कविकल्पित है, अर्थात् उपमान वास्तविक जगत का न होकर कविकल्पना मात्र है। बालक कृष्ण के विशाल भाल पर मणि लटक रही है और मुख के आस-पास बाल भी लटक रहे हैं मानो अंधकार के समूह, गुरु, शुक्र, शनि और मंगल को आगे करके चन्द्रमा से मिलने आए हों और जननी ने जब पीतपट ओढ़ा दिया तब एक अद्भुत उपमा उपजती है, मानों नीले बादल पर तारे दिखाई दे रहे हों और अपना स्वभाव छोड़कर बिजली भी आ गई हो' (७२२)। भगवान् कृष्ण के हाथ में माखन और रोटी सुशोभित है, 'मानों कमल ने चन्द्रमा से अपना बैर समझकर रोटी को पकड़ लिया हो' (७८०)। कृष्ण के कानों में बाली दमक रही है, मानों इन्द्र ने कृष्ण के पास बलि भेजी है और शुक्र, गुरु मन्त्रणा कर रहे हैं' (८०२)। दोनों आंखों के बीच नासिका सुशोभित है। मानो जल से निकल कर लड़ती हुई दो मछलियों को कीर ने छुड़ा दिया हो' (६७०)। आंख से गिरते हुए अश्रुकणों की शोभा ऐसी है' 'मानो खंजन पक्षी मोती चुग रहा हो और मोती उसकी चोंच में समा न पा रहा हो' (६८४)। गण्डस्थल पर लटकते हुए कुण्डलों की आभा कपोलों पर पड़ रही है' मानो सुधासर में मकर क्रीडा कर रहे हों और चन्द्रमा डोलरहा हो' (१२४५)। कृष्ण का सन्देश सुनकर गोपियों के नेत्र उमड़ चले। मुख और कुचों के बीच जलधारा बढ़ चली 'मानों दो सनाल कमल चन्द्रमा के साथ सुमेरु-शृंग से जा मिले हों' (४७३०)। कृष्ण के शरीर पर पीताम्बर, सिर पर मुकुट और उर पर माला सुशोभित है' मानों बादल, बिजली और तारे एक साथ प्रकट हो गए हों' (४७८२)।

व्यंग्यमूलक साम्य

कुछ साम्यमूलक अलंकारों में मात्र व्यंग्य या व्यंजना का आधार है। व्यंग्य साम्य के उदाहरण मुख्यरूप से भ्रमरगीत में मिलते हैं, क्योंकि पूरा भ्रमरगीत व्यंग्य और कटाक्ष ही तो है। गोपियाँ जमुना का वर्णन विरहिणी के सांगरूपक द्वारा करती हैं और अन्त में कहती हैं' जो गति जमुना की है वही गति हमारी भी है' (३८०६)। इसी तरह गोपियाँ आगे कहती हैं 'प्रीति के फन्दे में कोई मत पड़े। चातक, स्वाती को किस आदर से देखता है, लेकिन वही स्वाती पपीहे का प्राण ले लेती है। पतंग ने क्या उठा रक्खा, लेकिन अन्त में प्राण त्यागना पड़ा। भौरा केतकी से कितना प्रेम करता है? मृग, वंशी में तन्मय होकर मृत्यु से भी ोे डरता ३६०५ इसी प्रकार पद ३६०८, ४१ ७ के अनन्य प्रम में भी

व्यंग्य साम्य है । गोपियाँ ऊधो से कहती हैं 'मधुबन के लोगों को कौन पतियाय ? मुख से कुछ कहते हैं, अन्तर में कुछ रहता है, बना बनाकर पाती भेजते हैं । कौवा कोयल के बच्चे को खिला-पिलाकर पालता है किन्तु बसन्त आने पर कोयल के बच्चे कुहुक कर अपने कुल में जा मिलते हैं । भ्रमर कमल का रस तो चख लेता है, किन्तु फिर लौटकर बात भी नहीं पूछता । जितने भी काले शरीर वाले हैं, उनसे क्या सगापन' (४२५७) । 'कृष्ण का स्वभाव तो जल जैसा है, जो खोरी में ही दौड़ता है । ऊँचा स्थान जानकर भी नहीं सकुचता, वहाँ भी उमंगकर पसर जाता है' (४२३४) । यहाँ व्यंग्य कृष्ण का कुब्जा-प्रेम है ।' 'कृष्ण और कुब्जा की जोड़ी क्या है, जैसे राजहंस और काग की जोड़ी' (४२७०) । इन्हीं साम्यों के मनोवैज्ञानिक आधार पर साम्यमूलक अलंकारों का सृजन हुआ है ।

अतिशयमूलक अलंकार

इस वर्ग के अन्तर्गत वे अलंकार आते हैं, जिनमें वर्णन के लिए लाई गई सामग्री अतिरंजनापूर्ण होती है । ऐसे अनेक अलंकार 'सूरसागर' में प्रयुक्त हुए हैं । कवि कहता है' 'यदि पृथ्वी को कागज बनाया जाय, समुद्रों में मसि घोली जाय और गणेश जन्म भर लिखें, तब भी मेरे दोषों की इतिश्री नहीं हो सकती' (१२५) । इसी प्रकार का दूसरा वर्णन हुआ है 'पृथ्वी के कागज पर, सिन्धु की दावात में पर्वतों की स्याही घोलकर सुरतरु की लेखनी बनाकर, मेरे दोषों को लिखते हुए सरस्वती भी हार गई' (१८३) । मन्दोदरी रावण को समझाते हुए राम के क्रोध का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करती है 'जिनके क्रोध से पृथ्वी और आकाश पलट जाते हैं तथा सारे समुद्र का जल सूख जाता है' (५६०) । इसी प्रकार 'मुरली स्तुति' प्रसंग में मुरली के प्रभाव का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन अनेक पदों में हुआ है । 'जब कृष्ण ने अधरों पर मुरली रक्खी, स्थिर चर हो गए और चर, स्थिर, वायु थक गया, जमुना का बहना बन्द हो गया, खग मोहित हो गए, मृगयूथ भूल गया, पशु मुग्ध हो गए और गाएँ मुँह में तृन दबाए भ्रमित खड़ी रह गई' (१२३८) । मुरली-प्रभाव के ऐसे ही अत्युक्तिपूर्ण वर्णन पद १२४१, १२४७, १२६७, १६८१, १६८७, १७९९, १८०१, १८०५, १८६६ में भी हुआ है—'दूती मन ही मन कहती है, चाहे इन्द्र सहित स्वर्ग डोल जाय, कंचन-सुमेरु हिल जाय, सूर्य रात में और चन्द्रमा दिन में निकल आवे, सब नक्षत्र हिलने लगें, धरती फट जाय, शेष का फन डोलने लगे, अचल चल जांय और चल स्थिर हो जांय, किन्तु राधा का मान टल नहीं सकता (३४४२) । विरहिणी गोपियों को रात बहुत खलती है, अतः चन्द्रमा को तेजी से भगाने के लिए आंचल पर श्वान का चित्र बनाकर चन्द्रमा को दिखाती हैं जिससे चन्द्रमा का वाहन हिरन भयभीत होकर भाग चले ३८९१

भ्रमरगीत' में गोपियाँ ऊधो से कहती हैं 'संदेशों से तो कूप भर गए, कागज जल गए मेघों की स्याही समाप्त हो गई और सरकण्डे दावाग्नि से जल गए' (३६१८)। इसी प्रकार गोपियाँ आपस में कहती हैं—'सखी। वीणा का धारण करना दूर करो, क्योंकि इससे मृग मोहित हो जाते है, रुक जाते हैं, जिससे चन्द्रमा ढलता नहीं, (३६७५)। गोपियाँ अपने अडिग प्रेम के लिए कहती हैं—'इस तन की त्वचा काट कर यदि दुन्दुभी मढ़ाई जाय तो उससे भी कान्हा का ही सप्तस्वर निकलेगा। प्राण निकलने पर जहाँ उनकी माटी बनाई जायगी, उस स्थान पर जो वृक्ष लगाया जायगा, उसके पत्त, फूल और शाखा सब प्रातः उठते ही कृष्ण का नाम लेंगे' (४४२५)। विरह में कृशता के वर्णन के लिए कंगन का टाड़ हो जाना (४६७८), कंगन, मुद्रिका, टाड़ का गिर जाना (४७३३) आदि कहा गया है। इसी प्रकार विरहिणी गोपियों का एक बड़ा मार्मिक चित्रण इस प्रकार हुआ है—'गोपियाँ कोयल उड़ाने के लिए हाथ उठाती हैं तो कंगन गिर जाता है और कृशता के कारण मुख से वाणी नहीं निकलती। चन्द्रमा की शंका से रात में जालियों पर वस्त्र सी देती हैं, जिससे चाँदनी अन्दर न आ सके। विरह की ऊष्मा को बुझाने के लिए दिशा-दिशा से आती हुई शीतल वायु को आँचल उठाकर रोकती है। मृगमद और मलय के स्पर्श से इस भाँति तड़पती है मानों विषम विष पी लिया हो' (४७३६)। इसी प्रकार के और भी अनेक अतिरंजनापूर्ण वर्णन 'सूरसागर' में ढूंढे जा सकते हैं।

विरोधमूलक अलंकार

भावों की अभिव्यक्ति के लिए कुछ विरोधमूलक अलंकार भी अपनाए गए हैं। 'जिसकी कृपा से पंगु गिरि लांघ जाता है, अन्धा सब कुछ देखने लगता है, बहिरा सुनने लगता है, गूंगा बोलने लगता है, रंक सिर पर छत्र धारण करके चलने लगता है, ऐसे स्वामी के चरणों की बारम्बार वन्दना करता हूँ' (१)। भगवान् के प्रभाव का ऐसा ही वर्णन पद ९५ में भी हुआ है। भगवद्-महिमा का दूसरा चित्र इस प्रकार है—'जिनकी कृपा से रीता भर जाता है, भरा खाली हो जाता है, कभी तो तृण भी जल में डूबने लगता है और कभी शिला भी तैरने लगती है। वे चाहे तो पत्थर पर कमल खिला दें, जल में अग्नि लगा दें, राजा रंक हो जाय (१०५)। कृष्ण की मुरली सुनते ही गोपियाँ उल्टा-सीधा शृंगार करके दौड पडती हैं—'कोई चरणों में हार पहनकर चली, कोई भुजाओं में चौकी, कोई कटि में अंगिया और कोई उर में लहंगा पहनकर चली' (१६०७)। ऐसा ही विरोधात्मक चित्रण पद १६१६, १६१८, और १७९९ में भी हुआ है। राधा के दृढ मान के लिए दूती कहती है 'बांझ चाहे पुत्र पैदा करे, सूखा काठ चाहे पल्लव हो जाय, विफल तरु चाहे फलने लगे और बिना बादल के चाहे वर्षा हो किन्तु राधा अपना मान नहीं छोड सकती (३४४२ 'भ्रमरगीत में गोपियाँ ऊधो से

से कहती हैं 'चुप रहो। जरा पहचानो' तो कहाँ अबलायें और कहाँ दिगम्बर रूप शरम नहीं आती' (४१३९) ? 'हे ऊधौ ! अबलाओं को योग का उपदेश देना वैसा ही है, जैसे—'बूची का खुभी पहनना' अन्धरी का काजल लगाना, नकटी का बेसरि पहनना, कोढ़ी का केसर लगाना अथवा बहिरि का पति से परामर्श करना (४१६८)। ऊधौ का गोपियों को योग का उपदेश देना वैसा ही है जैसे 'गाय को हल में जोतना अथवा बैल को दुहना' (४४९४)। इसी प्रकार के कुछ और भी विरोधात्मक चित्र ढूंढे जा सकते हैं। मन की इन्हीं तीन—साम्य, अतिशय और विरोध, भावना की नींव पर सूर के समस्त अलंकारों का महल खड़ा है।

(घ) प्रयुक्त अलंकारों का प्रयोजन

अलंकार निष्प्रयोजन नहीं लाए जाते, उनके लाने का कुछ विशिष्ट अभिप्राय होता है। सूर ने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, उनका एक निश्चित प्रयोजन है। कवि ने इन अलंकारों द्वारा रूप और वस्तु का चित्रण किया है, गुण और स्वभाव का चित्रण किया है, कार्य-व्यापार का चित्रण किया है तथा भावों या मनोद्वेगों का चित्रण किया है।

रूप और वस्तु चित्रण

प्रयुक्त अलंकारों के द्वारा कवि ने मुख्यतः तीन रूपों का चित्रण किया है—राधा रूप, कृष्ण का रूप और राधा-कृष्ण का सम्मिलित रूप। राधा का रूप इस प्रकार चित्रित हुआ है। 'राधा के गोरे ललाट पर सिन्दूर-बिन्दु सुशोभित है, इस बिन्दु की उपमा चन्द्रमा से देने वाला कवि निन्द कहा जायगा। आलस उनींदे नयन सुहाए लग रहे है, नासिका चम्पकली के समान हैं। स्नान का अंजन धुला हुआ मुख मानों सोलहों कला से पूर्ण पूर्णिमा का चाँद हो। गिरि से लता तो होती है, यह तो हमने भी सुना है किन्तु कंचन लता (राधा शरीर) से दो गिरिवर (कुच) हुए हैं—यह आश्चर्य है। कंचन से शरीर पर नीलाम्बर की साड़ी इस तरह सुशोभित है, मानो कुहू निशा के बीच बिजली चमक रही हो' (१६९४)। किशोरी राधा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—'किशोरी को देखते हुए नयन रिस जाते है। उस मुखारविन्दु की बलि जाता हूं, जिसके सामने चन्द्रमा भी छिप जाता है। पापों को दूर करने वाले लाल नेत्र, मानों कमल खिले हों। नेत्र, कानों के निपट निकट ऐसे सुशोभित हैं मानों पिशुन अपने मन की बात कह रहा हो। गोरे ललाट पर कुंचित केश उलझे हुए हैं मानों कनक-कमल पर मकरन्द पीते हुए भौंरें अघ ने नहीं। बेसरि-वंशी के भ्रम से नेत्र-मीन अकुला रहे है और ताटंक-रूपी कमठ घूंघट के जाल में बंधकर अफना रहे हैं। श्याम कंचुकी में स्वर्ण-कलश समा नहीं रहे है—मानों मन-गयन्द के कुम्भ पर नील ध्वजा फहरा रही हो' (१८२४)। पनघट से मन की गागरी लिए आती हुई राधा का रूप चित्रण हाथी के रूपक द्वारा किया गया है राधा की गति ही गयद है कुच कुम्भ हैं और किंकिणी माना घटा बज

रहा है। मोतियों का हार मदजल है, सुभी ही दांत है, मत्थे का टीका महावत है, रोमावली सूंड है, जो नाभि-सरोवर की ओर दौड़ रही है। पावों की पायल हाथी की जंजीर है, जिसमें वह बंधा है। घट-जल के कण कपोलों पर बिखरे हैं मानों हाथी मद चुना रहा हो। दोनों नितम्बों पर वेणी डोल रही है, मानो हाथी पूंछ डुला रहा हो' (२०५७)। राधा के विभिन्न अंगों का रूप-चित्र इस प्रकार खींचा गया है' राधा की अलक सुशोभित है, मोतियों की माला और तिलक ऐसे लग रहे है, मानों पन्नगी सुत समेत अपना भक्ष्य होने चली हो। श्रमजल से मिलकर कुंकुम की आड़ ऐसी लग रही है मानों पन्नगी द्वारा मधु पीते हुए कुछ छीटें छितरा गए हो। चारु उरजों के ऊपर अलक ऐसी लग रही है मानों अलिकुल कमल कली पर उलझ गए हों। रोमावली त्रिवली से हृदय का स्पर्श कर रही है मानों काम-नट बास पर चढ़ा हो। जांघें विपरीत-कदली जैसी हैं' (२२२१)। राधा के समस्त अंगों का वर्णन कवि बाग के प्रसिद्ध सांगरूपक द्वारा करता है—'एक अद्भुत अनुपम बाग है। दो कमलों पर गज क्रीड़ा कर रहा है और उस पर सिंह अनुराग कर रहा है। सिंह पर सरवर, सरपर गिरिवर और गिरि पर परागयुक्त कंज फूला है। उसके ऊपर रुचिर कपोत बसता है तथा उसके भी ऊपर अमृत फल लगा है। फल पर पुष्प, पुष्प पर पल्लव और उस पर शुक, पिक, मृगमद और काग हैं। उसके भी ऊपर खंजन, धनुष और चन्द्रमा हैं तथा सबसे ऊपर एक मणिधर नाग है' (२७२८)। ललिता कृष्ण से राधा के रूप का वर्णन इस प्रकार करती है - 'हे श्यामसुन्दर! ध्यान देकर वृषभानु कुमारी का रूप वर्णन सुनो। सिर के ऊपर वेणी की शोभा ऐसी है मानों शशि मुख का अमृत पीने के लिए पन्नगी निहार रही हो। ललाट का सिन्दूर मानों सूर्य की किरण अन्धकार को विदीर्ण करके फैली हो। नेत्रों के निकट की विकट भृकुटी, मानो कामदेव ने संसार को जीतने के बाद अपना धनुष उतार कर रख दिया हो। भृकुटियों के बीच सखियों द्वारा बनाई केसर की आड़ मानो सुधा की परी इन्द्रमण्डल में बंधी हो। चंचल नेत्रों के बीच नासिका और अधर सुशोभित है, मानों दो खंजनों के बीच बिम्बाफल का लोभी शुक बैठा हो। लाल गुलाब के बीच कुच ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानों सभी दिशाओं में अग्नि को निर्धूम करके शिव बैठे हों' (२७३२)। सुरति के बाद पुनः शृंगार किए हुए राधा का रूप-वर्णन इस प्रकार हुआ है—'आज राधा अत्यन्त बनी-ठनी है। प्रत्येक अंग कामदेव को जीतकर कृष्ण को रस-बस कर लिये हैं। विचित्र केश मोरशिखा की द्युति को भी दूर कर रहे हैं। सिर के बीचों-बीच माँग ऐसी शोभित है, मानों काम-धाम की सरनी हो। अलक और तिलक सुशोभित हैं तथा ललाट पर मृगमद का अंक बना है। खुभी और जड़ाऊ फूल की द्युति ऐसी है, मानो दो ध्रुव हों। भौहें धनुष के समान हैं और नेत्रकोर मानों बाण हैं। नासिका तिल-प्रसून जैसी, अधर बिम्बाफल जैसे और मुख निर्मल कमल जैसा है। दाँत कुन्दकली जैसे हैं तथा कण्ठ मानों विधि अपनी ग्रीवा उन्नत करके लोकों को देखकर

एक ही सुन्दरी राधा की गणना की हो। भुजा-मृणाल जैसी है, लाल कर पल्लव जैसे और गति मद-गज जैसी है। कुच मानों पति के मन-रूपी मणि को रखने के लिए कनक-संपुट है। रोमराजि तटिनी सदृश है, नाभि भँवर जैसी, त्रिवली तरंग जैसी और आभूषण पुलिन जैसे हैं। कटि कृश है, नितम्ब पृथु हैं और किंकणी युक्त जाँघ कदली-खम्भ जैसी है। आभूषण और शृंगार साजकर वह रतिपति जैसी लगती है' (२८०२)। आभूषण पहन लेने पर राधा का स्वाभाविक रूप और निखर आता है।' सहज रूप की राशि राधिका आभूषणों से और सुशोभित हो रही हैं। मुख, मानों सौरभयुक्त सुधानिधि कनक-लता पर सुशोभित हो रहा हो। सिन्दूर बिन्दु से युक्त जूड़ा मानों अगाध जल हो अथवा मानों बाल रवि की रश्मियों से शंकित होकर अन्धकार का कूट आधा हो गया हो। चारों ओर मोतियों की पंक्ति, बीच में मणि और सिन्दूर-झलक ऐसी सुशोभित हो रही है, मानों अन्धकार के तट पर उगते हुए सूरज को तारागण घेर लिए हों। कर्णफूल मानों कामदेव के रथ के चक्र हैं अथवा श्रवण-कूप की रहट घण्टिका हैं। नासिका की मुक्तानथ में बिम्बाधर प्रतिबिम्बित हो रहा है, मानों कनक में अपनी चोंच में दाड़िम-बीज ग्रहण किए हुए शुक बिंध गया हो' (२०६३)। सेना और युद्ध के रूपक द्वारा भी राधा का रूप-चित्रण किया गया है। 'राधा! तुम्हारे रूप की सेना को देखकर शंकित होकर मानों हरि ने दलबल सहित मनसिज-भूप को भेज दिया हो। चाल ही गज है, नूपुर शृंखला, नीबी ढाल, किंकिणी घंटाघोष तथा कंचुकी और आभूषण ही कवच हैं जिन्हें कुच-बीर कसें हैं। अंचल-ध्वजा को देखकर पिय के मन का धैर्य खिसक जाता है। भौंह-धनुष पर तिलक-बाण का संधान किया है। नेत्रों की चितवन देखकर कृष्ण ने अपना मद-मान छोड़ दिया है। चिकुर ही चंवर है और घूंघट ही छत्र है' (२ ६७)। सज-धजकर चली आती हुई राधा के उदात्त रूप का वर्णन कवि गंगा के रूपक द्वारा करता है 'मानों गिरिवर से गंगा चली आ रही हो। अनुपम अंगों वाली राधा अत्यन्त रमणीय हैं। उनका गोरा शरीर ही गंगा का निर्मल जल है, कटि ही तट है और त्रिबली तरंग। रोमराजि, मानों जमुना मिल रही हों। भ्रूभंग ही गंगा की भँवर हैं। भुजाओं के पुलिन के पास कुच-चक्रवाक बैठे हैं। मुख, नेत्र, कर, चरण ही गंगा में उगे हुए कमल हैं, गुरुगति ही मानों हंस है। मणि, आभूषण रुचिर तीर हैं और मुक्तामय माँग ही गंगा की मध्य धारा है। ऐसी सुर-सरी-राधाकृष्ण-सागर से मिलने चली जा रही है' (३०७२)। दूती कृष्ण का संदेश लेकर मानिनी राधा से कहती है' 'ऐ रसिक राधे! कृष्ण ने कहा है कि उनके नेत्र तुम्हारी दर्शन के लिए तरस रहे हैं। खंजन, मीन, मृग, मधुप के समान तुम्हारे नेत्रों के सामने रम्भा भी लज्जित है, गौरी को संकोच हो रहा है और चन्द्रमा को तुमने रथहीन कर दिया है, क्योंकि उसके रथ के मृग तुम्हारे नेत्रों में आ गए। कुचों के रूप में तुमने सुमेरु को लूट लिया। तुम्हारी माँग ऐसी है मानों मन्दाकिनी को शंकर ने सिर पर धारण किया हो वेणी के रूप में पीठ से तुमने पराया धन

छिपा रक्खा है और शंकर को तुमने हार-हीन बना दिया है' (३३८१)। 'राधे! तुम में रूप की अधिकता है। जो भी उपमा दी जाती है, उसमें तुम्हारी छवि अटती नहीं। कटि के सामने सिंह को संकोच होता है, पेट के सामने सरोवर सूख गया है। मुख के डर से चन्द्रमा घट रहा है, कान्ति के डर से स्वर्ण अपने को अग्नि में भस्म कर रहा है और चम्पा कुम्हिला गया है। नितम्ब के सामने हाथी टूट रहा है, विधि के बनाए हुए ताटंकों के डर से सूर्य पंगु हो गया। केशों से डर कर राहु पाताल में जा छिपा और ग्रीवा के भय से गरुड़ जाकर विष्णु का वाहन बन गया। तुम्हारी गति से भयभीत होकर हंस सरोवर में जा छिपा, गज भाग खड़ा हुआ। नेत्रों से डरकर कमल और मृग भाग खड़े हुए। तुम्हारी वाणी के सामने पिक लज्जित है" (३३९४)। इसी क्रम में आगे कहा गया है—'तेरे बदन को देखकर चन्द्रमा छिप गया, दाँतों की चमक देखकर बिजली छिप गई। कर्णा-भरणों ने सूर्य का चित्त हर लिया। कपोलों की आभा से दर्पण मलीन हो गया और नासिका के भय से शुक ने बन की राह ली। वेणी ने सर्प को मोहित कर लिया तथा कुचों ने अमृत भरे कलशों को मोह लिया। तुम्हारी गति को देखकर ऐरावत थक गया और कटि के भय से सिंह भयभीत।' (३३९५)। विरहिणी राधा के विनष्ट रूप का चित्रण कवि इस भाँति करता है—'बिना माधव के राधा रूप की दशा विपरीत हो गई। मुख से चन्द्रमा की छवि छिप गई, केवल कलंक शेष रह गया। जो अलकें साँप जैसी थीं, अब वे रूखे-सूखे बाल लट-लट जैसे हो गये। शरीर के तरु में वियोग की लपट लग गई, जिससे सुकुमारता नष्ट हो गई। विरह के कारण शरीर की कान्ति नष्ट हो गई, जैसे अधिक आंच लगने से घरिया से सोना बह जाता है। वियोग में राधा की पीठ उल्टे कदली-दल जैसी हो गई, अर्थात् हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई देने लगी। शरीर की सारी सम्पत्ति कृष्ण ने हर लिया और बदले में वियोग-विपत्ति दे गए' (४०२२)। इन उदाहरणों के अतिरिक्त राधा के रूप-चित्रण के सम्बन्ध में पद (२७३६, ३०६४, ३०६५, ३२२९, ३२३१, ३२८१ भी दर्शनीय है। इस प्रकार विविध अलंकारों द्वारा कवि ने राधा के रूप का चित्र हृदय-पटल पर खींचने का सफल और स्तुत्य प्रयास किया है।

कृष्ण के रूप-चित्रण में कवि ने बालक और तरुण कृष्ण के रूपों का चित्रण किया है। आंगन में घुटनों के बल खेलते हुए कृष्ण का रूप इस प्रकार है—'कृष्ण आंगन में घुटनों के बल खेल रहे हैं। नील जलद के समान अभिराम तन को देखकर यशोदा ने कृष्ण और बलराम को बुलाया। नूपुर कलरव कर रहे हैं, मानों घोंसले रचकर मुनिजन-कलहंसों को शरण दिया हो। कटि में किंकिणी, ग्रीवा में हार तथा बहुत से आभूषण पहने हैं। हृदय में मणिजटित बघनखा धारण किए हैं। चिबुक सुभग है और दांत, अधर, नासिका, कान, कपोल मन को भाने वाले हैं। सुन्दर है और करुणापूरित लोचन मानों कमल हैं। भाल पर लटकन

और चिकुर लटक रहे हैं, मानों अंधकार समूह शुक्र, गुरु, शनि और मंगल को आगे करके चन्द्रमा से मिलने आया हो और जब माता ने पीतपट उढ़ा दिया तब एक अद्भुत उपमा उपजती है, मानों नील जलद में बिजली छिपी हो और स्वभाव छोड़कर तारे भी दिखाई दे रहे हों' (७२२)। 'कृष्ण की सुन्दरता का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? स्वर्णिम आंगन में खेलते हुए कृष्ण को देखकर नेत्र तृप्त हो जाते हैं। कृष्ण के सिर पर रंग-बिरंगी कुलही सुशोभित हो रही है, मानों नवघन के ऊपर इन्द्र ने धनुष चढ़ाया हो। कृष्ण के मुख पर बिखरी हुई अलकें ऐसी लगती है, मानों कमल के ऊपर अलि-समूह विराजमान हो। नील, श्वेत, पीत और लालमणि मुख पर लटक रही है मानों शनि, शुक्र, गुरु और मंगल का समुदाय हो। दूध की दंतुलियों की एक अद्भुत उपमा है, मानों घन में विद्युच्छटा किलकारी मार और रही हो हँस रही हो' (७२६)। 'कृष्ण की बाल छवि का वर्णन कहाँ तक किया जाय ? वे सारे सुखों की सीमा हैं और करोड़ों कामदेव की शोभा दूर करने वाले हैं। भुजाओं की उपमा से हारकर सर्प बिल में, नेत्रों से हारकर कमल जल में और मुख से हारकर चन्द्रमा आकाश में जा छिपा। कोमल मंजु शरीर पर आभूषण इस प्रकार सुशोभित है, मानों अद्भुत फलों से सुशोभित शृंगार का शिशु-तरु हो। घुटनों के बल मणिमय आंगन में चलते हुए, मानों धरती कनक-संपुट के रूप में छवि को भर ले रही हो' (७३७)। कृष्ण कुछ और बड़े हुए, ग्वालों के साथ घूमने फिरने लगे। ऐसे कृष्ण का रूप-चित्रण इस प्रकार है—'विविध बालकों के साथ कृष्ण-विहार कर रहे हैं। डगमगाते हुए पैरों से डोल रहे हैं, अंग धूल-धूसरित है। चलते हुए पाँवों में पैजनी बज रही है, मानों मराल-छौना मधुर वाणी में बोल रहा हो। तनिक सी कटि पर करधनी चमक रही है, मानों कसौटी पर कनक-रेखा खींच दी गई हो। कानों में बाली दमक रही है, मानों दो कमल लहरा रहे हों अथवा मानों इन्द्र ने कृष्ण के पास बलि भेजी है तथा गुरु और शुक्र मंत्रणा कर रहे हों। मुख पर लटकती हुई अलक दूनी शोभा दे रही है मानों चन्द्रमा ने राहु को अपनी गोद में ले लिया हो (८०२)। कृष्ण अपने रस में खेल रहे हैं, ऐसे कृष्ण की शोभा देखकर कामदेव थकित हो रहा है। चरण की शोभा से डरकर अरुणिमा आकाश में जा छिपी। जानु ने करभा की पूरी छवि छीन ली है। दोनों जांघों की तुलना में केले का खंभा भी नहीं उतर सकता। कटि को देखकर सिंह लज्जित हो गया और घने बन में घुस गया। हृदय पर विराजित बघनखे की शोभा कही नहीं जा सकती, मानों बारिद-बारिधर से नवचन्द्र दिखाई दे रहा हो। विशाल उर पर मोतीमाला की उपमा कुछ इस प्रकार है, मानों रात्रि में आकाश में तारे व्याप्त हों। अधर अरुण हैं, नासिका अनुपम है मानों बिम्बाफल लेने के लिए शुक आ बैठा हो। कुटिल अलकें मानों बिना गूँथे हुए अलि-शिशुओं का जाल हो। प्रभु की ऐसी ललित शोभा को ब्रज-नारियाँ निरख रही हैं'

(८६२)। किशोर कृष्ण का रूप-वर्णन गोपियाँ इस प्रकार करती हैं—'माई! कृष्ण के मुख को देखो। अंग-प्रत्यंग की छवि मानों सूर्य निकले हों। चन्द्रमा और काम लज्जित हो गए हैं। नेत्र, खंजन, मीन, भ्रमर, कमल, मृग से भी सुन्दर हैं। कानों में मकराकृत कुण्डल शोभित हो रहे हैं। नासिका कीर जैसी है, ग्रीवा कपोत जैसी और दाँतों ने दाड़िम की छवि छीन ली है' (१२४४)। 'ऐ सखी! आनन्द-कन्द कृष्ण को देखो। चित-चातक के लिए ये प्रेमघन हैं और नेत्र-चकोरों के लिए चन्द्रमा। गण्डस्थल पर डोलते हुए कुण्डल इस प्रकार झिलमिला रहे हैं मानो सुधा-सर में मकर क्रीड़ा कर रहे हों अथवा कमल डोल रहे हों। मुरली लिए हुए कर मुख के पास इस भाँति सुशोभित हैं मानों दो कमल, भाजन से सुधा भर रहे हों। श्याम शरीर पर दुकूल द्युति और तुलसी माला इस भाँति सुशोभित हो रही है, मानों बिजली और घन के ऊपर बकपंक्ति हो' (१२४५)। रास रचाने वाले कृष्ण का रूप-चित्रण इस प्रकार हुआ है—'मोर का चंदोवा कृष्ण के मुख पर सुशोभित हो रहा है। मुख के ऊपर घुँघराले बाल मानों भौंरे हों। भौंहें धनुष हैं, नेत्र प्रत्यंचा और माथे का तिलक मानों बाण है। भोर होते ही रवि ने मानों अंधकार का संधान किया हो। मणि जटित सुन्दर कुण्डल कपोलों पर सुशोभित है मानो कालिन्दी में सूर्य का प्रतिबिम्ब वायु के कारण हिल-डुल रहा हो। नासिका में मोती की झलमलाती छवि ऐसी है मानों निर्मल आकाश में शुक्र नक्षत्र निकल आया हो। कृष्ण मुख से मृदु वाणी बोलते हैं और अधरों से कुछ-कुछ मुस्काते हैं, मानों पके हुए बिम्बाफल से अनुराग-रस चू रहा हो। बिजली से चमकते हुए दाँतों की शोभा कहते नहीं बनती। दाड़िम भी दाँतों की बराबरी नहीं कर सका, इसीलिए इसका हृदय फट गया। चारु-चिबुक मरकतमणि की द्युति की है। ग्रीवा में त्रिवली सुशोभित है, मानों काम ने रूप की सीमा स्वरूप तीन रेखाएँ खींच दी हों। उन्नत और विशाल हृदय पर मोती का हार सुशोभित है, मानों नीलगिरि से गंगा दो धाराओं में नीचे आ रही हो। चन्दन-चर्चित भुजाएँ विशाल हैं और हाथों से मुख पर मुरली धारण किए हैं, मानों सुधा सरोवर के तट पर दो कलहंस क्रीड़ा कर रहे हों। साँवले शरीर पर स्वर्णिम पीला ऊर्ध्ववस्त्र शोभायमान है मानों आगे-पीछे करके रात और दिन एक साथ आ रहे हों। नाभि अत्यन्त गहरी सुधा-सरसी है और त्रिवली मानों सीढ़ी है। गोपियों के नेत्र-मृगी मानों प्यास से आतुर होकर उसके पास आई हों' (१८२२)। गोपी अपनी सखी से कहती है—'नेत्रों से हरि-रूप देखो। उनके मुख-कमल को जरा ध्यान से देखो। कुटिल केश भ्रमर हैं और नेत्र शरद कमल। मकर-कुण्डल की आभा में मनोज छिपता-फिरता है। अधर, कपोल अरुण हैं, नासिका सुभग है, कुछ-कुछ हँस रहे हैं। दाँत बिजली को और भौंह नवशशि को लज्जित कर रही है। उनका अंग-अंग कामदेव को जीत रहा है (१६२६)।' मोहन का रूप देखते ही आँखों में अनुराग उत्पन्न हो जाता है, मानों चकोर सूर्य से पीयूष पा रहा है। नेत्र कमल

मधुपूरित होने के कारण झुके हुए हैं मानों फाग-ऋतु में मकरन्द पीने के लिए भ्रमर एकत्र हो गए हों। भृकुटी पर कुंकुम और चन्दन-बिन्दु लगा है, मानों चातक चन्द्रमा को देख रहा हो अथवा बादल में इन्द्रधनुष हो। केश कुंचित है, मोरमुकुट धारण किए है और फूलों की पगड़ी बांधे हैं, मानों कामदेव धनुष लिए हुए बन-बाग में वर्षा कर रहा हो। बिम्ब से भी लाल अधरों पर मुरली बज रही है, मानों अमृत-सागर को घेर कर बादल वर्षा कर रहे हों। कपोलों पर कुण्डल की झलक और श्रमबिन्दु सुशोभित हो रहे हैं, मानों शरद्-तड़ाग में मीन और मकर मिलकर क्रीडा कर रहे हों। तिल-प्रसून जैसी नासिका पर चारु चिबुक है, जो चित्त में चुभ रही है। दांत दाड़िम जैसे हैं। मन्द मुस्कान से सुर, नर, नाग सबको मोहित कर लेते हैं' (२३९५)। इसी प्रकार एक गोपी दूसरी से, सुने हुए कृष्ण के रूप का वर्णन इस प्रकार करती है—'सुना है, नन्दकुमार ऐसे हैं। नख को देखकर करोड़ों चन्द्रमा और चरण को देखकर अपार कमल निछावर हो जाते हैं। जानु और जाघ को देखकर हाथी अपनी सूंड़ निछावर कर देता है और उनकी कछनी देखकर लोग प्राण निछावर कर देते हैं। कटि पर सिंह और किंकिणी पर मराल निछावर हो जाते हैं। नाभि पर सरोवर अपने को निछावर कर देता है और रोमावली पर अलिमाल। हृदय की मुक्तामाल देखकर बगपंक्ति निछावर हो जाती है। उंगली और हाथों पर कमल निछावर हैं ऐसी चर्चा जहाँ-तहाँ चल रही है। भुजाओं पर नाग निछावर होकर पाताल में जा छिपा। ग्रीवा इतनी रसाल है कि उसकी उपमा ही नहीं मिलती। चिबुक पर चित्त ही निछावर हो जाता है। कमल जैसे लाल अधरों पर बन्धूक, विद्रुम और बिम्बाफल निछावर होकर बेहाल हो गए। वाणी पर कोकिला और दांतों पर बिजली निछावर हो जाती है नासिका पर कीर और नेत्रों पर कंज, खंजन, मीन, मृगशावक निछावर हो जाते है। भृकुटियों पर इन्द्रधनुष निछावर कर दो, कुण्डलों से तो सूर्य भी हार गए। अलकों पर अन्धकार निछावर है, भाल पर तिलक सुशोभित है। ऐसे कृष्ण सिर मुकुट धारण किए हुए नटवर-वेष धारण किए हुए हैं' (२४५३)। इनके अतिरिक्त कृष्ण के रूप-चित्रण के सम्बन्ध में पद ७२५, ७५४, ७५५, ७७२, १२४६, २३३०, २४३३, २४४२, २४८८, ३०७१ भी दर्शनीय है। जैसे कृष्ण का रूप-वर्णन करते-करते सूर की 'मनसा पंगु' हो गई थी, उसी प्रकार उनके रूप-वर्णनों का उद्घाटन करते-करते हमारी भी मनसा पंगु हो जाती है। सूर के शब्दों में ही कहना पड़ता है—'कहाँ लौं बरनौ सुन्दरताई।'

सूर का तीसरा रूप-चित्रण राधा-कृष्ण का सम्मिलित रूप है। ऐसे चित्र रास और सुरति के प्रसंगों में मिलते है। 'कृष्ण और राधा एक ही रंग में गा रहे हैं। नागरी राधा सुघर आलाप करती है, कृष्ण स्वर भरते हैं, मानों कोकिला ग रही हो मोर लगा रहा हो अथवा मोर के संग चकोर नाच रहा हो।

राधा शरीर मानों चन्द्रिका है और कृष्ण का शरीर मानो बादल। मन-ही-मन सिहाते हुए दोनो परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं। कुचो के बीच केशों की शोभा देखकर कृष्ण हँसते हैं, मानों कंचन गिरि के भीतर अन्धकार व्याप्त हो' (१७०१)। कृष्ण ने राधा का आलिंगन कर लिया, ऐसी शोभा का वर्णन कवि करता है—'कृष्ण ने राधा को भुजाओं में भरकर हृदय से लगा लिया। बाला को विरह-व्याकुल देखकर कृष्ण के दोनों नेत्र भर आए। रात-दिन के बीच ही में दोनों मुरझा गये थे, अब मानों तमाल वृक्ष और कनक-बेलि को सुधा से सींच दिया गया हो और प्रसन्नता से लहराकर मुस्कान के फूल और प्रेम के फल लग गए हों' (१७३७)। 'राधा और कृष्ण दोनों कुंज मे खड़े शोभित हो रहे हैं। दोनों नव किशोर, श्यामा नए अनुराग और नए रंग में भरे हैं। राधा के सुकुमार चंपक-वर्ण शरीर पर आभूषण रूपी भौंर अड़े हैं और कृष्ण मरकत कमल जैसे सुभग शरीर वाले कामदेव का वेष धारण किए हैं। सुन्दर कमल दल मानों पिय के दसनों में समा रहा है। हाथों से कसकर मुख-मयंक का मधु पीते हुये भी ललना अघा नहीं रहा है, लज्जित होकर मुख छिपा लेती है और मुस्कराकर मन हर लेती है। अलक कुचों पर छूटी है, पन्नगी त्रिबली के घर में पैठी है, मानों क्रोधित मयूर के मुख के साथ चन्द्रमा लाया गया हो' (३०९०)। युगल-रूप-चित्रण के लिए पद २७४९, २७५०, २७५१, ३०७३, ३०७६ भी उल्लेखनीय है।

वस्तु या पदार्थ चित्रण के अन्तर्गत सूर ने लौकिक अलौकिक जगत के चित्रण मे अनेक अलंकारों को अपनाया है। जीवन और जगत के अनेक पदार्थों का चित्रण इन अलंकारों द्वारा हुआ है, किन्तु सूर के वस्तु-चित्रण के अन्तर्गत मुख्यता प्रकृति को मिली है। प्रकृति के अंग-षड्ऋतु बसन्त, वर्षा, मेघ, बिजली, सायं-प्रातः, दिन-रात आदि का चित्रण अलंकारों द्वारा किया गया है। हमारे यहाँ साल में छः ऋतुएं होती हैं—पावस, शरद, हेमन्त, शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म। विरही ब्रज में ये छ ऋतुएँ क्रमानुसार न आकर एक साथ ही प्रकट हो गई हैं। इससे अधिक विषमता और क्या हो सकती है ? गोपी अपनी सखी से कहती है कि ऋतुओं का सौन्दर्य तो न जाने क्या हो गया, यहाँ तो सभी ऋतुएँ एक साथ दिखाई दे रही हैं 'सब ऋतुएँ कुछ और सी लगती हैं। कृष्ण के बिना ऋतु-सौन्दर्य फीका लग रहा है। यहाँ तो नयनों की झड़ी में ही पावस ऋतु बीत गई। शरद ऋतु मे नदियों का संचित जल निर्मल हो जाता है, यहाँ नेत्रों का स्वच्छ जल हृदय पर व्याप्त है। रात में चन्द्रमा को देखकर हेमन्त ऋतु अपने आप आ जाती है। कृष्ण के रसभोग का स्मरण करके हृदय कमल में कंपकंपी पैदा हो गई है, जो शिशिर ऋतु से कम नहीं है। विरह-बेलि में सुख-दुःख के फूल खिले हैं—यही बसन्त ऋतु है और पूरे शरीर में काम की ऊष्मा व्याप्त हो रही है, यही ग्रीष्म ऋतु है' (३९६३)। बसन्त ऋतु का बड़ा हृदयहारी चित्रण कवि ने राधा के शृङ्गार के रूपक द्वारा किया है राध सू

माध्यम से बसन्त का वर्णन हो रहा है। राधा-कृष्ण का विहार मानों बसन्त ऋतु में कामदेव का विहार है। सम्मुख मिलन ही गुलाब का विकसित होना है और मान, जूही पुष्प है। राधा का अपने केशों को गूँथना ही पृथ्वी पर अनेक लताओं का लहराना है। गले की कंचुकी और कुच-कलश ही केतकी-पुष्प है, तथा मदचलित लोचन ही मालती पुष्प है। विरह-व्याकुल पृथ्वी का मुख विकसित हो गया है। राधा की सखियाँ ही पवन-परिमल हैं और हृदय का हुलास पिकगान है। सखा कृष्ण ही चम्पक है, उनकी माला ही कुन्द है और मणिमाला ही भ्रमर हैं' (३४६२)। 'बसन्त ऋतु ने आते ही राधा को मान छोड़ देने के लिए पत्र लिख भेजा है। उस पत्र का कागज आम के किसलय हैं, स्याही भ्रमर है, लेखनी कामबाण है और लिखने वाला कामदेव। कामदेव ने पत्र लिखकर अपनी मुहर भी लगा दी है। मलयानिल पत्रवाहक से यह पत्र भेजा गया है तथा शुक-पिक उस पत्र को बांच रहे हैं' (३४६३)। बसन्त का वर्णन कवि ने सेना के सांगरूपक द्वारा भी किया है। 'सयानी कुंवरि राधिका जल्दी चलो। राजा कामदेव ने बसन्त ऋतु में विपिन रूपी रथ, हाथी, घोड़े लेकर कृष्ण पर धावा बोल दिया है। चारों दिशाओं में चाँदनी फैली है वही सेना है और चाँदनी की श्वेतिमा ही सेना के चलने की धूल है। सोलह कला युक्त चन्द्रमा की छवि ही राजा बसन्त के सिर का छत्र है। कोयल का बोलना ही बन्दी जनों का यशगान है। वन में रटते हुए भ्रमर धीर योद्धा हैं। मुरली ही कामबाण है, फूल धनुष है और मान-गढ़ अत्यन्त कठिन है। कृष्ण की यह दशा है। ऐसे विकट समय पर हे राधा! कृष्ण की सहायता करो' (३४०२)। बसन्त का ऐसा ही चित्रण पद ३४०३, ३४६५, ३४६६ में भी हुआ है। वर्षा ऋतु का भी रमणीय चित्र अलंकारों के माध्यम से खींचा गया है। हाथी के सांगरूपक से वर्षा का चित्र देखिए—'चारों दिशाओं में बादल घिरे हैं, मानों कामदेव के हाथियों ने बलपूर्वक बन्धन तोड़ दिया है। काले बादलों से थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही है मानों हाथी के काले शरीर से मदजल चू रहा है। पवन-महावत के रोके यह रुकता नहीं। वर्षा ऋतु में बगपंक्ति मानों हाथी का दांत है, जो पेट रूपी सरोवर को फोड़कर बाहर निकल आए हैं। असमय में ही यह वर्षा रूपी हाथी ओलों की तरह शरीर को गला रहा है' (३९२१)। बसन्त की ही तरह वर्षा का भी वर्णन सेना के सांगरूपक द्वारा हुआ है—'ब्रज पर पावस दल सजकर आ गया है। चारों ओर बादल की धूल उड़ रही है, गर्जन का निसान भी बजा दिया है। चातक, मोर आदि पैदल कोकिल स्वर में बोल रहे हैं। काली घटा हाथी है, बगपंक्ति घोड़े और रथ हैं, बिजली करवाल है और बूंद बाण। इस प्रकार सेना सजी है। यह सेना बेधड़क ब्रज की ओर काम सेना पति को आगे करके चली आ रही है' (३९२२)। ऐसा ही वर्णन पद ३९२३, ३९२४, ३९३१ में भी हुआ है। काले बादलों को देखकर कृष्ण की याद आ जाना स्वाभाविक है।' आज कृष्ण की तरह

काले बादल घिर आए हैं। इन्द्र धनुष मानो उनका पीताम्बर है, बिजली दंतपंक्ति है, बगपंक्ति मोती माला है, जो चित्त को हर लेती है तथा बादलों की गर्जना ही कृष्ण की हुंकार है' (३६२२)। इसी प्रकार का वर्षा–वर्णन कुछ और पदों में भी हुआ है। प्रातः वेला का मार्मिक वर्णन पद ८२३ में हुआ है।

इन प्रकृति-वर्णनों के अतिरिक्त कवि ने मथुरा-नगरी का सुन्दर चित्रण वासक सज्जा नायिका के सांगरूपक द्वारा किया है। कृष्ण के आगमन के समाचार से मथुरा नगरी सजाई गई है मानों पति का आगमन सुनकर वासकसज्जा नायिका ने शृङ्गार किया हो।' आज मथुरा हर्षित हुई है, जैसे युवती पति का आगमन सुनकर पुलकित-अंगी हो जाती है। मथुरा-सुन्दरी सोलहों शृङ्गार सजाकर आतुर होकर प्रिय का पथ देख रही है। मथुरा नगरी पर ध्वजा फहरा रही है मानो युवती प्रसन्नता से अपना आँचल नहीं संभाल पा रही है। महलों पर रखे हुए कलश युवती के कुच हैं और महलों पर की गई चित्रकारी मानो युवती की चित्रित सारी है। ऊँची अट्टालिकाओं के छज्जों की शोभा ऐसी है मानों युवती उन्नतग्रीव होकर देख रही है। सोने का दुर्ग ही युवती की किंकिणी है और महलों पर बनी जाली के छेद मानों युवती के नेत्र हैं। महलों पर बने हुए सांप के चित्र ही मानो युवती की वेणी है। नगर में वादित्रादि और अन्य बाजे बज रहे हैं, वही मानों चंचल युवती के नूपुरों की झंकार है' (३६४१)। ऐसा ही चित्र पद ३६४० में भी खींचा गया है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त स्फुट रूप में भी जीवन और जगत की अनेक वस्तुओं का चित्रण अलंकारों के माध्यम से किया गया है। आयु का वर्णन-अंजली का जल (१४६) भगनघट का जल (३४१), जीवन का वर्णन बादर की छाह (३२१६), धूम-धौराहर (३१६), तथा यौवन का वर्णन—फागुन की होली (३२०६), कागज की चोली (३२०६), अंजली का जल (३२१०), धूम का मंदिर (३२१०), तुषारकण (३२१०) वर्षा की नदी (३२१८) आदि आलंकारिक योजनाओं के द्वारा किया गया है।

गुण और स्वभाव का चित्रण

'सूरसागर' में आए पात्रों में मुख्य रूप से राधा, कृष्ण, गोपियाँ, कुब्जा, ऊधो और अक्रूर के गुण और स्वभाव का चित्रण प्रयुक्त अलंकारों द्वारा हुआ है। राधा के स्वभाव का चित्रण इस प्रकार है। ब्रज के घर-घर में राधा की प्रीति को लेकर चर्चा चल रहा है, किन्तु एक गोपी कहती है—'जिसकी जितनी बुद्धि होगी, वह वैसी ही बात कहेगा। सूर्य के तेज को उल्लू भला क्या जान सकता है? विष का कीट विष ही में अभिमानता है, उसे अमृत से क्या प्रयोजन। तेल का सवादी घी के स्वाद को क्या जान सकता है' (२५४२)? गोपियाँ राधा को 'गंगा जल है

समान निर्मल बताती हैं (२५७८)। मानिनी राधा के स्वभाव का वर्णन दूती कृष्ण से इस प्रकार करती है— सुकुमारी राधा मान-सर में विहर रही है, मैंने कितना मनुहार किया, लेकिन वह निकलती नहीं। उसका मौन ही सरोवर के पाल हैं, आँसू ही सरोवर का जल है। मैं प्रयत्न कर हार गई, लेकिन वह निकलती नहीं। उसकी सास ही पुइंस है, नेत्र ही कमल हैं, और नेत्रों का डुलना ही जलचर है। काम ही उसके प्राण को चाहने वाला ग्राह है, लेकिन वह निर्भय होकर वहाँ तैर रही है। चिकुर ही सिवार हैं, जिसमें वह उलझ गई है। नीला आंचल ही कमल-पत्र है और कुच ही कमल है। मानिनी का मन ही मराल है। हे मुरारी! आप स्वयं ही उसकी बाह पकड़कर निकालिये (३१९३)। राधा के स्वभाव का अनुपम चित्र इस प्रकार हुआ है 'जल के निकट' की बालू की तरह राधा की प्रकृति है, हाथ से ही धीरे-धीरे पिघलाओ' (३३७८)। जल के निकट की बालू पर फावड़े से चोट की जाय तो फावड़ा उछल जायगा, किन्तु हाथ से धीरे-धीरे पिघलाकर बालू निकाली जाय तो हाथ भरकर बालू निकल आयेगी। राधा के व्याज से समूची नारी जाति के स्वभाव का इतना सुन्दर और सूक्ष्म चित्रण शायद हिन्दी साहित्य में अन्यत्र कहीं न मिले।

कृष्ण के स्वभाव का बड़ा सुन्दर चित्रण चन्द्रावली ललिता से करती है। चन्द्रावली कह रही है कि 'तेरे वश में कृष्ण उसी तरह हैं, जैसे शरीर के वश में छाया, सरच्चन्द्र के वश में चकोर, सूर्य के वश में चक्रवाक, कमल-कोष के वश मे भ्रमर, स्वाती के वश में चातक, अथवा शरीर के वश में जैसे जी' (२६८७)। कृष्ण के आन्तरिक कपट-भाव को 'शीशी के जल' (३०१६, ३३७३) द्वारा व्यक्त किया गया है। जैसे शीशी का जल बाहर से झलकता रहता है, वैसे ही आंतरिक कपट भी बाहर से स्पष्ट झलक रहा है। कृष्ण गोपियों से प्रेम करते हुए भी अनासक्त हैं, उनकी इस निर्लिप्तता का वर्णन 'जल में पुरइनि पात' (३५३६) द्वारा किया गया है। कमल-पत्र जल में रहकर भी अलिप्त रहता है, ऐसे ही कृष्ण भी प्रेम करते हुए अनासक्त रहते हैं। कृष्ण का कपट-प्रेम वैसे उघर आया जैसे 'खाटी आमी से सोने की कलई उफर आती है' (४२८७)। कृष्ण के कपटी स्वभाव का रमणी का चित्रण पूरे 'भ्रमरगीत' में हुआ है। 'कृष्ण का प्रेम और कपट वैसे है, जैसे हाथी के काम के दांत और तथा दिखाने के और' (४२६५)। गोपियों ने कृष्ण के स्वभाव के व्याज से सभी काले लोगों को 'श्याम रंग पर तर्क' प्रसंग में कपटी कहा है। 'सखी! काले सभी बराबर हैं, भ्रमर, कुरंग, काग और कोकिल — ये सभी कपटी हैं, एक ही चटसार के पढ़े हैं' (४३६७)। कृष्ण के कपट का बड़ा सटीक और मार्मिक चित्रण 'खीरा फल' (४५८, ४६५६) द्वारा किया गया है। जैसे खीरा बाहर से चिकना दिखाई पड़ता है किन्तु अन्दर से तीन भागों में बँटा होता है, उसी प्रकार कृष्ण का प्रेम भी दिखावटी है। कृष्ण के कपट का दूसरा मार्मिक चित्रण इस प्रकार है—'जैसे काँजी से दूध फट जाता है, वैसे ही कृष्ण का प्रेम भी फट गया' (४५७५)। कृष्ण के कपटी स्वभाव का चित्रण

भ्रमर के कपट द्वारा भी किया गया है' मधुकर ! तुम लोग रस के लम्पट हो। अपने स्वार्थ से तो बन भर में भटकते हुए नहीं अकुलाते, किन्तु फूल झड़ जाने पर भूलकर भी लताओं के पास नहीं फटकते' (४५६६)। अन्यत्र भी आया है 'मधुप ! आपकी तो यही पहचान है, पराग लेकर फूल की कानि छोड़कर अन्यत्र जा बैठते हो। जिसके पास फूलों के अनेक बाग और जंगल हैं, जिनमें अगणित फूल खिले हुए हैं, अगर एक फूल कुम्हिला भी गया तो उसे क्या चिन्ता' (४६०१)। कृष्ण के कपटी स्वभाव के ऐसे अनेक चित्र 'भ्रमरगीत' में भरे पड़े हैं।

गोपियों के स्वभाव का चित्रण भी अलंकारों द्वारा हुआ। 'गोपियाँ श्याम-रङ्ग में उसी तरह मग्न हो गई, जैसे जल में कच्ची गगरी' (७०८)। कृष्ण-रस में गोपियाँ 'चातक की बूँद' (७७२) हो गई है। गोपियों का मन तो 'सिन्धु का खग हो गया है, जिसे कृष्णरूपी जहाज के अतिरिक्त अन्यत्र शरण नहीं' (३७७६)। गोपियों के सच्चे प्रेम का वर्णन मीन और जल चातक और स्वाती, कमल और सूर्य तथा दशरथ और प्रेम द्वारा हुआ है (४४३१)। गोपियाँ कहती है 'हम तो श्याम में उसी तरह पगी हैं, जैसे गुड़ में चींटी' (४५७८)। 'कृष्ण, गोपियों के लिए हारिल की लकड़ी है और योग कडुई कंकड़ी' (४६०६)।

'सूरसागर में प्रयुक्त अलंकारों द्वारा कुब्जा, ऊधौ और अक्रूर के स्वभाव का भी चित्रण हुआ है। कुब्जा स्वयं अपने को 'करुई तोमरी' (४६०२) कहती है। ऊधौ के स्वभाव के लिए गोपियाँ कहती हैं—'जिसका जैसा स्वभाव हो जाय, वह मिटता नहीं। कुत्ते की दुम को सीधी करने का कोई कितना भी प्रयास करे, किन्तु व्यर्थ। कौवा जन्मते ही जिसे अपना भक्ष्य बना लिया, उसे छोड़ नहीं सकता। काली कमरी का रंग धोने से नहीं मिट सकता। डँसने से पेट नहीं भर जाता, किन्तु डँसना साँप का स्वभाव ही है' (४१४४)। ऊधौ और अक्रूर दोनों के निर्दयी स्वभाव का वर्णन पद ४२०६ में हुआ है। अन्यत्र आया है—'इन दोनों में दारुजात (अग्नि) का सा गुण है, ऊपर से स्वच्छ किन्तु भीतर से काली' (४२०७)। अग्नि की तरह ऊधौ और अक्रूर भी देखने में भले हैं, किन्तु अन्दर से गहरे कपटी है। कृष्ण की अनासक्ति की तरह ऊधौ की अनासक्ति का भी चित्रण इस प्रकार हुआ है—'ऊधौ ! आप धन्य भाग्य हैं। कृष्ण के पास रहते हुए भी आप उनसे अनासक्त हैं, जैसे कमल तो जल में रहता है, किन्तु जल की एक बूँद भी पत्तों में नहीं लगने पाती। जैसे जल में तेल की गगरी डाल दी जाय तो उसमें जल छू तक नहीं जायगा, उसी प्रकार आप भी अलिप्त हैं' (४५७६)। ऊधौ के स्वभाव की नीरसता का चित्रण अनेक दृष्टान्तों द्वारा किया गया है—'हे ऊधौ ! आपकी बातों को कोई बुरा नहीं मानता। रस की बात तो जो रसिक होगा, वही समझेगा, नीरस के पल्ले क्या पड़ेगा ? दादुर जन्म भर कमल के निकट रहता है, किन्तु रस नहीं पहचान पाता भौंरा अनुराग में बधा उड़ता रहता है, निन्दा उसके कान

में भी नहीं पड़ती।' (४२७८) इन पात्रों के स्वभाव-चित्रण के अतिरिक्त 'नैन समय के पद' प्रसंग में नेत्रों के स्वभाव का हृदयहारी चित्रण अनेक अलंकारों द्वारा हुआ है।

कार्य व्यापार का चित्रण

अलंकारों के माध्यम से विभिन्न कार्य-व्यापारों, क्रियाओं का चित्रण हुआ है। ये कार्य-व्यापार मुख्यत: कृष्ण लीलाओं से ही सम्बन्धित है। कृष्ण जन्मोत्सव, बाललीला, दधि मंथन, माटी उगलना, आँखमिचौनी, दानलीला, मानलीला, रासलीला और कृष्ण की सुरति के चित्रण कार्य-व्यापार के अन्तर्गत आते है। इनमें सबसे अधिक चित्र राधा-कृष्ण की सुरति के खींचे गए हैं, जिसमें कवि की कल्पना विभिन्न अलङ्कारों के पात्रों में रस भरती फिरती है। 'कृष्णजन्मोत्सव पर बधावा देने के लिए ब्रज-वधुएँ सज-धज कर निकरा पड़ती हैं मानों लालमुनियों की पंक्ति पिंजड़ा तोड़ चली हो। सखियाँ प्रसन्न चित्त दिखायी दे रही है मानों प्रात:काल सूर्य को देखकर कमल खिल गए हों। बन्दीजन यशोगान कर रहे हैं मानो आषाढ़ की प्रथम वर्षा में दादुर और मोर बोल रहे हों' (६४२)। गोपियाँ थाल में दूध, दही और रोचना लेकर उसी तरह चली हैं मानों इन्द्रवधुओं की पंक्ति जुड़ी हो' (६४८ । छठों के आचार में सखियाँ शृंगार करके चली हैं 'मानो ऐपन की पुतली हो' (६५८)। कृष्ण जरा बड़े हुए मणिमय आंगन में घुटनों के बल चलने लगे, उनके चरण, कर-कमलों की छाया आँगन में पड़ रही है 'मानों पृथ्वी, कृष्ण के बैठने के लिए प्रतिपद पर कमलासन प्रदान कर रही हो' (७२८)। आगे-आगे कृष्ण और पीछे यशोदा उँगली पकड़े हुए चली जा रही है मानों गाय तृण छोड़कर वत्स सहित पयोधरों से पय स्रवित करती रही हो' (७४२)। यशोदा दही मथ रही हैं, कृष्ण आकर मथानी पकड़ लेते हैं। 'कृष्ण ने अड़कर मथानी पकड़ लिया और मटुकी पकड़ कर मचल गए। तब वासुकि और शम्भु पुन: समुद्र-मंथन सोचकर भयभीत हो गए। मन्दराचल डर गया, सिन्धु काँपने लगा कि कहीं फिर न समुद्र मन्थन करें। सुर और असुर खड़े हुए अश्रुमोचन कर रहे है' (७६०)। कृष्ण और राधा की आँखमिचौनी का चित्रण इस प्रकार हुआ है—'राधिका खड़ी थी कि कृष्ण ने आकर उनके नेत्रों को मूँद लिया। राधा के विशाल अनियारे नेत्र कृष्ण की हथेलियों में नहीं समा रहे हैं, अंगुलियों के बीच से दिखाई दे रहे है, मानों साँप ने मणि को उगलकर फन के नीचे छिपाए हों' (१२६३)। कृष्ण की दानलीला का भी चित्रण अलङ्कारों के माध्यम से हुआ है। 'चारों थनों का दूध कृष्ण ने दुह दिया फिर भी गोपी की दोहनी नहीं छोड़ते, सूर्य धीरे-धीरे छिपने लगा। पहले तो मीठी वाणी से उसे रात होने तक रोकना चाहा, लेकिन जब वह नहीं रुकी तब उससे झगड़ने लगे और इसी में रात हो गई, चन्द्रमा निकल आया, कुमुदिनी खिल गई। कृष्ण ने भी शिशु रूप छोड़कर किशोर रूप धारण करके अपना मनभाया कर ही डाला (२२८६

अलंकारों द्वारा कार्य-व्यापार के चित्रण में सबसे अधिक वर्णन राधा-कृष्ण की सुरति का हुआ है । सुरति का चित्र युद्ध के सांगरूपक द्वारा इस प्रकार खींचा गया है—'रति क्षेत्र में दोनों जुट गये । दोनों वीर योद्धा हैं, कोई मुड़ता नहीं । भौंह धनुष है, नेत्र बाण हैं, चलाने वाला कामदेव है और कटाक्ष ही बाणों का छूटना है । हंसते हुए दांतों की चमक करवाल है और नखक्षत ही नेजा है । पीतपट और कंचुकी की कवच और सन्नाह हैं जिन्हें शरीर पर से उतार फेंका गया है । दोनों एक-दूसरे की भुजाएं पकड़े हुए हैं, मानों मत्त गज सूंडों से लड़ रहे हों' (२७४७) । इसी प्रकार सुरति का वर्णन संगम के रूपक द्वारा भी किया गया है' अंग से सभी अंग लिपट गए मानों गंगा ने जमुना के साथ संगम किया है । लाल वस्त्र ओढ़कर आलिंगन किए हुए पर्यंक पर लेट गये । केश ही संगम की तरंग है । प्यासे नेत्र-मृग निश्शंक रसपान कर रहे हैं । कटि की किंकिणी रूपी सिंह की आवाज सुनकर ये मृग चंचल हो उठते हैं । भुजाओं के विविध आभूषण मानों संगम में खिले हुए कमल हैं । लटकती हुई लट मधुप-माल है । दोनों कठोर कुच कृष्ण के उर से लगे है मानों कमठ ने आसन पा लिया हो' (२७४९) । राधा-कृष्ण की सुरति का मार्मिक चित्रण कवि इस प्रकार करता है 'रसना ! रसनिधि दम्पति का उच्चारण कर । कनक-बेलि तमाल में उलझ गई, भुजाओं का बन्धन खोला नहीं जा सकता । भौंरों का समूह चन्द्रमा पर सघन रूप में आ-जा रहा है । गंगा पर जमुना उमंगकर समा नहीं रही है । कोकनद पर मीन, खंजन के साथ सूर्य ताण्डव कर रहा है । करी, तिल जलशिखर पर मिलकर एक हो गए हैं । जलधि से तारा खिसक कर पयनिधि में गिर रहा है । भुज-भुजंग प्रसन्न मुख होकर कनक-घटों में लिपट रहे हैं । कनक-संपुट कोकिल रव करता हुआ विवश होकर रसदान कर रहा है । खिला कमल अनार पर लसकर रसपान कर रहा है । दामिनी स्थिर और घटा चन्द्र कभी इस प्रकार होकर तथा कभी दिन उदय होकर और कभी कुहू रात होकर दोनों क्रीड़ा कर रहे हैं । सरस-सर के तीर सिंह के बीच मणियाँ नाद कर रही हैं । बिना नाल के दो कमल उलटे हैं और कुछ जल की तीक्ष्ण धारा बह रही है । हंस शाखा-शिखर पर चढ़कर बोल रहे हैं । (७५०) । सुरति के ऐसे ही चित्र पद २७४८, २७५१ में भी मिलते हैं । दूती ने राधा-रूप का वर्णन कृष्ण से जाकर किया, जिससे कृष्ण के मन में रति-युद्ध का भय समा गया । 'जब से कृष्ण ने वह वर्णन सुना, उनके हृदय में युद्ध की सोच घर कर गई है । इसी भय से उन्हें रात भर नींद नहीं आई । भौंह ही उसके धनुष हैं, तिलक भाला है, सीमांत का रंग बाण है, वलय, ताटंक चक्र है, नख नेजा है और बिजली की तरह चमकते दांत तलवार हैं । कुच हाथी हैं, विशद-विशाल नेत्र ही घोड़े हैं । लाल आंचल उसकी ढाल है और चिकुर चंवर है । अंग-अंग पर सजे आभूषण उसके सहायक योद्धा हैं । कामिनी आज ही काम-सेना लेकर कुंज के झण्डे के नीचे आ विराजेगी । चरणों के नूपुर रनतूरा हैं जिसे सुनकर मेरे कान थर-थर कांपने लगेंगे··· राधा ने सुरति रन में अक ~~ जमा और पिय अधरों पर दाव कर अटक गई ।

सुरति का संग्राम मच गया और अन्त में दोनों मल्ल की तरह मुरझाकर गिर गए' (२०७)। युद्ध के रूपक द्वारा आगे भी सुरति का चित्र खींचा गया है—'रति के संग्राम में बीर रसमग्न हैं। सूर-शिरोमणि कृष्ण सम्हलते नहीं। नेत्र लाल वर्ण के हो गए है मानों क्रोध के कारण लाल हो गए हों। उनींदे नेत्र ऐसे लग रहे हैं, मानो थका हुआ योद्धा कभी बैठ जाता हो और कभी उठ जाता हो। मन मूर्छित हो गया है और कटाक्ष का बाण हृदय से निकलता नहीं' (३०२)। सुरति के वर्णन के लिए कवि को कुछ दुरावमूलक प्रणालियों का भी आश्रय लेना पड़ता है, जिनमें दृष्टकूट प्रमुख हैं। दृष्टिकूटों द्वारा भी सुरति के रमणीय चित्र खींचे गए हैं—'ऐ सखी! पाँच कमल—मुख, दो नेत्र, हृदय नाभि और दो शिव (कुच) देखो। एक कमल (राधा का मुख) कृष्ण के ऊपर सुशोभित है। एक कमल (हाथ) में राधा का हाथ लिए है। युगल-कमल (राधा-कृष्ण) की प्रीति कभी भंग न हो ऐसा कमल-सुत (ब्रह्मा) विचार कर रहे हैं। छः कमल—राधा, कृष्ण के मुख, नेत्र सम्मुख देख रहे हैं' (३०८४)। ऐसा वर्णन पद ३०७६, ३०८३, ३०८५, ३०८६, ३०८७ में भी हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न कार्य-व्यापारों का वर्णन सूर ने अपने अलंकारों द्वारा किया है।

भाव-चित्रण

अति गहन और तीव्र मनोवेगों को सहज और सुग्राह्य बनाने के लिए कवि ने अलंकारों का आश्रय लिया है तथा इन अलंकारों में प्रयुक्त अप्रस्तुत-सामग्री अत्यन्त सामान्य जीवन से ग्रहण की गई है, जिससे मनोवेगों की गहनता सरल बन जाय और भाव-ग्राह्यता सुकर हो जाय। गोपियों के प्रेमोन्माद का चित्रण हाथी के रूपक द्वारा इस प्रकार हुआ है 'शरीर तो घर की ओर लेकिन मन कृष्ण की ओर चल रहा है। घर, गुरुजन की सुधि और लज्जा उसी तरह आती है, जैसे मतगज को अंकुश से वश में किया जाता है। हरि के रस-रूप का मद आ रहा है। भय के महावत को हाथी ने फेंक दिया है, गेह-नेह का पग-बन्धन तोड़ दिया है और प्रेम के सरोवर की ओर दौड़ रहा है। रोमावली सूँड़ है, कुच मानों कुम्भस्थल हैं। कृष्ण केहरी को सुनकर यौवन-गज दर्प नशाता है' (२२४६)। प्रेम की दृढ़ता 'हल्दी और चूने के रंग' (२२६४) तथा 'दूध और पानी' (२७१) द्वारा व्यक्त की गई है। गोपियों के प्रेम की सुदृढ़ता का वर्णन इस प्रकार हुआ है—'अब तो हमारा प्रेम भीगी गाँठ जैसा सुदृढ़ हो गया है, जो खोलने पर नहीं खुलती। कृष्ण-प्रेम की टटकी छाप हृदय पर पड़ चुकी है, जो मिटाने से मिटती नहीं' (२२७८)। गोपी नेत्रों की प्रेमातुरता देखिये—'नैना मेरे हाथ नहीं रहे। कृष्ण को देखते ही जल की तरह उसी ओर बहने लगते हैं। जैसे जल नीचे को आतुर होकर भागता है, वैसे ही नेत्र भी हो गये हैं। जल जाकर समुद्र में मिल जाता है, ये नेत्र जाकर कृष्ण के अंगों में मिल जाते हैं। जैसे समुद्र अगाध और अपार है, उसी तरह कृष्ण-रूप भी अपार है। नेत्र त्रिवेणी होकर अपार समुद्र मे मिल गये ८४८ 'नेत्र हमें

छोड़कर उसी प्रकार भाग गए, पीछे मुड़कर देखे तक नहीं, जैसे लोग जलता हुआ घर छोड़कर भागते हैं और पीछे की ओर भी नहीं देखते' (२२८८)। नेत्रों की लोलुपता भरे घर के चोर के रूपक द्वारा व्यक्त की गई है' नेत्र भरे घर के चोर ही गए हैं। छवि को देखते ही भोर हो गया, इनसे कुछ भी लेते नहीं बना। रूप के प्रकाश में न तो इनसे कुछ लेते बना और न भागते ही बना। अलक की डोर में कृष्ण ने इन्हें बाँध लिया। अंग-अंग के घेरे में नेत्र बंध गए' (२८८७)। नेत्रों की आतुरता के लिए चोर का रूपक पद २८८९, २९१७, २९९४, २९९६ में भी बाँधा गया है। नेत्रों की व्याकुलता-खंजरीट (२८९०), भृंग (२८९५), कुरंग (२८९८) के रूपकों द्वारा व्यक्त की गई है। 'नेत्र दौड़ कर कृष्ण से मिल गए जैसे जल, जल में मिल जाय तो फिर कौन अलग कर सकता है ? वही दशा इन नेत्रों की हुई। वातचक्र के साथ जैसे तृण उड़ता है अथवा शरीर के साथ जैसे छाया रहती है अथवा पवन के वश जैसे पताका उड़ती है, उसी तरह कृष्ण-रूप के वश में नेत्र हो गये हैं' (२९०४)। 'नेत्र अति रसलम्पट हो गये हैं। हरि का रूप-रस चख लिया है। लुब्ध होकर उधर ही चले गये, जैसे अन्य पुरुष अनुरक्ता छिटनारी को अपना घर अच्छा नहीं लगता। यदि कभी घर आ भी गई तो गौने की दुल्हन की तरह व्याकुल हो जाती है। धनुष से छूटे हुये तीर की तरह पुनः उसी ओर दौड़ते हैं। ये कृष्ण के रूप-रोम मे जा चुभे हैं' (२९९३)। 'आतुर नेत्र नट के बटेर हो गये हैं. देखते ही वहीं पहुँच जाते हैं, पलकों के घर में टिकते नहीं। स्वाँगी की तरह क्षण में कुछ तथा क्षण मे और रूप धारण करते हैं। दौड़कर भाग जाते हैं, रोकने पर भी नहीं रुकते' (३००९)। गोपियाँ कहती हैं—'मुझसे नेत्र उसी प्रकार चले गये जैसे बधिक के पिंजड़े से छूटा हुआ खग भाग जाता है। संकोच के फन्दे में ये फँसे रहते हैं, उसे कैसे तोड़े ? ये नेत्र तो कृष्ण रूप के बन में समा गये हैं' (३०१०)। गोपियों की वियोग—व्याकुलता का चित्रण 'भुस पर की भीति' (३८०२) द्वारा किया गया है। विरहणी गोपियों के नेत्र कितने व्याकुल हैं ? इसका चित्रण कवि वर्षा के माध्यम से करता है—'सखी ! इन नेत्रों से बादल भी हार गये। बिना ऋतु के ही ये रात-दिन बरसते रहते हैं, जिससे तारे सदा मलीन रहते हैं। ऊर्ध्व-स्वास की तेज वायु ने सुख के अनेक वृक्षों को ढहा दिया है। दुःख रूपी पावस के कारण बचन-खग वदन के घोंसले में छिपे हैं। काले अंजन से मिली हुई अश्रु बूंद कंचुकी पर दूर-दूर पड़ रही है, मानों शंकर भगवान् ने दो मूर्ति धारण करके पर्णकुटी बना लिया हो। घुमड़-घुमड़ कर नेत्र आँसू की वर्षा कर रहे हैं। बिना गिरिवरधारी के डूबते ब्रज को कौन बचावैं' (३८५२) ? गोपियों की विरह-व्यापकता का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—'नेत्रों ने विरह की बेलि बो दिया, नैन जल से सींचने के कारण इनकी जड़ पताल तक चली गई है। यह लता स्वाभाविक रूप में विकसित होती हुई अत्यन्त सघन हो गई है। यह पूरे शरीर पर पसर कर छा गई है, इसे अब कैसे अलग करें ? किसी के मन की बात कोई कैसे जानेगा ? यह तो क्षण-क्षण

११

नई हो रही है। स्वामी के बिछुड़ जाने पर अब इसमें प्रेम की जई भी लग गई है" (३८६४)। स्वप्न टूट जाने पर गोपी के अपार क्षेम का अत्यन्त द्रावक तरल और मार्मिक चित्र खींचा गया है—'स्वप्न में कृष्ण गोपी के घर आए और हंसकर उसकी भुजा पकड़ लिये। अगली क्रिया होने ही वाली थी, कि बैरिन नींद खुल गई एक क्षण भी और नहीं रुक सकी। जैसे चकई सरोवर में झलकते अपने प्रतिबिम्ब को चकवा समझकर ज्यों ही आलिंगन के लिए झुकी त्योंही निष्ठुर विधाता ने पवन को चपल कर दिया, जिससे जल हिल गया और प्रतिबिम्ब ओझल हो गया' (३३८६)। प्रेम की विवशता यहाँ अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है, प्राण निकलने ही वाले हैं गोपियाँ कहती हैं' अब तो घरीपहर की ही बात है, जैसे उदवस (खानाबदोष) की भीति' (४००१)। 'काम व्यथा गोपियों को अरनि (कण्डा) की तरह जला रही है। वे अपना दुःख किसी से कह भी नहीं सकतीं। यज्ञ के पशु की तरह मूक हो गई है' (४००८)। गोपियों की विरह व्यथा का बड़ा मार्मिक चित्रण 'दरजी और ब्योंत' (४०१६) द्वारा हुआ है। यह विरह दरजी बनकर शरीर को ब्योंत रहा है। वियोग में गोपियों की ही नहीं पूरे ब्रज की भयानक दशा हो गयी है। 'कृष्ण के बिना ब्रज के शत्रु पुनः जी उठे हैं, जिन्हें हमारे देखते हुये कृष्ण ने मार-मार कर दूर कर दिया था। बकीरात्रि का रूप धारण कर के आती है और भय से हृदय को कंपा देती है। उच्छ्वास के रूप में तृणावर्त आता है, जिसने सारे सुखों को उड़ा दिया है। कालिन्दी के रूप में कालिय पुनः जीवित हो गया है। बन का रूप धारण करके बकासुर तथा घर के रूप अघासुर आते है' (४१३८)। गोपियों की विरह-व्यापकता का बड़ा मार्मिक चित्रण इस प्रकार हुआ है—'विरही कहाँ तक अपने को संम्हाले ? भगवान् के एक अंग से जिनका वियोग हुआ, उनकी यह दशा है—जब से गंगा जी हरि-चरणों से वियुक्त हुई, आज तक बहती ही जा रही हैं। नेत्रों से अलग होकर चन्द्रमा आज तक अपना शरीर गला रहा है। रोम से बिछुड़कर कमल कंटक हो गया और वाणी से वियुक्त होकर सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री होकर भी विधि-विरुद्ध उनकी पत्नी होना पड़ा। फिर जो गोपियाँ भगवान् के सर्वांग से वियुक्त हो गई हैं, उनका क्या उपचार है' (४२३१)? गोपियों के प्रेम की दृढ़ता 'हारिल की लकड़ी' (४६०६) द्वारा व्यक्त की गई है। इसी प्रकार गोपियों की अनन्यता 'खेड़े की दूब' (४६०७) द्वारा वर्णित है अर्थात् कृष्ण के अतिरिक्त कोई और नहीं सूझता, जैसे खेड़े पर दूब नहीं होती। विरह व्यथा की चरम-सीमा का चित्रण इस प्रकार हुआ है—'गोपियाँ नेत्र भर-भर आँसू ढार कर कंचुकी गीली कर रही हैं मानों विरह की विज्ज्वरता के लिये नेत्रों ने शिव-शीश पर प्रतिदिन सौ घड़ा जल चढ़ाने का नियम ले लिया हो। गोपियों के प्राण अवधि के तट पर उसी तरह रुके हुये हैं, जैसे जौ के अग्रभाग पर ओसकण' (४७४०)। इस प्रकार विभिन्न मनोवेगों का चित्रण अतिसामान्य जीवन की अप्रस्तुत सामग्री द्वारा विभिन्न अलंकारों के माध्यम से हुआ है।

अध्याय ५

सूरदास का योगदान, परवर्ती काव्य पर प्रभाव

(क) अप्रस्तुत योजना के क्षेत्र में सूर की मौलिकता—

अप्रस्तुतयोजना सम्बन्धी सूर की मौलिकता का आकलन और विवेचन दो रूपों में किया जा सकता है। पहला तो यह कि, कवि ने कुछ नितान्त मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है, जो अपूर्व है तथा सूर पूर्व साहित्य में उन अप्रस्तुतों का प्रयोग किसी भी कवि ने नहीं किया है। ऐसे अप्रस्तुतों को हम पूर्ण मौलिक की संज्ञा दे सकते हैं। दूसरा यह कि, सूर ने कुछ परम्परागत अप्रस्तुतों का प्रयोग मौलिक और निजी शैली में किया है। ऐसे अप्रस्तुतों को हम अर्द्धमौलिक कह सकते हैं। इसी तथ्य को हम दूसरे रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं कि अप्रस्तुत योजना का क्षेत्र में 'सूर की मौलिकता दो रूपों में परिलक्षित होती है—अप्रस्तुत सामग्री गत मौलिकता और अप्रस्तुत शैलीगत मौलिकता।

अप्रस्तुत सामग्री गत मौलिकता—

सूर ने अनेक नवीन और मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है, जो उनके पूर्व साहित्य में नहीं मिलते। 'सूरसागर' में ऐसे मौलिक अप्रस्तुतों की संख्या लगभग सवा सौ है। 'जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि' कहावत, इन मौलिक अप्रस्तुतों को देखते हुए सूर पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। कवि ने आकाश-पाताल एक करके नवीन अप्रस्तुतों को जुटाने का प्रयास किया है। लोभ-मोह-क्रोध आदि विकारों में मनुष्य बँधा रहता है, किन्तु यह संसार माया है, मिथ्या है, धोखा है। मानव अज्ञानवश इस माया के धोखे में फंसा रहता है। इस भाव को व्यक्त करने के लिए कवि ने पशु जगत से ढूंढ़कर एक अप्रस्तुत लाया है 'गुंजा कपि'। जाड़े के दिनों मे जब अधिक शीत पड़ने लगती है तब बन्दर गुंजा को एकत्र करके उन्हें अग्निकण समझकर तापते हैं। बन्दर जैसे गुंजा से धोखा खाता है, उसी तरह मनुष्य भी सांसारिक माया में धोखा ही खाता है, (१०२, १४७)। मानव स्वभाव से अहंकारी है। यदि कड़ी निगाह द्वारा उस पर नियन्त्रण न किया जाय तो मनुष्य उद्दत हो जाता है। अहंकार, शून्यता और विनय भक्त का अनिवार्य गुण है, अतः भक्त की यह परम कामना होती है कि भगवान् कड़ी दृष्टि से उस पर सदा नियन्त्रण बनाए रहें। भगवान् की इस डाट-डपट और कड़ी दृष्टि के लिए कवि एक नितान्त मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'किलकिला पक्षी'। इस पक्षी को कुहू भी कहते हैं। यह छोटी पक्षियों और मछली का शिकार करता है काफी ऊंचाई पर जल के ऊपर उड़ता रहता है, ज्यों ही मछली पानी से बाहर निकली कि टूट कर पकड़ लेता है जैसे

किलकिला पक्षी मछली को भयभीत किए रहता है, उसी प्रकार भगवान् भी भक्त को अपनी कड़ी दृष्टि से डाटते रहें, जिससे वह उद्धत न हो जाय। भक्त की यही कामना है (१०७)। गर्भ के भीतर जीव मल में सिर झुकाए पड़ा रहता है। ऐसे जीव के यथातथ्य निरूपण के लिए कवि एक नितान्त मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'भुरते (चोखे) का भाँटा'। जठराग्नि का जीव अदृश्य होता है, उसे दृश्यमान बनाने के लिए कवि को सटीक अप्रस्तुत ढूढ़कर लाना पड़ा। भुरते का भाँटा गर्भ के जीव का यत्किंचित् आभास कराने में निश्चित ही समर्थ है। यह अत्यन्त सामान्य जीवन का अप्रस्तुत है, किन्तु भावबोध में अनुपम है (३२०)। भगवान् के सभी अवतारों में कृष्ण सबसे महान् सोलह कला से पूर्ण अवतार है। ऐसे परमकृपालु कृष्ण को छोड़कर जो अन्य देव के पीछे भागता है, उसे प्राप्ति तो कुछ भी नहीं होती, ऊपर से निराश भी होना पड़ता है। अन्य देव के पीछे दौड़ने वाले नर की अभिव्यक्ति के लिए कवि बड़ा ही मार्मिक और मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'कुलाल (बनमुर्गा) के पीछे दौड़ता हुआ कुत्ता'। कृष्ण को छोड़कर अन्य देव के पीछे दौड़ने वाले नर को कुछ नहीं मिलता, जैसे बनमुर्गे के पीछे दौड़ने वाले कुत्ते को कुछ नहीं प्राप्त होता। कुत्ता जब बनमुर्गे को दौड़ाता है, तब पहले तो बनमुर्गा कुत्ते को लालच देकर धीरे-धीरे भागता है, किन्तु ज्यों ही कुत्ता निकट पहुँचता है, बनमुर्गा फुर्र से उड़ जाता है, कुत्ता बेचारा निराश हो जाता है। यही दशा अन्य देवों के पीछे भागने वाले नर की भी होती है (३५२)। इस प्रकार हम देखते हैं कि विषय के प्रसंग में कुछ मौलिक अप्रस्तुत जुटाकर कवि ने भाव-बोध कराया है, अभिव्यक्ति को मार्मिक और प्रभावशाली बनाया है तथा वर्ण्य का स्पष्ट चित्र खींचकर रख दिया है।

भगवान् के अन्य अवतारों के वर्णन में भी कवि ने कुछ मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। सीता जी को ढूँढ़ते हुए हनुमान अशोक-वाटिका में पहुँच गए। वहाँ पर अपने स्वभाव के अनुसार तोड़-फोड़ मचाकर पूरी वाटिका को तहस-नहस कर दिया। ऐसी विनष्ट वाटिका में हनुमान की स्थिति के सहज और तद्वत अनुभावन के लिए कवि ने इसी भाव के ठीक समानान्तर मौलिक अप्रस्तुत ढूँढ़कर रक्खा है 'कदली बन में हाथी'। कदली हाथी को बहुत प्रिय है। तोड़-फोड़ में हाथी और बन्दर का स्वभाव भी मिलता जुलता है। कदली-बन में पहुँचकर हाथी बन को किस तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देता है?—इसका प्रत्यक्षदर्शी ही इस अप्रस्तुत योजना का पूरा रसास्वादन कर सकता है (५४०)। राम ने रावण के सिर को बिना परिश्रम के अनायास ही छेद दिया। रावण के ऐसे सिर के वर्णन के लिए नवीन अप्रस्तुत लाया गया है 'पका फल'। जैसे पका फल बड़ी आसानी से छिद जाता है। राम के प्रताप के सामने महासुभट रावण के सिर का छेदन भी पके फल जैसा ही सुकर और सरल हो गया। अप्रस्तुत यद्यपि बड़ा सामान्य है, तथापि भावबोधक है (५७५)। चौदह वर्ष तक बनवास की खाक छानकर तथा अनेक आपत्ति विपत्तियों

झेलकर अयोध्या वापस लौटे राम के शरीर का स्नेह हो जाना, धूलि-धूसरित हो जाना स्वाभाविक ही थी, किन्तु फिर भी उनके शरीर की कान्ति और आभा अक्षुण्ण थी। राम के ऐसे शरीर का आभास कराने के लिए कवि ने एक बड़ा ही मार्मिक अप्रस्तुत प्रयुक्त किया हैं 'अग्नि से जला गंगा का तट'। गंगा का तट पावन और आभायुक्त तो है ही भले ही अग्नि से जल गया हो, ठीक इसी प्रकार राम का शरीर भव्य और पावन तो है ही, भले ही खेह युक्त हो। राम के उदात्त रूप का चित्रण प्रस्तुत करने में यह अप्रस्तुत पूर्ण समर्थ है (६१४)।

सूर की वास्तविक प्रतिभा का परिस्फुटन तो कृष्णलीला में हुआ है। कवि कृष्ण में इतना तन्मय हो जाता है कि उनके रूप, गुण, लीला के चित्रण के लिए आकाश-पाताल एक करके अनेक नवीन, मौलिक, अभुक्त और भावानुकूल अप्रस्तुतों को हर कोने से ढूँढ़-ढूँढ़ कर उपस्थित करता है। कृष्ण जन्म पर बधावा देने के लिए सज-धज कर रंग-बिरंगी गोपियाँ निकल पड़ी हैं। ऐसी गोपियों का यत्किंचित आभास कराने के लिए कवि मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'लाल मुनियों की पंक्ति'। इस पक्षी को रायमुनिया भी कहते हैं। यह एक रंग-बिरंगी सुन्दर-सी छोटी पक्षी होती है। सुन्दरता और चित्र-विचित्रता के कारण लोग इसे पालते हैं। पिंजड़ा तोड़कर यदि लाल मुनियों की पंक्ति चले तो दृश्य सचमुच ही बड़ा सुहावना लगेगा। रंग-बिरङ्गी, सज-धजी गोपियाँ भी कुछ ऐसी ही लग रही हैं (६८२)। कृष्ण की छठीं के आधार पर भी गोपियाँ सज-धज कर निकल पड़ी हैं, ऐसी गोपियों के चित्रण के लिए कवि दूसरा मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'ऐपन की पुतली' शुभ कार्यों के अवसर पर चावल, हल्दी[1] के लेप से जो मांगलिक छाप बनाई जाती है उसे ऐपन की पुतली कहते हैं। इस अप्रस्तुत द्वारा जहाँ एक ओर गोपियों की चित्र-विचित्रता व्यक्त की गई है वहीं दूसरी ओर गोपी-सौन्दर्य के प्रति कवि की भावना भी व्यक्त हुई है (६५८)। बालक कृष्ण अभी बोल नहीं पाते किन्तु बोलने का प्रयास करते हैं। उनके मुख से वाणी निकलती है, किन्तु अस्पष्ट। इस स्फुट वाणी का भाव बोध कराने के लिए कवि ने मौलिक अप्रस्तुत प्रस्तुत किया है 'बन्द कमल में भ्रमर गुन्जार'। यह स्फुट वाणी भी माता यशोदा को बड़ी भली लगती है। कमल के भीतर भँवरे का गुंजार ही बड़ा मधुर लगता है। अबोधता को भी बोधता प्रदान करने में इस प्रस्तुत का भाव-सौन्दर्य सन्निहित है (७२५)। इसी प्रकार रोटी के लिए 'पृथ्वी' अप्रस्तुत लाया गया है। यद्यपि यह अप्रस्तुत नवीन है, तथापि मात्र आकार-साम्य पर लाये जाने के कारण शुष्क और नीरस है (७८२)। केवल आकार-साम्य के आधार पर ही दहीबरा और अंदरसा के

---

१. हल्दी रोग विनाशक है, अतः हमारे प्रत्येक मांगलिक अनुष्ठान में हल्दी का प्रयोग होता है। पाश्चात्यों की दृष्टि में भी हल्दी सूर्य का प्रतीक है और सूर्य जीवन का

लिए 'चन्द्रमा' अप्रस्तुत लाया गया है। ये अप्रस्तुत भले ही मौलिक हों, गोल आकार का बोध भी करा दें, किन्तु इनमें कोई सौन्दर्य या सरसता नहीं है (१५२६, १५३१)। यमलार्जुन उद्धार प्रसंग में यशोदा ने कृष्ण के दोनों हाथों को पकड़ कर ऊखल के ऊपर बाँध दिया। इस दृश्य के चित्रण के लिए कवि ने मौलिक अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है 'बांबी के ऊपर लड़ते हुए दो साँप'। बांबी, बेमउर (साँप के घर) को कहते हैं। भुजा के लिए साँप अप्रस्तुत तो परम्परागत है किन्तु ऊखल के लिए 'बांबी' अप्रस्तुत नितान्त मौलिक है (१००६)। कृष्ण के अधर भी नीले हैं, अतः ऐसे अधरों के भाव बोध के लिए कवि 'नीलमणि का पुट' मौलिक अप्रस्तुत लाता है। यहाँ प्रस्तुत, अप्रस्तुत के बीच रङ्गसाम्य की मुख्यता है (१०६४)। कंस ने ब्रज में फरमान भेज दिया कि जमुना का कमल दरबार में भेजा जाय। इस आदेश का लक्ष्य यह था कि जमुना में कालिय नाग रहता था, यदि कृष्ण कमल तोड़ने जायेंगे तो कालिय नाग उन्हें जिन्दा नहीं छोड़ेगा और उसका रास्ता साफ हो जावेगा, किन्तु हुआ इसका उल्टा। कृष्ण गाड़ी भर कमल लेकर साक्षात् दरबार में उपस्थित हुए। अपनी सारी योजना पर पानी फिरा और कृष्ण को साक्षात् जिन्दा देखकर कंस के चेहरे का पानी उतर गया, वह फीका पड़ गया। ऐसे खिन्न कंस का बोधक चित्र प्रस्तुत करने के लिए कवि अत्यन्त सामान्य किन्तु नितान्त मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'घुना काठ'। घुनाकाठ जैसे बेदम होता है, उसी प्रकार खिन्न कंस भी विवर्ण हो गया। यह अप्रस्तुत तात्पर्य-बोध में पूर्ण सफल है (१२०८)। कृष्ण ने अपने हाथों में नग-जटित पहुँची पहन रखा है। इस पहुँची का वर्णन कवि ने 'सांप के फन की मणि' के नवीन अप्रस्तुत द्वारा किया है। भुजा सर्प है और उस पर धारण की गई पहुँची मणि है (१२५६)। कृष्ण की मुरली का प्रभाव इतना व्यापक है कि उससे जल-थल, गोपी-ग्वाल, पशु-पक्षी कोई नहीं बचा। मुरली ध्वनि में मस्त पक्षी आँखें मूदे मौन बैठे हैं। ऐसे पक्षियों के यथातथ्य चित्रण के लिए एक सर्वथा मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'तप करते हुए मुनि'। मुनि भी आँखें मूँदकर ध्यानावस्थित होकर तप करता है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच का प्रभाव साम्य दर्शनीय है। अप्रस्तुत बड़ा ही भाव व्यंजक है (१२७६)। कृष्ण की उंगलियों के लिए मौलिक अप्रस्तुत 'बिद्रुम' लाया गया है। उंगुलियों का पतली होना गुण है। इस अप्रस्तुत से उंगुलियों की लालिमा के साथ यह गुण भी व्यक्त किया गया है (१२७७)। आँखमिचौनी क्रीड़ा में कृष्ण ने पीछे से आकर राधा के अनियारे नेत्रों को मूँद लिया। इस भाव का चित्रण 'साँप के फन के नीचे की मणि' के मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। साँप जब मणि उगलता है, तो, कोई उठा न ले, इस भय से, मणि के ऊपर फन किये बैठा रहता है, इसी प्रकार राधा—नेत्रों के ऊपर कृष्ण के हाथ हैं। साँप की मणि उसे जान से प्यारी होती है, राधा नेत्र भी कृष्ण को उतने ही प्रिय हैं। साँप का फन काला होता है, कृष्ण-कर भी श्याम

हैं। मणि में चमक होती है, नेत्र भी चमकीले हैं। इस प्रकार, इस एक मौलिक अप्रस्तुत द्वारा अनेक भावों की अभिव्यंजना की गई है (१२६३)। हाथों को कमल-नाल कहना तो रूढ़ि है, किन्तु कमलनाल में काँटे भी होते हैं। सूर ने हाथ और कमल-नाल के बीच पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने के लिए 'कमल-नाल के काँटों' को रोमों का अप्रस्तुत बना दिया। रोयें के लिये 'कमलनाल का काटाँ' अप्रस्तुत नितान्त नवीन है (१६६१)। सौन्दर्य के साथ गोपियों की पावनता के चित्रण के लिए कवि एक मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'श्रुति की ऋचायें'। श्रुति की ऋचायें भारतीयों के लिए परमात्मा जैसी पावन हैं। इस अप्रस्तुत द्वारा कवि का आंतरिक भाव सबल रूप में सामने आ गया है (१७६३)। कुचों के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'थम्भ (खम्भा)' भी सर्वथा नवीन है। सम्भवतः यह अप्रस्तुत कुचों की नाभिगामिता गुण के लिए लाया गया है (१७६८)। बिजली की चंचलता की अभिव्यक्ति के लिए 'चंचल नारी' अप्रस्तुत लाया गया है, जो मौलिक है, साथ ही भावबोधक भी (१८०६)। राधिका की चरण तली अत्यन्त कोमल है, साथ ही लाल भी। अतः ऐसी चरण तली के वर्णन के लिए कवि की प्रतिभा सारे जगत को थहा कर एक अत्यन्त सूक्ष्म और नितान्त मौलिक अप्रस्तुत लाती है 'बिडाल रसना'। बिल्ली की जिह्वा लाल होती है, यह तो हम भी देखते हैं, किन्तु कितनी कोमल होती है ? इसका अनुभव सूक्ष्मद्रष्टा महाकवि सूर को ही था। एक ही अप्रस्तुत से अरुणिमा और कोमलता दोनों गुण भरपूर हो गए हैं। ललित चरण-तली के समान अप्रस्तुत भी ललित हैं (१८१५)। राधा के नेत्र अनियारे हैं और नेत्र कोर इतने विशाल हैं कि कानों को छू रहे हैं। नेत्र कोरों की विशालता के लिए नया अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है 'पिशुन'। पिशुन मुँह को कान के समीप ले जाकर अपनी बात कहता है, ताकि कोई सुन न ले। नेत्रकोर भी कान के पास पिशुन की तरह स्थित हैं। पिशुन अपनी मयावी बातों द्वारा श्रोता को वश में कर लेता है : नेत्रकोर भी दर्शक को अनायास ही अपनी ओर खींच लेते हैं। मौलिकता के साथ-साथ अप्रस्तुत भव्यता भी दर्शनीय है (१८२४)। मुरली की ध्वनि तो बड़ी मीठी है, किन्तु वही मुरली गोपियों की सौति बन बैठी है। मुरली का अन्तर तो कठोर है किन्तु वाह्य वाणी अत्यन्त मधुर है। ऐसी मुरली के वर्णन के लिए कवि ढूंढ कर एक मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'पत्थर में लगा हुआ मधु'; जिसमें ऊपर का मधु जितना मीठा है अन्दर का पत्थर उतना ही कठोर। मुरली का अन्तर और वाणी भी इस प्रकार है (१९१५)। कुचों की उपमा के लिये 'ताड़फल' अप्रस्तुत भी सर्वथा मौलिक है। यह अप्रस्तुत कुचों की पीनता गुण के लिए लाया गया है (२०८३)। हाथ के लिए कमल अप्रस्तुत तो रूढ़ है किन्तु सूर ने हाथ के फुँदना के लिए 'भ्रमर' अप्रस्तुत का प्रयोग किया है, जो सर्वथा नवीन है (२११६)। इसी प्रकार अंजन-रेखा के लिए 'धनुष की डोरी' अप्रस्तुत लाया गया है जो नितांत मौलिक है भौंह के लिए धनुष और कटाक्ष के लिए बाण अप्रस्तुत रूढ़ हैं। इसी

तारतम्य में कवि ने अंजनरेखा के लिए 'धनुष की डोरी' अप्रस्तुत का प्रयोग किया (२२०३)। कृष्ण के बिना गोपियों का घर बिल्कुल सुनसान रहता है। घर की इस निष्पदंता का तद्वत् अनुभव कराने के लिए कवि ने एक नवीन अप्रस्तुत ढूंढ़ा 'बन के भीतर का कुआँ'। गाँव के कुओं पर तो प्रातः-सायं चहल-पहल मची रहती है, किन्तु बन के भीतर का कुआँ तो दिन-रात सुनसान रहता है। भाव को स्पष्ट तथा ग्राह्य बनाने में अप्रस्तुत सक्षम है (२२१५)। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम मे इतनी मग्न हैं कि उन्हें स्व का भान ही नहीं है। उनकी सारी इन्द्रियाँ कृष्णमय हो गई हैं। कान, मुख, नेत्र सब अपना कार्य छोड़कर कृष्ण-ध्यान में रत हैं। इन पर गोपियों का न तो नियन्त्रण रह गया है और न ये अपना कार्य ही कर रहे हैं। ये इन्द्रियाँ गोपी-शरीर में रहती हुई भी निष्क्रिय हैं, बेकार हैं—इस भाव को स्पष्ट करने के लिए कवि एक नितांत मौलिक अप्रस्तुत ढूंढ़कर लाता है 'कैंचुल के कान, नेत्र, मुख, नाक'। सांप जब कैंचुल छोड़ देता है तो उसमें नेत्र, मुख, नाक के चिन्ह तो बने रहते हैं, लेकिन इनसे कार्य क्या होगा? ये तो चिन्ह मात्र हैं। इसी तरह गोपियों की इन्द्रियाँ भी निष्क्रिय हो गई हैं। मौलिकता के साथ-साथ अप्रस्तुत पूर्ण भावबोधक भी है (२२५८)। गोपियों के प्रेम की बात किस तरह घर-घर फैल गई—इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए कवि एक बड़ा ही सूक्ष्म और मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'बट बीज'। बरगद के फल के पक कर फूटते ही बीज हवा में दूर-दूर तक बिखर कर फैल जाता है। यहाँ कवि का सूक्ष्म निरीक्षण श्लाघ्य है। गोपी-प्रेम की बात भी इसी तरह क्षण भर घर-घर फैल गई। अप्रस्तुत की मार्मिकता और भावबोधकता स्वयं सिद्ध है। प्रेम में चूक जाने पर प्रेमी की क्या दशा होती है? इसके चित्रण के लिए कवि ने बड़ा सुन्दर अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है 'खेल दिखाते हुए कला में चूका हुआ नट'। कला दिखाते हुए नट यदि चूक गया तो उसकी हड्डी पसली चूर-चूर हो जाती है। असफल प्रेमी की भी दशा इसी प्रकार हृदय-विदारक होती है। गोपियों का प्रेम इतना सुदृढ़ हो गया है कि अब किसी तरह छूटता नहीं। इसके लिये कवि मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'भीगी गांठ'। रस्सी में गांठ देकर भिगो दिया जाय, फिर वह जकड़ लेती है। ऐसी गांठ खोलने से खुल नहीं सकती। ये तीनों मौलिक अप्रस्तुत एक ही पद मे आये हैं। जिन भावों की अभिव्यक्ति के लिये ये अप्रस्तुत लाये गये हैं, उन भावों के वर्णन के लिये इनसे सुन्दर अप्रस्तुत शायद इस लोक में न मिले। ऐसे अप्रस्तुतों को देखकर मानना ही पड़ता है कि अप्रस्तुतयोजना वास्तव में वासनाजन्य होती है (२२७८)। बचन-विदग्धा नागरी राधा के रति-रहस्य को अल्पज्ञा और अल्प अनुभवा गोपियाँ भला क्या जान सकती हैं। राधा के ऐसे रहस्य की अभिव्यक्ति और स्पष्टीकरण के लिये बड़ा सूक्ष्म और मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'मीन का पानी पीना'। जो मछली आठो याम पानी में रहती है, वह पानी कब पीती है, इसे कौन जान सकता है? राधा भी दिन रात कृष्ण के साथ रहती है, मन

उसका रति-रहस्य, छंद-भेद भी नितांत गोप्य है। बड़ा सटीक और भावपूर्ण अप्रस्तुत है (२३६)।

सूरसागर का उत्तरार्द्ध कवि की प्रतिभा की कसौटी है। उत्तरार्द्ध में पूर्वार्द्ध की अपेक्षा मौलिक अप्रस्तुतों की संख्या भी कहीं अधिक है। कृष्ण के यज्ञोपवीत के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'गंगा की मध्यधारा' पूर्ण मौलिक है साथ ही रूप-बोधक भी (२३७६)। कृष्ण के मुख ने चन्द्रमा का सारा तत्व खींच लिया है और अब चन्द्रमा बेचारा सारहीन हो गया है। ऐसे चन्द्रमा के चित्रण के लिए कवि अत्यन्त सामान्य और मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'झूठा थाल' (२४१४)। कृष्ण के माथे पर लटकती हुई अलक के लिए सर्वथा मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'लंगर'। मुख चन्द्रमा जैसा है, नेत्र चन्द्रवाहन मृग जैसे हैं। नेत्रों की विशालता के ब्याज से चन्द्रमा ने अपने मृगों को बिड़रता हुआ जानकर सशंकित होकर लटकती हुई अलकों के रूप में मानों लंगर डाल दिया है। पानी के जहाज या बड़ी नौकाओं को डूबने का खतरा जान पड़ता है तब चालक तुरन्त लंगर डाल देता है। इस प्रकार यह अप्रस्तुत भी भाव को स्पष्ट करने में सफल है और पूर्ण मौलिक भी (२४१५)। कृष्ण के उरज के लिए 'भँवरी' अप्रस्तुत भी नितान्त नवीन है। भँवरी एक छोटा-सा काले रंग का जल का कीड़ा होता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच रूप-रंग का साम्य अनुपम है (२४५६)। राधा के सुरतिकालीन मौन के लिए नया अप्रस्तुत 'रात्रि' लाया गया है। रात्रि की निस्तब्धता और मौन का साम्य दर्शनीय है (२६१५)। ललिता के वश में कृष्ण उसी तरह हो गये हैं जैसे 'पंखा के वश में पवन'। पंखा डुलने पर ही हवा मिलती है, उसी तरह कृष्ण भी ललिता के नियन्त्रण में हो गए हैं। यह अप्रस्तुत भी पूर्ण मौलिक और भावव्यंजक है (२६८६)। संयोग में जो वस्त्राभूषण आकर्षक लगते हैं वही वस्त्र वियोग में काटने दौड़ते हैं। वियोग में वस्त्र गोपियों को कितना कष्ट दे रहे हैं—इसके वर्णन के लिये मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'चिरचिटा'? चिरचिटा के समान ही वस्त्र दुखदायी हो गये हैं (२७०४, ३०७०)। माथे की बिन्दी के लिए 'काग' अप्रस्तुत भी नवीन है, किन्तु मात्र रंग साम्य पर लाये जाने के कारण शुष्क और नीरस है (२७२८)। परम्परागत नारी-रूप-चित्रण में कुछ अंगों का वर्णन नहीं किया गया है—जैसे भग, कान, पीठ। इन अंगों का यदि कहीं वर्णन मिलता भी है तो वह नहीं के बराबर है। भग के लिए परम्परा में भृगखुर और अश्वत्थ-पत्र अप्रस्तुत मिलते हैं, किन्तु सूर ने भग के लिए एक नया अप्रस्तुत प्रयुक्त किया 'सरस सर' परम्परागत दोनों अप्रस्तुतों में केवल आकार-साम्य है, किन्तु सूर के अप्रस्तुत में सरसता गुण भी व्यक्त है (२७५०)। कानों के वर्णन के लिए कवि एक सर्वथा नवीन अप्रस्तुत प्रयुक्त करता है 'आलबाल'। आलबाल, पेड़ के चारों ओर बने थाल्हे को कहते हैं। यह अप्रस्तुत आकार-साम्य पर लाया गया है (२७६१)। कान के लिए दूसरा मौलिक अप्रस्तुत 'कूप' लाया गया है। यह भी कान के आकार और गहराई के आधार पर गृहीत हुआ है

(१०६३) । कृष्ण की श्याम अंगुलियों के चित्रण के लिए रंगसाम्य के आधार पर एक नवीन अप्रस्तुत लाया गया है 'मरकत मणि का पिंजड़ा' (२८२३) । गोपियों के मन और नेत्र क्रमशः जाकर कृष्ण में लिप्त हो गये । लौटना दूर रहा, वहाँ से निकलते भी नहीं । इस भाव के चित्रण के लिए कवि अत्यन्त सामान्य किन्तु पूर्ण मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'गीली दीवार पर कंकड़' । गीली दीवार पर यदि कंकड़ फेंका जाय तो वह उसी में धँस जायेगा । इसी प्रकार नेत्र भी कृष्ण-रूप में धँस गये हैं । सूक्ष्म भाव का निरूपण इस स्थूल और मौलिक अप्रस्तुत द्वारा कवि ने कुशलता के साथ कर दिया है (२८४१) । वियोगिनी गोपियाँ विरह-व्याकुल होकर घर, वन में इधर-उधर मारी-मारी फिर रही हैं । इस भाव का यथातथ्य चित्रण 'फल फूटने पर आक की रुई' मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है । फल फूटने पर आक की रुई के निरुद्देश्य जहाँ तहाँ उड़ने में तथा गोपियों के निष्प्रयोजन इधर-उधर भटकने में कितना भाव साम्य है (२८४७ ? गोपी नेत्र श्याम रंग में रंग गये हैं, धोने से भी यह रंग छूटता नहीं । न छूटने के इस भाव को कवि ने 'पिघली हुई मोम' अप्रस्तुत द्वारा व्यक्त किया है। मोम पिघलकर फैल जाय और सूख जाय फिर उसे कितना भी क्यों न धोया जाय, लेकिन वह छूट नहीं सकती ? यह मौलिक अप्रस्तुत भी बड़ा सटीक है (२८६९) । गोपियों के नेत्र कण-कण होकर कृष्ण के रोम-रोम में समा गए हैं । इस भाव का तद्वत अनुभव कराने के लिए अप्रस्तुत लाया गया है 'परबत पर वर्षा की बूंद' । पहाड़ पर बूंद गिरते ही कण-कण होकर, छितराकर पहाड़ में समा जाती हैं । इस मौलिक अप्रस्तुत का भाव साम्य दर्शनीय है(२९११) । अंजन रेखा के लिए लाया गया 'डोरी' अप्रस्तुत भी नवीन है (२९७४) । गोपीनेत्र एक बार कृष्ण के पास गए, पुनः लौट कर वापस नहीं आये । इस भाव के चित्रण के लिए कवि अपने समाज से एक सर्वथा मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'कुलवधू का एक बार कुल से बाहर होकर पुनः कुल में न आ पाना' । सूर के समाज में नारी के लिए नैतिक नियम इतने कठोर थे कि चरित्र पर लांछन लगते ही उसे कुल से बाहर कर दिया जाता था और जो स्त्री एक बार कुल से बाहर हो गयी, उसे पुनः कुल में नहीं लिया जाता था । गोपीनेत्र भी इसी तरह एक बार गोपियों के पास से जाकर पुनः वापस नहीं लौट पाए । यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का प्रभाव साम्य दर्शनीय है (२९७४) । कृष्ण की ओर भागते हुए गोपी नेत्रों की आतुरता का वर्णन 'पहाड़ की खोर में नदी' के मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है । पहाड़ की खोर में नदी किस तेजी के साथ ऊपर से नीचे गिरती है । इससे नेत्रों की आतुरता का चित्र-सा खिंच जाता है पहाड़ की खोर में गिरने वाली नदी का प्रत्यक्षदर्शी ही इस अप्रस्तुत योजना का पूरा रसास्वादन कर सकता है (२९८८) । गोपीनेत्र उनके पास से निर्मूल रूप में चले गए, इस भाव का चित्र खींचने के लिए कवि अत्यन्त सामान्य और मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'कुम्भी की जड़' । कुम्भी में एक मुसला जड़ होती है । यदि कुम्भी को उखाड़ा जाय तो पूरी जड़ ऊपर आ जाती है, जड़ का एक रेशा भी

अन्दर नहीं रह जाता। इसी प्रकार गोपी नेत्र भी जड़ से गोपियों के पास से चले गए। यह अप्रस्तुत जहाँ कवि के विस्तृत परिवेश की ओर संकेत करता है, वहीं भावचित्रण में पूर्ण सफल भी है (२९८९)। आदमी कुछ कहे या न कहे उसके अन्दर का भाव चेहरे से झलक जाता है। इस सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति कवि ने एक स्थूल तथा मौलिक अप्रस्तुत 'शीशी का जल' द्वारा करता हैं। शीशी के अन्दर का जल जैसे बाहर से साफ झलकता रहता है, अन्दर का भाव भी उसी तरह चेहरे से स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार यह अप्रस्तुत सूक्ष्म प्रस्तुत का चित्र खींच देने में सफल है (०३९, ३३७३)। राधा के जूड़े के लिए दो मौलिक अप्रस्तुत लाए गए हैं—'अगाध नीर' और 'अंधकार का आधा पर्वत'। दोनों अप्रस्तुत रूप-रंग के साम्य पर लाए गए हैं (३०६३)। नीवी के लिए लाया गया 'ढाल' अप्रस्तुत भी मौलिक है (३०६७)। इसी प्रकार त्रिवली के लिये 'क्रोधित मयूर का मुख' भी नितान्त मौलिक अप्रस्तुत है (३०९०)। कृष्ण की दूती 'मानिनी' राधा को मनाने आई, किन्तु उसके लाख कहने पर भी राधा ने कान नहीं दिया। निराश होकर बेचारी वापस आकर कृष्ण से सब कुछ सच-सच बता रही है। दूती को झूंठ न बोलने की भावना को मूर्त रूप देने के लिये कवि बड़ा ही भावव्यंजक अप्रस्तुत लाता है 'बूंद की बालू से दुराई'। बूंद बेचारी बालू की दुराई क्या करेगी ? बालू में पड़ते ही बूंद का अस्तित्व मिट जाता है। ठीक उसी तरह दूती का भी अस्तित्व कृष्णमय है, वह बेचारी कृष्ण से झूंठ क्या बोलेगी ? अप्रस्तुत नितान्त मौलिक है, साथ ही रमणीक भी (३१८९)। चरण-चिन्हों के लिए 'जल का फेन' मौलिक अप्रस्तुत आया हैं। इस अप्रस्तुत द्वारा चरणों की कोमलता व्यक्त की गई है (३२०३)। क्षणिक यौवन की अभिव्यक्ति के लिये 'धूम का मन्दिर' अप्रस्तुत आया है। धुआँ उड़ते-उड़ते कभी मन्दिर का आकार ग्रहण कर लेता है, लेकिन क्षण भर के बाद ही वह मन्दिर नष्ट भी हो जाता है, इसी प्रकार यह यौवन भी क्षणिक हैं (३२१०)। राधा को कवि ने सरोवरी कहा, अतः सांगोपांग वर्णन के लिए सरोवर में स्थित 'उच्चस्थली' को कुचों का अप्रस्तुत बनाना पड़ा। केवल आकार साम्य लाए जाने के कारण यद्यपि यह अप्रस्तुत नीरस है, तथापि है पूर्ण मौलिक (३२३१)। नेत्र और अंजन रेखा के लिए 'दुग्ध शिशु की गरलकला', 'शंकर का यश और कुयश' तथा 'हरि हलधर की जोड़ी' अप्रस्तुत लाये गए है। ये तीनों अप्रस्तुत नितान्त मौलिक हैं (३२६६)। कुचों के वर्णन के लिए लाया गया 'कोट का कंगूरा' अप्रस्तुत भी बिल्कुल मौलिक है। यह अप्रस्तुत कुचों के आकार तथा कठोरता गुण के लिये लाया गया है (३२८६)। इसी प्रकार जम्हाई के लिये 'मन्द मारुत' अप्रस्तुत लाया गया है, जो मौलिक है और सटीक भी (३३०३)। सुरति के बाद आते हुये कृष्ण के सांवले शरीर पर पीक और नख रेखा शोभित हो रही है। ऐसे कृष्ण के लिये 'बसन्त ऋतु का किसलयुक्त शिशु तरु' अप्रस्तुत लाया गया हैं जो सर्वथा नवीन है और बिम्ब ग्रहण कराने में समर्थ है (३३५२)। नारी स्वभाव के चित्रण के लिए

कवि एक बड़ा ही मार्मिक भावपूर्ण और सर्वथा नवीन अप्रस्तुत लाता है 'जल के निकट की बालू'। जल के निकट की बालू पर यदि फावड़ा मारा जाय तो फावड़ा टनक कर उछल जायेगा, किन्तु हाथ से धीरे-धीरे पिघलाकर निकालने पर भरपूर बालू निकल आयेगी। ठीक इसी प्रकार नारी-स्वभाव भी होता है। यदि कठोरती से काम लिया जाय तो स्त्री स्वभाव पर विपरीत प्रतिक्रिया होती है, किन्तु नम्रता दिखाने पर स्त्री अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है। हिन्दी साहित्य में नारी के विभिन्न रूपों का स्वभाव-चित्रण भिन्न-भिन्न प्रकार से कवियों ने किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने नारी और नागिन का स्वभाव एक ही देखा। हरिऔध जी ने त्याग की भावना को उभारा। मैथलीशरण जी गुप्त ने नारी के परहित भाव को सराहा। प्रसाद जी ने नारी को श्रद्धा ही कह डाला तथा डा० रामकुमार जी वर्मा ने पति नेत्रहीन है तो पत्नी सनेत्र होकर कैसे यह देख ले कि पति नेत्रहीन है' कहकर नारी के असीम पतिव्रता को प्रत्यक्ष किया, किन्तु सूर ने 'जल के निकट की बालू' अप्रस्तुत द्वारा नारी-स्वभाव का सटीक और रमणीक चित्र जिस कुशलता के साथ खींच दिया है, वह स्तुत्य है। जहाँ एक ओर इस अप्रस्तुत द्वारा अमूर्त भाव को मूर्त रूप दिया गया है, वहीं दूसरी ओर भाव की सबल अभिव्यक्ति में समूचे हिन्दी साहित्य मे ही नहीं, वरन् पूरे विश्व साहित्य में यह अप्रस्तुत बेजोड़ है (३३७८)। कृष्ण, मानिनी राधा को मनाने के लिये दूती को भेजते हैं, किन्तु राधा मानती नही। इस प्रकार दूती कृष्ण और राधा के बीच बार-बार चक्कर काट रही है। इस भाव के तद्वत चित्रण के लिये कवि एक मौलिक अप्रस्तुत लाता है 'चकडोरी'। चकडोरी बच्चों का खेल है। चकई के बीच म डोरी लपेट दी जाती है। डोरी ढीली करने पर चकई नीचे और डोरी खीचने पर ऊपर आ जाती है। इस प्रकार डोरी के बीच चकई नाचती है। ठीक उसी प्र॰ार राधा-कृष्ण के बीच दूती भी नाच रही है। अप्रस्तुत यद्यपि सामान्य है तथापि भाव-व्यंजना में अपूर्व है (.४०७)। गलने के अर्थ में 'शिवछत' अप्रस्तुत लाया गया है, चाहे वह ज्ञान का गलना हो, चाहे गोपी शरीर का गलना। शिवछत्र कुकुरमुत्ते को कहते हैं। कुकुरमुत्ता सूर्य की धूप पाकर गलकर पानी हो जाता है। इसी गलने के क्रिया-साम्य के कारण यह मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है। यद्यपि अप्रस्तुत दू॰ का है, तथापि भाव के उद्बोधन में बेजोड़ है तथा कवि की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है (३४३२, ३५ १)। वसन्त ऋतु के वर्णन के लिए 'राधा शृंगार' का अप्रस्तुत लाकर सांगोपांग चित्रण हुआ है। राधा के शृंगार का आरोप वसन्त के विभिन्न अंगों पर हुआ है। यह अप्रस्तुत भी सर्वथा नवीन है (३४६२)। चिबुक के वर्णन के लिये मौलिक अप्रस्तुत 'मूंदा मधु' लाया गया है। इस अप्रस्तुत द्वारा चिबुक की मधुरता व्यक्त की गई है (५१६)। कृष्ण के वियोग में गोपियाँ निस्सार और फीकी हो गई हैं। ऐसी गोपियों का अनुभावन 'साढ़ी बिना दूध' अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। यह अप्रस्तुत भी अति होते हुये भी पूर्ण मौलिक और भाव चित्रण में समर्थ है (३६१२। कृष्ण

लिये मौलिक अप्रस्तुत 'चुम्बक' लाया गया है । यह अप्रस्तुत कृष्ण के आकर्षण गुण की सटीक अभिव्यक्ति के लिये लाया गया है (३६२०) । इसी प्रकार कृष्ण के मथुरा गमन के अवसर पर सजाई गई मथुरा नगरी का सांगोपांग चित्रण 'बासक-सज्जा नायिका' के मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है । पति का आगमन सुनकर शृंगार-रतनायिका बासक सज्जा कही गयी है । बासक सज्जा के विभिन्न शृंगारों का आरोप मथुरा नगरी पर किया गया है । निर्जीव मथुरा नगरी को भी जीवन्त बनाने में इस मौलिक अप्रस्तुत की विशेषता है (३६४०) ।

सूरसागर में भ्रमरगीत प्रसंग भावव्यंजना की दृष्टि से अपूर्व है । यद्यपि इस प्रसंग में अप्रस्तुत शैलीगत मौलिकता द्रष्टव्य है, तथापि कुछ मौलिक अप्रस्तुत-सामग्री का प्रयोग हुआ है । कुब्जा के लिए 'लहसुन' अप्रस्तुत लाया गया है । हिन्दू समाज में, अवश्य फैलने वाली गंध के कारण लहसुन खाना निन्द माना गया है, अत: इसे हेय दृष्टि से देखा जाता है । इसी कारण से यह मौलिक अप्रस्तुत कुब्जा के लिये लाया गया है (२७७०) । कृष्ण के वियोग में गोपियाँ अत्यन्त निर्बल और जर्जर हो गई हैं । ऐसी जर्जर गोपियों के लिए 'भुस पर की भीति' मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है । भुस पर की भीति कितनी जर्जर होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है (३८०२) । जमुना का सांगोपांग वर्णन 'विर-हिणी नायिका' के मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है । विरहिणी के सर्वाङ्ग का आरोप जमुना पर किया गया है (३८०६) । रोती हुई विरहिणी गोपियों की कंचुकी पर अंजन के काले दाग पड़ गये हैं । शित्र, कुचों का उपमान है, अत: उसी तारतम्य में कवि ने अंजन के दाग को 'वर्णकुटी' कहा । यह अप्रस्तुत भी पूर्ण मौलिक है (३८५२) । मुख के लिये लाया गया 'घोंसला' अप्रस्तुत भी बिल्कुल नया है । वाणी को खग कहा गया, अत: मुख के लिए घोंसला अप्रस्तुत लाना पड़ा । मुख से वाणी और घोंसला से पक्षी के निकलने में क्रिया साम्य है (३८५२) । नेत्रों के लिये खंजन अप्रस्तुत तो रूढ़ है किन्तु वियोगी नेत्रों के लिये सूर ने 'जला खंजन' अप्रस्तुत लाया है जो सर्वथा मौलिक है (३८८६) । विरहिणी गोपियों के नेत्रों से अश्रुधारा उमड़ रही है, जिससे उनकी पूरी सेज जलमय हो गयी है । ऐसी जलमय सेज के लिये 'घरनई' अप्रस्तुत लाया गया है, जो नितांत मौलिक और भावोत्तेजक है । घरनई हौदे पर बांस बांध कर छोटी-मोटी नदियों को पार करने के लिये बनाई जाती है । इसमें एक बार में एक ही व्यक्ति पार उतर पाता है । प्रस्तुत और अप्रस्तुत का प्रभाव साम्य अद्भुत है (३८९३) । कृष्ण के विर गोपियों का शरीर गलता चला जा रहा है । शरीर के गलने के लिये मौलिक अप्रस्तुत 'ओला' लाया गया है । ओला जमीन पर गिरते ही तेजी से गलता है गोपियों का शरीर भी इसी प्रकार गल रहा है । यहाँ गलने का क्रिया साम्य अपू है (३९२८) । बगपंक्ति के लिये लाया गया 'पटोसिर' भी नितान्त मौलिक है पटोसिर पगड़ी को कहते हैं अप्रस्तुत बड़ा • है तथा प्रस्तुत का रंग भी

कराने में सफल भी है (३६४२)। वियोगी व्रज के चित्रण के लिये 'षट्ऋतु' अप्रस्तुत भी नवीन है। कृष्ण के वियोग में षट्ऋतु एक साथ व्रज में आ गई है (३९६३)। तारों के लिये लाया गया 'पिशुन सभा' अप्रस्तुत भी सर्वथा नवीन है (३९७६)। कृष्ण गोपियों को छोड़कर कुब्जा से मन लगा बैठे। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये कवि को माथापच्ची करके ज्योतिष-जगत से एक नितांत मौलिक अप्रस्तुत लाना पड़ा 'अतिचाल'। जब कोई ग्रह एक राशि का भोगकाल समाप्त किये बिना दूसरी राशि पर चला जाता है तब उसे ज्योतिष की शब्दावली में अतिचाल कहते हैं। गोपियों का पूर्ण भोग किये बिना कृष्ण का कुब्जा से प्रेम कर बैठना क्या इस अतिचाल से कम है? अप्रस्तुत दूरागत होने के कारण क्लिष्ट अवश्य है, किन्तु भावबोध कराने मे अतिशय सक्षम है (३९९०)। कृष्ण के कुब्जा प्रेम के लिये 'प्याज का स्वाद' मौलिक अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है। यह अप्रस्तुत हेय भावना व्यक्त करने के लिये लाया गया है। हिन्दू समाज में प्याज खाना निन्द माना गया है। क्रिया साम्य और सटीकता में ही अप्रस्तुत का सौंदर्य निहित है (३९९०)। वियोग मे गोपियों का प्राण निकलने ही वाला है। जर्जर-शरीर के उठ जाने में घरी-पहर की ही देर है। ऐसे जर्जर शरीर के लिये 'उदवस की भीति' नवीन अप्रस्तुत लाया गया है। उदवस, खानाबदोष को कहते हैं, जो एक घूमने फिरने वाली जाति है, आज यहाँ तो कल वहाँ। अतः खानाबदोष का डेरा क्षणिक, घरी-पहर के लिए ही होता है। जैसे खानाबदोष का डेरा घरी-पहर की ही देर है। इस अप्रस्तुत द्वारा गोपियों की वियोग दशा का हृदय-द्रावक चित्रण हुआ है (४००१)। विरहिणी गोपियों को काम जला रहा है। काम से जलती ऐसी गोपियों के लिये अत्यन्त सामान्य किन्तु भाव से भरपूर नवीन अप्रस्तुत लाया गया है। अरनि (कंडा)। जैसे कण्डा सुलग-सुलग कर जलता है उसी तरह गोपियाँ भी जल रही हैं। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच जलने की क्रिया का अद्भुत साम्य है (४००८)। विरह और गोपियों के शरीर के लिये 'दर्जी और ब्यौंत' का मौलिक अप्रस्तुत प्रस्तुत किया गया है। दर्जी जैसे बेरहम होकर कपड़े को फाड़ता है उसी प्रकार विरह भी निर्दयता पूर्वक शरीर को ब्यौंत रहा है। अप्रस्तुत बड़ा ही मार्मिक और भावव्यंजक है (४०१९)। विरहिणी गोपियों के शरीर की कान्ति फीकी पड़ गई है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए 'घरिया से पिघलकर बहा हुआ सोना मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है। रसायनी घरिया में सोना तपाता है, किन्तु यदि आंच अधिक हो गई तो सोना पिघलकर बह जाता है। गोपियों के शरीर का सोना (कान्ति) भी इसी प्रकार वियोग की आंच में पिघलकर बह गया है। अमूर्त प्रस्तुत को कलात्मक के साथ मूर्त्त रूप देकर स्पष्ट किया गया है (४०२८)। इसी प्रकार वियोगिनी गोपियों की कृश पीठ के वर्णन के लिये 'उलटा कदली दल अप्रस्तुत लाया गया है मौलिक होने के साथ अप्रस्तुत की भाव व्यंजकता अपूर्व है। वियोग में कृशता के कारण गोपियों की पीठ की रीढ़ तथा

अन्य इन्द्रियाँ उल्टे कदली दल की भाँति स्पष्ट दिखाई दे रही हैं। परम्परा में पीठ का वर्णन नहीं मिलता। सूर ने पीठ का अप्रस्तुत प्रयुक्त किया, साथ ही वियोग जन्य कृशता का भी उद्घाटन कर दिया (४०२२)। वियोग में गोपियाँ बालों में तेल नहीं लगाती। ऐसे सूखे-सूखे बालों का वर्णन 'बट लट' के नवीन अप्रस्तुत द्वारा किया गया है (४०२२)। गोपीनेत्र कृष्ण के पीछे उड़ते फिरते हैं। गोपियाँ उन्हें बांध-छानकर रखती हैं, फिर भी वे मानते नहीं। ऐसे नेत्रों के लिये 'कपूर' अप्रस्तुत लाया गया है जो सर्वथा नवीन और वर्ण्य के अनुरूप है। कपूर को खड़िया के साथ बाँध कर रखा जाता है, जिससे वह उड़ न जाय। गोपियाँ भी नेत्रों को इसीलिये बांधकर रखती हैं कि वे उड़ने न पायें, किन्तु फिर भी नेत्र कपूर की तरह उड़ ही जाते हैं। यहाँ उड़ने की क्रिया का साम्य दर्शनीय है (४१६१)। कृष्ण गोपियों के प्रत्येक अंग में समा गये हैं, किसी भी तरह निकलते नहीं। गोपियों के अंग-प्रत्यंग में कृष्ण के समा जाने के लिये बड़ा ही रमणीक, मार्मिक, सूक्ष्म और नवीन अप्रस्तुत लाया गया है 'नस'। मानव शरीर के प्रत्येक अंग के कोने-कोने में नसें व्याप्त हैं, इन्हें कौन निकाल सकता है? कृष्ण का रूप भी गोपियों के प्रत्येक अंग में नसों की तरह समाया हुआ है, वह कैसे निकले? यह अप्रस्तुत बिल्कुल प्रस्तुत के साँचे में ढला हुआ है। ऐसे अप्रस्तुतों को महनीय की संज्ञा दी जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी (४२००)। ऊधौ के उपदेश की नीरसता के लिये 'गूलर फल' अप्रस्तुत लाया गया है। गूलर का फल फोड़ने से जैसे रस नहीं निकलता, वैसे ही ऊधौ के उपदेश भी नीरस हैं। यह अप्रस्तुत अत्यन्त सामान्य किन्तु मौलिक है (४२१८)। गोपियों का मन बार-बार हारता है किन्तु मानता नहीं। ऐसे हठी मन के लिये 'कबन्ध' अप्रस्तुत लाया गया है। कबन्ध के लिये प्रसिद्धि है कि वह सिर कट जाने के बाद भी लड़ता रहा। अप्रस्तुत दूरागत होने के साथ पूर्ण मौलिक है और भाव को स्पष्ट करने में सक्षम है (४५५६)। गोपियों के पास निर्गुण सदा कष्ट ही देता रहेगा, इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये 'केला के पास बेर' अप्रस्तुत लाया गया है। केले के पास के बेर के काँटे सदैव केले के पत्तों में चुभते रहेंगे। इसी प्रकार निर्गुण भी सदा गोपियों को सालता रहेगा (४४८१)। ज्ञान और विरह के बीच गोपियाँ पिस रही हैं—इस भाव के प्रकाशन के लिये 'दुराज' अप्रस्तुत लाया गया है जो नितांत मौलिक और भावबोधक है। दुराज, दोहरे शासन को कहते हैं। दोहरे शासन में प्रजा दोनों ओर से पीसी जाती है, इसी तरह ज्ञान और विरह के बीच गोपियाँ भी पिस रही हैं (४५१०)। कृष्ण की निष्ठुरता का वर्णन 'किसान की बाहों को तोड़कर बहते हुए जल' मौलिक अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। किसान जल रोकने के लिये बाहे देता है, बार-बार मिट्टी चढ़ाता है, किन्तु निष्ठुर नीर उसे बहा ले जाता है, ऐसी ही निष्ठुरता कृष्ण की भी है (४५३७) इसी प्रकार कृष्ण के कपट का

चित्रण 'खीरा' अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। जैसे खीरा ऊपर से चिकना और एक होता है, किन्तु अन्दर से तीन भागों में बँटा होता है, उसी प्रकार कृष्ण भी ऊपर से दिखाने के लिये तो प्रेम करते हैं, किन्तु अन्दर कपट भरा है। यह अप्रस्तुत अति सामान्य जीवन से लिया गया है, किन्तु भाव प्रकाशन में पूर्ण सफल है (४५२८, ४६५६)। कृष्ण के कपट के लिये दूसरा मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'कांजी'। जैसे कांजी से दूध फट जाता है, उसी प्रकार कपट से प्रेम फट गया (४५७५)। गोपियों के कृष्ण प्रेम की अनुभूति के लिये 'हारिल की लकड़ी' मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है। हारिल का प्रण है कि वह जमीन पर नहीं बैठेगा, अतः जब वह जमीन पर उतरता है तब पंजे में एक लकड़ी दबाए रहता है। इस प्रकार हारिल के पंजे में हमेशा लकड़ी रहती है। लकड़ी को वह कभी छोड़ नहीं सकता, इसी प्रकार गोपियाँ भी हमेशा कृष्ण के ध्यान में रत हैं, कृष्ण को कभी छोड़ नहीं सकती। इस अप्रस्तुत द्वारा गोपी प्रेम की अनन्यता सबल रूप में व्यक्त हुई है (४६०६)। इसी प्रकार शशि-किरन के लिए लाया गया अप्रस्तुत 'कुदार' भी पूर्ण मौलिक है (४६५६)। गोपियों के प्रेम की अनन्यता के लिये दूसरा मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'खेड़े की दूब'। जैसे खेड़े पर दूब नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार कृष्ण के अतिरिक्त गोपियों को कोई नहीं दिखाई देता (४६६२)। रति के लिए 'जामन' अप्रस्तुत लाया गया है। जैसे जामन से दही जमता है, उसी प्रकार रति से प्रेम प्रादुर्भूव होता है। यह अप्रस्तुत भी मार्मिक और मौलिक है (४६२३)। वियोग की दो स्थितियाँ होती है—एक में तो वियोगी को स्व का भान रहता है, किन्तु दूसरी में विरही प्रियतम होकर एवं का अस्तित्व खो बैठता है और अपने को ही प्रिय समझने लगता है। राधा को इन दोनों स्थितियों में कष्ट ही होता है। जब वह अपने को राधा समझती है तब कृष्ण का वियोग सताता है और जब अपने को कृष्ण समझ बैठती है तब राधा का वियोग खलने लगता है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में उसे कष्ट ही कष्ट है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये कवि एक मौलिक और प्रस्तुत के सांचे में ही ढला हुआ अप्रस्तुत लाता है 'दोनों छोर पर आग लगी लकड़ी पर बैठा कीट'। ऐसा कीट जिधर जाता है उधर से ही लपट झुलसाती है। प्रस्तुत जितना ही द्रावक है अप्रस्तुत उससे भी अधिक मार्मिक (४७२४)। इसी प्रकार रोएँ के लिए लाया गया 'वृक्ष की शाखा' अप्रस्तुत भी सर्वथा नवीन है (४७३२)। वियोग में गोपियों के प्राण अवधि के तट पर जाकर रुके हैं— इस भाव को व्यक्त करने के लिये बड़ा मार्मिक और भाव-पूर्ण अप्रस्तुत लाया गया है 'जौ के अग्र भाग पर ओसकण' जौ के चरम टूंड़ पर ओसकण विद्यमान रहता है, ठीक उसी प्रकार अवधि के तट पर प्राण रुके हैं, बिल्कुल निकलने ही वाले हैं (४७४०)। ऊधौ के कच्चे ज्ञान के लिये मौलिक प्रयुक्त हुआ है 'बालू की भीति बालू की भीति जैसे जर्जर और क्षणभंगुर होती है,

वैसी ही ऊधो का कच्चा ज्ञान भी निर्बल और क्षणिक है (४१५७)। ताटंक के लिये 'रहंट घटिका' अप्रस्तुत आया है। यह भी पूर्ण मौलिक अप्रस्तुत है (४९३३५)। यह जीवन शाश्वट है, इसकी धारा निरन्तर प्रवाहमान है। जन्म और मृत्यु तो इस धारा के विश्राम स्थल हैं—इस भाव को व्यक्त करने के लिये मौलिक अप्रस्तुत लाया गया है 'ग्राम'। ग्राम, छन्दशास्त्र में शब्दों के समूह को कहते हैं। ग्राम में जैसे शब्द होते हैं उसी प्रकार जीवन में जन्म और मृत्यु हैं (४९१९)। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरसागर में मौलिक अप्रस्तुत सामग्री की प्रचुरता है।

मौलिक अप्रस्तुत-सामग्री जुटाना आसान कार्य नहीं है और न साधारण कवि के बूते की बात है, क्योंकि युग-युगान्तर से चली आती हुई काव्यधारा मे न जाने कितने अप्रस्तुत डूबे-उतराये, न जाने कितने अप्रस्तुतों को कवियों ने जूठा करके छोड दिया है और न जाने कितने अप्रस्तुतों की जुगाली करके उगल दिया है। साधारण कवि यदि माथापच्ची करके दो चार मौलिक अप्रस्तुत जुटा भी ले तो दूसरी समस्या अप्रस्तुतों की मार्मिकता, रमणीयता, भावबोधकता आदि की आ खड़ी होती है। विशिष्ट प्रतिभा समन्वित कवि ही जगत के हर कोने में दृष्टि दौडाकर कुछ मौलिक अप्रस्तुत ढूंढ़ कर लाता है जो रमणीय होते हैं, साथ ही भाववर्द्धक भी। यदि कोई कवि मार्मिक और सच्चे भावबोधक दस-बीस मौलिक अप्रस्तुत भी जुटा दे तो उसे महान् कहने में संकोच नहीं होना चाहिये। महाकवि सूर ने तो एक सौ से भी ऊपर मार्मिक, भावबोधक और नितान्त मौलिक अप्रस्तुत जुटाया है, अतः उनकी महानता तो असंदिग्ध है। हिन्दी साहित्य में अप्रस्तुत योजना के क्षेत्र में मौलिक अप्रस्तुतों के रूप में सूर का योगदान न केवल प्रशंसनीय है अपितु स्तुत्य और श्लाघ्य भी है।

अप्रस्तुत शैलीगत मौलिकता

इस वर्ग के अन्तर्गत मौलिकता का वह स्वरूप आता है जिसमें अप्रस्तुत तो परम्परागत होते हैं किन्तु उनका प्रस्तुतीकरण सर्वथा नवीन, मौलिक शैली में होता है अथवा वे वर्णन आते हैं जिनमें अप्रस्तुत-सामग्री का महत्व नहीं होता अपितु वर्णन शैली में ही सारा सौन्दर्य और चमत्कार समाहित रहता है। शैलीगत मौलिक सौन्दर्य के असंख्य उदाहरण सूरसागर से निकाले जा सकते हैं किन्तु यहाँ कुछ विशिष्ट शैलीगत सौन्दर्य पर ही विचार किया जा रहा है। रामचन्द्र जी ने सेतु बनाने के लिये समुद्र में पत्थर गिरवाना शुरू किया जिससे जल ऊपर आ गया और नदियाँ उल्टी बहने लगीं। इस दृश्य के चित्रण के लिये कवि कल्पना करता है कि मानो राम से भयभीत होकर समुद्र ने अपनी पत्नियों को प्यौसार (मैके) के लिये रवाना कर दिया हो। नदियों को समुद्र की पत्नी तो कहा गया है किन्तु यहाँ राम के भय से पत्नियों को मैके भेजने की वर्णन-शैली मौलिक है (९६८)। अधर के लिये कमल और दाँतों के लिये बिजली अप्रस्तुत परम्परागत है, किन्तु हँसते समय दाँतों के वर्णन के लिये कवि कल्पना करता है मानो कमल के ऊपर

बिजली जमा दी गई हो)। यह वर्णन शैली नितान्त मौलिक है (७००)। स्वर्णिम आंगन में कृष्ण घुटनों के बल चल रहे हैं। कर-चरण कमलों की छाया आंगन में पड़ रही है, जिसके लिये कवि दृश्यविधान करता है, मानो कृष्ण के बैठने के लिये पृथ्वी प्रतिपद पर कमलासन प्रदान कर रही हो। हाथ और चरण का उपमान कमल रूढ़ है किन्तु इसी परम्परागत अप्रस्तुत में कवि ने अपनी मौलिक वर्णन शैली द्वारा असीम सौन्दर्य और चमत्कार भर दिया है (७२८, ८३६)। यशोदा के साथ हरि-हलधर क्रीड़ा कर रहे हैं, मानों सरस्वती के साथ हंस और मोर हों। हंस और मोर दोनों अपना भक्ष्य ग्रहण किये हैं। मोर का भक्ष्य साँप है और हंस का मोती। कृष्ण ने यशोदा की वेणी पकड़ा है और बलराम ने मोतीमाला। इस प्रकार दोनो मानों अपनी-अपनी सीर अलग कर रहे हों। सभी अप्रस्तुत रूढ़ है, किन्तु वर्णन-शैली द्वारा अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया गया है (७७६)। कृष्ण के अधर अरुणिमा लिए श्याम हैं और उन पर श्वेत दांत हैं—इस दृश्य का चित्रण कवि मौलिक शैली में करता है—'मानों नीलमणि के पुट में सिन्दूर में डुबोकर मोती रख दिये गये हों' अरुणिमा के लिये सिन्दूर, श्यामता के लिये नील-मणि और दांत के लिये मोती अप्रस्तुत परम्परागत हैं, किन्तु इनके रखने के और वर्णन का ढग सर्वथा नवीन है (८४३, १०६४)। यशोदा ने कृष्ण के दोनों हाथ ऊखल पर बांध दिया। बंधे हुये हाथ ऐसे लग रहे हैं मानों दो साँप लड़ रहे हों। भुजाओं के लिये साँप अप्रस्तुत तो रूढ़ है, किन्तु दोनों हथेलियाँ एक साथ बँधी है, उनके लिये साँप का फन से लड़ने का वर्णन सर्वथा नवीन है (१००६)। शरीर के लिये लता और कुचों के लिये गिरि अप्रस्तुत परम्परायुक्त हैं, किन्तु इनका प्रयोग सूर ने मौलिक शैली में किया है। पहाड़ पर लता उगती है—यह तो हमने भी सुना है, किन्तु लता पर दो पहाड़ हों, यह आश्चर्य की बात है। यहाँ रूढ़ अप्रस्तुतों में मौलिक शैली द्वारा चमत्कार उत्पन्न कर दिया गया है (१६६४)। इसी प्रकार कुचों के लिये कंचनगिरि और केशों के लिये अंधकार अप्रस्तुत आते हैं, किन्तु इन अप्रस्तुतों को मौलिक शैली में प्रयुक्त किया गया है। कुचों के बीच अलक लटक रही है, मानो कंचनगिरि के भीतर अंधकार व्याप्त हो (१७०१)। सुरति काल में राधा-कृष्ण के शरीर पर श्रमकण निकल आये हैं, उन्हें वे मुख की वायु से सुखा रहे हैं मानो कामाग्नि ज्वालाहीन हो गई है, अतः उसे फूंककर प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। श्रमकण के लिये अग्नि रूढ़ उपमान है, किन्तु यहाँ वर्णन शैली की मौलिकता के कारण अतिरिक्त चमत्कार आ गया है (१८१८—२४४४)। राधा के कुचों के ऊपर मोतीमाला सुशोभित है। कुचों के लिये शिव अप्रस्तुत रूढ़ हैं, किन्तु कवि इस दृश्य का चित्रण सर्वथा नवीन प्रणाली में इस प्रकार करता है—मानो कृष्ण को वश में करने के लिये राधा अच्छत लेकर शंकर भगवान् की पूजा कर रही हों। यहाँ शैलीगत मौलिकता और चमत्कार दर्शनीय है (१८९०)। कृष्ण के श्याम शरीर के लिये रात और पीताम्बर के लिये दिन अप्रस्तुत लाये

जाते हैं, किन्तु पीताम्बर ओढ़े हुये कृष्ण की शोभा का वर्णन कवि इन्हीं अप्रस्तुतों द्वारा नवीन शैली में इस प्रकार करता है—मानो रात और दिन आगे-पीछे एक साथ आ गये हों (१८२२)। नाभि को सरोवर, त्रिबली को सीढ़ी और नेत्रों को मृग कहना परम्परागत है किन्तु कवि ने इन्हें मौलिक शैली में प्रस्तुत किया है। नाभि सरोवर में त्रिबली की सीढ़ी लगी हुई है, उसी से उतरकर गोपी नेत्र रूपी प्यासी मृगी निकट आ गई है (१८२२)। कृष्ण के रूप, सौन्दर्य वर्णन के लिए कवि को ढूंढ़ने पर भी कोई उपमान नहीं मिलता, क्योंकि सारे उपमानों को तो कवियों ने जूठा कर दिया है, अब मौलिक उपमान कहाँ से लाया जाय? बहुत प्रयास करने पर कहीं एकाध उपमान मिल जाते हैं। कवि की इस असमर्थता का चित्रण मौलिक शैली में इस प्रकार किया गया है—जैसे हवन करते समय बड़ी मुश्किल से मुख से स्वाहा शब्द निकलता है, इसी प्रकार कवि मौलिक उपमान भी बड़ी मुश्किल से कह पा रहा है। हवन करते समय नाक और मुख में धुआँ भर जाता है, जिससे बड़ी कठिनाई से वाणी निकल पाती है (१८२३)। आंतरिक रति के लिये अग्नि या दीपक अप्रस्तुत आता है। सूर ने दीपक अप्रस्तुत को मौलिक शैली में प्रयुक्त करके इसके प्रभाव को द्विगुणित कर दिया है। मन्दिर के भीतर दीपक जलता रहता है, कोई देख भी नहीं पाता किन्तु यदि तृण का स्पर्श हो जाय तो सभी देख लेते हैं। इसी प्रकार रति भी मानव के अन्तर में छिपी रहती है, कोई देख नहीं पाता, किन्तु आँखें चार होते ही वह सब पर प्रकट हो जाती है (२२५८)। सुरति छिपाये नहीं छिपती सब पर प्रगट हो ही जाती है, इसका वर्णन मौलिक शैली में इस प्रकार हुआ है 'सुगन्ध चोरी छिपाई नहीं जा सकती' (२३१३)।

कृष्ण को व्रज-चन्द तो कहा गया है किन्तु सूर ने अपनी मौलिक वर्णन शैली द्वारा पूरे चन्द्र विकास का आरोप कृष्ण विकास पर कुशलता पूर्वक कर दिया है, जिससे इस अप्रस्तुत का प्रभाव बढ़ गया है। 'कृष्ण वृन्दावन चन्द्र हैं, यदुकुल आकाश है और देवकी द्वितीया तिथि जिसमें यह चन्द्र पैदा हुआ। गर्भ कुहू है और मधुपुरी पश्चिम दिशा। बसुदेव शम्भु हैं, जिन्होंने सिर पर धारण करके कृष्ण-चन्द्र को लाया। व्रज प्राची दिशा है, यशोदा राका-तिथि और नन्द शरद ऋतु। गोपबाल तारे हैं तथा दनुज कुल अन्धकार है। गोपीजन चकोर हैं, सोलह कलाओं से पूर्ण अवतार ही चन्द्रमा की षोडश कलायें हैं। इस प्रकार अपनी मौलिक शैली द्वारा कृष्ण और चन्द्रमा का सांगोपांग वर्णन कवि ने कर दिया है (२४१३)। मुख को चन्द्रमा और तिलक को परी कहा जाता है, किन्तु सूर ने इन अप्रस्तुतों को मौलिक शैली में प्रस्तुत किया है। राधा के माथे पर सखियों ने केसर की आड़ बनाया है वह ऐसी लगती हैं मानो चन्द्र मंडल के बीच सुधा की परी हो। यहाँ वर्णन शैली कवि की अपनी मौलिक है (२७३२)। सुरति के बाद राधा पुन शृ गार कर रही हैं मानो रति-युद्ध में लड़े श्रम-सनिकों को पुरस्कार

प्रदान कर रही हैं। कटि को करधनी, भुजा को आभूषण, उर को हार, कर को कंगन आँख को अंजन, नाक को बेसरि, ललाट को तिलक और सम्मुख प्रहार सहने वाले अधरों को हंस कर पान का बीड़ा दे रही हैं, लेकिन रति-युद्ध में पीछे रह जाने वाले कायरकेशों को पकड़-पकड़ कर बांध रही है। यहाँ यों तो पूरी वर्णन शैली मौलिक है, किन्तु कायर केशों को पकड़ कर बांधने में विशेष चमत्कार और सौन्दर्य सन्निहित है (२८०१)। राधा-सौन्दर्य-चित्रण में और अनेक मौलिक वर्णन शैलियों का प्रयोग हुआ है। कंठ को कम्बु के समान कहना परम्परा है किन्तु इस अप्रस्तुत का प्रयोग कवि ने मौलिक शैली मे करके प्रभाव को कई गुना बढ़ा दिया है। राधा के कम्बु कंठ द्वारा मानों ब्रह्मा ग्रीवा उठाकर सुन्दरियों की गणना करता हुआ मात्र राधा की गणना किया हो। इस मौलिक वर्णन शैली को देखकर इसी के समानान्तर संस्कृत की एक वर्णन शैली की ओर अनायास ध्यान चला जाता है¹ (८०२)। इसी प्रकार कुचों को कनक-सम्पुट तो कहा जाता रहा है, किन्तु अपनी मौलिक शैली द्वारा इस अप्रस्तुत को भी कवि ने महत्तर बना दिया है। राधा के कुच मानो पति के मन रूपी मणि को सुरक्षित रखने के लिए कनक-सम्पुट हैं (२८०२)। नेत्रों के लिए मीन अप्रस्तुत बहुत प्राचीन है किन्तु सुरति के बाद अधिक लाल हुए नेत्रों के वर्णन के लिए कवि इस अप्रस्तुत मे एक विशेषण जोड़कर "महावर से धोये हुए मीन" कहता है (३२८१)। इसी प्रकार अधरों के लिए बन्धूक अप्रस्तुत भी बहुत पुराना है, किन्तु काजल लगे अधरों के लिए कवि कुम्हिलाया बन्धूक अप्रस्तुत लाता है। यह वर्णन शैली भी नवीन है (३२९१) नेत्रों के लिए मृग अप्रस्तुत भी परम्परागत है किन्तु इस अप्रस्तुत का प्रयोग कवि ने मौलिक शैली में किया है। हिरन चन्द्रमा का बाहन भी है। राधा ने अपने नेत्रों के रूप में चन्द्रमा के बाहन हिरन को हर लिया है, अतः चन्द्रमा बेचारा रस हीन हो गया है (३२८१)। माँग के लिए गंगा अप्रस्तुत भी पुराना है, किन्तु कवि ने इसे भी मौलिक शैली में इस प्रकार प्रयुक्त किया है- राधा ने अपनी माँग के रूप में शंकर के सिर की गंगा को धारण कर लिया है, अतः रुद्र, भगवान् गंगाहीन होकर चिल्ला रहे हैं (३२८१)। इसी प्रकार वेणी के लिए साँप अप्रस्तुत भी परम्परागत है किन्तु कवि ने अपनी मौलिक शैली द्वारा इस अप्रस्तुत के प्रभाव को कई गुना बढा दिया है। राधा ने शंकर के हार सर्प को वेणी के रूप में चुरा कर पीठ पीछे छिपा लिया है। यहां पराया धन चुराकर पीठ पीछे छिपाने विशेष सौंदर्य और चमत्कार निहित है। बच्चे दूसरे का धन चुरा कर पीठ पीछे छिपा लेते हैं, अल्हड़ राधा ने भी ऐसा ही किया (३२८१)। नेत्रों के लिए कुमुदिनी अप्रस्तुत परम्परागत है, किन्तु कवि ने इसका प्रयोग मौलिक

१—पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्य कवेर भावादनामिका सार्थवती बभूव ॥

शैली में किया है। राधा ने रूठ कर अपने नेत्रों को झुका लिया है, जिसके लिए कवि कहता है मानो चन्द्रमा से रूठ कर कुमुदिनी अधोमुख होकर विकसित हुई हो (३४४४)। कुचों के लिए शिव अप्रस्तुत रूढ़ है, किन्तु कवि ने इसका प्रयोग नवीन शैली में किया है। कंचुकी पर अंजन मिश्रित अश्रु कण गिर रहे हैं, जिससे काले दाग पड़ गए हैं। कवि कहता है "मानो पर्णकुटी के भीतर शंकर भगवान् दो रूप धारण करके निवास कर रहे हों" (३८५२)। मुख के लिए चन्द्रमा अप्रस्तुत प्राचीन है किन्तु वियोगकालीन गोपी-मुख का वर्णन कवि इस प्रकार करता है- "चन्द्रमा की छवि तो छिप गई, मात्र कलंक शेष रह गया है। यहाँ भी कवि की शैली पूर्ण मौलिक है (४०२२)। विरहिणी गोपियों के नेत्रों से कुच, कंचुकी पर अश्रुधारा गिर रही है। कवि इस दृश्य का चित्रण करता है" मानो गोपीनेत्रों ने विरह की विज्ज्वरता के लिए शिव के सिर पर सौ घड़े जल प्रतिदिन चढ़ाने का नियम बना लिया हो।" ज्वर शान्ति के लिए हमारे यहाँ शंकर को प्रतिदिन सौ घड़ा जल चढ़ाया जाता है (४७४०)। मन को मस्त हाथी कहा जाता है किन्तु प्रभाव को और अधिक उत्तेजित करने के लिए गोपियों के प्रबल मन को कवि ने "भील का हाथी" कहा। यह वर्णन शैली भी कवि की मौलिक है (४८९१)।

कृष्ण के लिए चकवा और गोपियों के लिए चकई अप्रस्तुत परम्परायुक्त हैं, किन्तु कवि ने इनका प्रयोग अपनी मौलिक शैली में करके उनके प्रभाव को सहस्र गुना बढ़ा दिया है। विरहिणी गोपी स्वप्न देखती है कि कृष्ण उसके घर आए हैं और हँस कर उसकी भुजा पकड़ लेते हैं। अगिली क्रिया का रसास्वादन गोपी को मिलने ही वाला था कि बैरिन नींद टूट गई और गोपी का रस भंग हो गया। इस दृश्य का चित्रण कवि इस प्रकार करता है-"सरोवर के तट पर बैठी चकई अपने प्रतिबिम्ब को ही चकवा समझ बैठी और आनन्दित होकर पिय का आलिंगन करने के लिए आगे बढ़ी ही थी कि निष्ठुर विधाता ने पवन ढुरका दिया, जिससे जल चंचल हो गया और प्रतिबिम्ब मिट गया। चकई बेचारी के सिर पर सौ घड़े पानी पड़ गया। वास्तव में, किसी की मधुर प्रीति के चार क्षण भी नियति को कभी गँवारा नहीं हुए! इस दृश्य का प्रस्तुत पक्ष जितना प्रबल और भावुक है, अप्रस्तुत पक्ष उससे भी कहीं अधिक सशक्त और हृदय-विदारक है। मुझसे यदि कोई पूछे कि सूरसागर के पाँच हजार पदों में कौन-सा चित्र सबसे रमणीक और भावुक है तो अनायास ही मेरी अंगुली इसी चित्र की ओर उठ जायगी। यहाँ सौंदर्य अप्रस्तुत सामग्री में नहीं है अपितु कवि की मौलिक अप्रस्तुत शैली में है (३८८६)। कुरूप, कुबरी बेचारी कुब्जा को कौन पूछता, लेकिन कृष्ण का वरद-हस्त इसके ऊपर पड़ गया, जिससे वह गोपियों की सौति बन बैठी। ऐसी कुब्जा का वर्णन कवि इस प्रकार करता-"फलों में जैसे तितलौकी घूर पर पड़ी रहती है, कोई पूछता तक नहीं किन्तु वही जब जन्त्री के हाथ में पड़ जाती तो उसी से सुरीली राग-रागिनी निकलने लगती है कुब्जा के इस वर्णन में भी अप्रस्तुत-सामग्री का उत्त

नहीं है, जितना कवि की मौलिक अप्रस्तुत-शैली का (४०६२) "वियोगी की दशा बड़ी विचित्र होती है, वह अपने को कहाँ तक सम्भाले ? इस सृष्टि में भगवान् के एक अंग से जिनका वियोग हो गया, उनकी दशा इस प्रकार है-भगवान् के चरणों से वियुक्त होकर गंगा आज तक बहती ही चली जा रही है, रोम से बिछुड़ कर कमल कंटक हो गए, नेत्रों से अलग होकर चंद्रमा आज तक अपना शरीर गला रहा है तथा वाणी से वियुक्त होकर सरस्वती को विधिविरुद्ध ब्रह्मा की पुत्री होकर भी पत्नी होना पड़ा भगवान् के एक अंग से जो विछुड़े उनकी यह दशा हुई। गोपियाँ तो भगवान् के सर्वांग से वियुक्त हो गई हैं, अतः उनका क्या उपचार है ? इस वर्णन में भी अप्रस्तुत-सामग्री का नहीं, वरन् अप्रस्तुत शैली का भी चमत्कार है (४३९६)। इसी प्रकार गोपियाँ ऊधौ से अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन इस प्रकार करती है-"इस शरीर की त्वचा काट कर यदि दुन्दुभी मंढ़ाई जाय तो उससे भी कान्हकान्ह का ही सप्तस्वर निकलेगा। प्राण निकल जाने पर जहाँ शरीर की मिट्टी बनाई जायेगी उस स्थान पर जो वृक्ष लगाया, उसके शाखा, फल, पत्ते सब प्रातः उठकर हरिनाम ही लेंगे। इस वर्णन में भी मौलिक अप्रस्तुत शैली का ही चमत्कार है (४४२५)। इन उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त सूरसागर में और भी अनेक मौलिक अप्रस्तुत शैली के वर्णन ढूढ़े जा सकते हैं। भ्रमरगीत प्रसंग में कवि ने ऐसी अनेक मौलिक वर्णन शैलियों का प्रयोग किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अप्रस्तुत योजना के क्षेत्र में मौलिक सामग्री और शैली-दोनों वर्गों में सूर की देन अभूतपूर्व है। जितने मौलिक अप्रस्तुत और जितनी मौलिक अप्रस्तुत शैलियाँ हिन्दी साहित्य को सूर ने दिया, उतना कदाचित् गोस्वामी तुलसीदास ने भी न दिया हो। इस क्षेत्र में सूर का योगदान सराहनीय है। उन्होंने अनेक मौलिक अप्रस्तुतों से हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया, इसके लिए हिन्दी साहित्य सदासर्वदा उनका ऋणी रहेगा।

(ख) सूर की अप्रस्तुत योजना का परवर्ती कवियों पर प्रभाव :—

साहित्य एक शृंखला के समान होता है। विभिन्न कवि इस शृंखला की लड़ियाँ हैं जो परस्पर जुड़ी हुई हैं। प्रत्येक कवि पूर्ववर्ती कवियों से कुछ ग्रहण करता है और परवर्ती कवियों के लिए कुछ न कुछ छोड़ जाता है। आज का कवि यदि आने वाले कल के कवि के लिए फूलस्वरूप है तो बीते हुए कल के कवि के लिए फलस्वरूप सूर की अप्रस्तुत योजना पर भी शृंखला लागू होती है। अप्रस्तुत योजना के क्षेत्र में जहाँ सूर ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से बहुत कुछ ग्रहण किया है, वहीं परवर्ती कवियों के लिए बहुत कुछ दिया भी है। यों तो सूर की अप्रस्तुत योजना का प्रभाव आज तक के प्रत्येक कवि पर कम-वेश मात्रा में ढूंढ़ा जा सकता है, किन्तु यहाँ केवल ब्रज भाषा के वैष्णव कवियों में ही सूर की अप्रस्तुत योजना का प्रभाव ढूंढने का प्रयास किया गया है

तुलसीदास

सूर और तुलसी का जोड़ा हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध है। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों अद्वितीय हैं, किन्तु दोनों में कौन श्रेष्ठ है-यह व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर निर्भर करता है ? कृष्णभक्त होकर भी सूर ने नवम स्कन्ध में रामकथा लिखी और रामभक्त होकर भी तुलसी ने कृष्ण गीतावली लिखी। तुलसी का रचना काल सूर के रचनाकाल से लगभग अर्द्ध शताब्दी बाद का है। अतः तुलसी पर सूर का प्रभाव स्वाभाविक भी है। सूर की विनयावली को देखकर ही तुलसी ने विनयपत्रिका लिखी-यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। तुलसी के गीतावली श्रीकृष्ण गीतावली और विनयपत्रिका ग्रंथ भी सूर के प्रभाव से ही लिखे गए। अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से भी तुलसी पर सूर का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सूर के स्फुट अप्रस्तुतों के अतिरिक्त कुछ अप्रस्तुत योजनाओं से लदे पूरे पद ही तुलसी ने ज्यों के क्यों अपना लिया है। ऐसे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। सूर की गोपियाँ अपने नेत्रों के लिए कहती हैं—"कृष्ण से बिछुड़ते ही आज नेत्रों का भी विश्वास जाता रहा। ये तभी ही कृष्ण के साथ उड़ नहीं गए अथवा श्याम मय नहीं हो गए। ये रूप-रस के लालची कहे जाते हैं, लेकिन इनकी वैसी करनी नहीं रह गई। ये लोचन तो क्रूर हैं, कुटिल हैं, मीन की छवि इन्होंने व्यर्थ में छीन लिया। समय बीतने पर अब नया शूल पैदा हो गया है अब उनका जल-मोचन और सोच करना व्यर्थ है। पलकों ने भी दगा दे दिया है, इसलिए ये नेत्र जड हो गए हैं (३९१४)। इस पूरे पद को मूलरूप में तुलसीदास ने अपनी श्रीकृष्ण गीतावली में ग्रहण कर लिया है (श्रीकृष्ण गीतावली पद २४) कृष्ण-वियोग में एक सखी दूसरी से कहती है "कोई सखी नई बात सुनकर आई है कि कामदेव ने सम्पूर्ण ब्रजभूमि देवराज इन्द्र से मिल्कियत के रूप में प्राप्त कर ली है। बादल उस कामदेव के संदेशवाहक दूत हैं। उड़ती हुई बगुलों की पंक्ति उसका पटोसिर (पगड़ी) है, बिजली झंडा है कोकिल की वाणी मानों भटों का यशोगान है, मेघ गर्जना के बहाने मानो उसकी दुहाई फिर रही है। दादुर, मोर, चकोर, भ्रमर, तोते, पुष्प, पवन-ये सब उसके सहायक हैं। अब वह कामदेव वृन्दावन में ही डेरा डालकर रहना चाहता है। विधाता के आगे कुछ भी वश नहीं चलता। जब तक बलराम, कृष्ण यहाँ थे तब तक कोई यहाँ की सीमा भी नहीं छू सका। अब कृष्ण के बिना इस गोकुल में कौन ठकुराई करेगा" (३९४२) ? इस पद को भी तुलसी दास ने मूल रूप में अपना लिया है (श्रीकृष्ण गीतावली पद ३०)। इस पद में आये सूर के मौलिक अप्रस्तुत-मिल्कियत, पटोसिर, धावन आदि को तुलसी ने ग्रहण कर लिया है। एक गोपी खिन्न होकर ऊधौ के प्रति कहती है "उसकी सीख अब ब्रज में कोई भूलकर भी नहीं सुनेगा, जिसकी कथनी और करनी में मेल नहीं है ? वह स्वयं तो सदा कमल के सुधा में हृदय को डुबोये रखता है, किन्तु हमसे

कहता है कि आकाश में कुआँ खोद कर उसके जल से स्नान करने पर विरहजनित कष्ट दूर हो जायेगा। जिस गाँव में धान होता है उसका पता पुआल देखकर ही लग जाता है। भ्रमर के ज्ञान का पता उसकी रसलोलुपता से चल जाता है। अधिक कहने से रस नहीं रह जायेगा, जैसे गूलर का फल फोड़ने से रस नहीं निकलता'' (४२१५)। इस पद को भी तुलसी ने मूलरूप में अपना लिया है, (श्री कृष्ण गीतावली पद ४४)। इस पद में आयी सूर की मौलिक अप्रस्तुत योजनाओं-आकाश में कुआं खोदना, धान का गाँव पयार से जानना, गूलर का फल फोड़ना आदि को तुलसी ने तद्वत् ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार सूरसागर का पद ४२३९ तुलसीदास की श्री कृष्ण गीतावली का पद ३३ है। इसमें आयी सूर की मौलिक अप्रस्तुत योजना ''जल में डूबते को फेन का अवलम्बन'' भी तुलसी ने ग्रहण कर लिया है।

श्री कृष्ण गीतावली की तरह गीतावली में भी तुलसी ने सूरसागर के अनेक पदो को मूलरूप में ग्रहण कर लिया है। आंगन में खेलते हुये बालक कृष्ण का वर्णन सूरदास इस प्रकार करते हैं—कृष्ण आंगन में घुटने के बल दौड़ फिर रहे हैं। नील मेघ के समान बालक का शरीर देखकर माता ने निकट बुलाया। बन्धूक पुष्प के समान अरुण चरण कमलों में अंकुश आदि प्रमुख चिन्ह सुशोभित हैं तथा उनमें जो नूपुर है, वे ऐसे जान पड़ने हैं मानो भगवान ने घोंसले रच कर मुनि जन रूप कल हंसों को बसाया है। कटि प्रदेश में मेखला, शंख सदृश ग्रीवा में सुन्दर हार और भुजाओं में आभूषण पहनाये गए हैं तथा वक्षस्थल में श्री वत्स चिन्ह, व्याघ्रनख और अनेक मणियों से जड़ा हुआ स्वर्णिम पदिक सुशोभित है। चिबुक, दंतावली, अधर, नासिका, कान और कपोल बड़े ही प्रिय हैं। सुन्दर भृकुटियाँ करुणारस पूर्ण है तथा नेत्र मानों दो कमल हैं। विशाल भाल पर श्रेष्ठ लटकन लटक रहा है और बाल्यावस्था के सुन्दर केश सुभायमान हैं। वे सब ऐसे जान पड़ते हैं मानो गुरु, शुक्र, मगल, शनि को आगे करके अन्धकार का समूह चन्द्रमा से मिलने आया हो। जब माता ने पीताम्बर ओढ़ा दिया तब एक अद्भुत उपमा उपजी, मानो नील मेघ पर नक्षत्रगण को दीप्यमान देख चपला ने अपना स्वभाव छोड़कर उसे छिपा लिया। भगवान् के अंग-अंग पर मानो काम के समूह अपने छविपुंज को लेकर छाये हुये हैं। सूरदास कहते हैं उस छवि का वर्णन कैसे गाते बने, जिसे निगमनेति—नेति कहते हैं (७९२) ? इस पद को तुलसीदास ने श्याम की जगह राम और अन्तिम पंक्ति को परिवर्तित करके अपना लिया है (गीतावली-बालकाण्ड पद २६)। इस पद मे कुछ परम्परागत अप्रस्तुत हैं—जैसे कृष्ण—शरीर के बादल, अरुण चरणों के लिए बन्धूक, नेत्रों के लिए कमल और पीताम्बर के लिए चपला कुछ मौलिक अप्रस्तुत हैं—जैसे—लटकन के पुखराज के लिए गुरु, हीरे के लिए शुक्र, पद्मराग के लिए मंगल, नीलमणि के लिए शनि आभूषणों के लिये नक्षत्रगण आदि। तुलसीदास ने सूर के इन परम्परागत तथा मौलिक अप्रस्तुतों को ज्यों का त्यों अपना लिया है कृष्ण

की बालछवि का वर्णन सूरदास करते हैं—'कृष्ण की बालछवि का वर्णन करता हूँ। वह सकल सुखों की सीमा और करोड़ों कामदेव की शोभा का हरण करने वाला है। लड़ाई में कृष्ण की भुजाओं ने सर्पों को, नेत्रों ने कमलों की तथा मुख ने चन्द्रमा को जीत लिया है, अतः वे क्रमशः बिल, जल और आकाश में जा बसे है। अति-मनोहर और मृदुल श्याम-शरीर पर आभूषणों की सजावट ऐसी जान पड़ती है मानों अति सुन्दर शृंगार रस का नन्हा पौधा अद्भुत फलों से सम्पन्न हुआ हो। मणिमय आगन मे घुटनों के बल चलते हुये जो हाथों का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह मानो धरणी छवि को कमल के सम्पुट में भरकर अपने हृदय में धारण कर रही है। उस समय यशोदा अपने लाल को देखकर अपने पुण्य फल का अनुभव कर रही है। सूर के हृदय मे भी प्रभु का वह किलकना और आनन्ददायक लड़खड़ाना बसा रहता हैं' (७२७)। तुलसीदास ने इस पद को नाममात्र के परिवर्तन के साथ ग्रहण कर लिया है (गीतावली-बालकाण्ड-पद २७)। इस पद में आए हुये भुजाओं के लिये सर्प, नेत्रो के लिये कमल, मुख के लिये चन्द्रमा, आभूषणों के लिये फल, बाल कृष्ण के लिये शिशुतरु, हाथों के लिये कमल आदि अप्रस्तुतों को तुलसी ने अपना लिया है। इसी प्रकार सूरसागर का पद ७३५, तुलसीदास की गीतावली-बालकाण्ड का पद ३१ है। इस पद में मुख के लिये चन्द्रमा, कृष्ण शरीर के लिये मोर, बलराम के लिए चन्द्रमा, हाथ के लिये कमल, नेत्रों के लिये मैन—सरसी के सरोज आदि अप्रस्तुत तुलसी ने सूर से ग्रहण कर लिया है। सूरसागर का पद ७६६, तुलसीदास कृत गीतावली—बालकाण्ड का पद . ३ है। इस पद में अंगुली के लिये कमल, नख के मोती, आँख के लिये कमल, बालकृष्ण के लिए बाल-बारिधर, पीताम्बर के लिये बिजली अप्रस्तुत आए हैं। इन अप्रस्तुतों के लिये भी तुलसी सूर के ऋणी हैं। इसी प्रचार सूरसागर का पद ८२३, गीतावली-बालकाण्ड का पद ३८ है। इसमें नेत्रों के कमल, प्रकाश के लिए ज्ञान, अन्धकार के लिये त्रास, सूर्य के लिये सन्तोष, पक्षियों के बन्दीजन, भवरों के लिये बैरागी आदि अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। इन अप्रस्तुतो को तुलसी ने सूर से ग्रहण कर लिया है। इसी प्रकार सूरसागर का पद ५६२, गीतावली के लकाकाण्ड का पद ८ है।

इन पूर्ण पदों के अतिरिक्त स्फुट रूप में भी अनेक अप्रस्तुतों के लिये तुलसी-दास सूर के ऋणी हैं। सूरदास ने गोपी नेत्रों के वर्णन के लिए 'उड़ने को आतुर किन्तु पंख फैलाने में असमर्थ खंजन' (२४३४) अप्रस्तुत लाया है। गोस्वामी जी ने भी इसका प्रयोग कृष्ण के उनींदें नेत्रों के लिये किया है (कृष्ण गीतावली पद)। कृष्ण की कुटिल अलकों के लिये सूर ने 'कामदेव का फंदा' (२४४५) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। गोस्वामी जी ने भी इस अप्रस्तुत को सूर से ग्रहण करके कृष्ण की अलकों का ही वर्णन किया है (श्री कृष्ण गीतावली पद २२)। सूर ने हंसते हुए कृष्ण के दांतों की शोभा का वर्णन 'कमल पर जमाई बिजली' (३०●) अप्रस्तुत द्वारा किया है यह सूर का मौलिक अप्रस्तुत है। तुलसीदास ने भी राम

के दांतो का वर्णन 'सोने के कमल में बिजली सहित बज्र' अप्रस्तुत द्वारा किया है। गोस्वामी जी की इस कल्पना में सूर का ही आधार लिया गया है (गीतावली-उत्तरकाण्ड-पद १२)। कृष्ण हाथ में रोटी लेकर दाँतों से खा रहे हैं—इस दृश्य के वर्णन के लिए सूर ने एक मौलिक अप्रस्तुत लाया है—'वराह भगवान् के दांतों पर भूधर सहित पृथ्वी' (८२२)। कल्पना दूर की है, किन्तु मौलिक है। तुलसीदास ने इस अप्रस्तुत का प्रयोग चित्रकूट के वर्णन के प्रसंग में किया है। पर्वत की चोटी पर बगपंक्ति के ऊपर घनघटा के लिये यह अप्रस्तुत प्रयुक्त हुआ है (गीतावली-अयोध्याकाण्ड-पद ५०)। स्पष्ट है कि इस अप्रस्तुत की मौलिक कल्पना सूर ही है, तुलसी उनके ऋणी हैं। कृष्ण के कानों के पास शोभित कुँडलों के लिए 'गुरु और शुक्र' (८०२) अप्रस्तुत सूरदास द्वारा लाया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने कुँडलों का वर्णन इन्हीं अप्रस्तुतों द्वारा किया है (गीतावली-उत्तरकांड पद ९)। मौलिक कल्पना सूर की है, तुलसी इन अप्रस्तुतों के लिये सूर की ऋणी हैं। कुँडलों के वर्णन के लिए सूर ने दूसरा मौलिक अप्रस्तुत लाया है 'कामदेव के झंडे के मीन' (६७१)। गोस्वामी जी ने भी राम के कुण्डलों का वर्णन इसी अप्रस्तुत द्वारा किया है (गीतावली-उत्तरकाण्ड,पद ६)। सूरदास ने कृष्ण के गले की तुलसीमाला के लिये एक नवीन अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है 'शुकपंक्ति' (१२४५)। तुलसीदास ने भी राम की तुलसीमाला का वर्णन 'कीर पंक्ति' अप्रस्तुत द्वारा किया है। (गीतावली-उत्तरकाण्ड-पद ६)। सूर ने कृष्ण के हाथों के नीचे के राधा-नेत्रों का वर्णन 'साँप के फन के नीचे की मणि' (१२९३) अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। गोस्वामी जी ने भी इस अप्रस्तुत का प्रयोग सुमित्रा द्वारा बालकों को हृदय से लगाने के लिये किया है (गीतावली-बालकाण्ड-पद १४)। सूरदास ने नाभि को सुधा-सरसी, त्रिबली को सीढ़ी (१८२२) और रोमराजि को शैवाल (३०६५) कहा है। गोस्वामी जी ने भी इन तीनों अप्रस्तुतों को ग्रहण किया है—'नाभि सर, त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैंवलछबि पावति' (गीतावली-उत्तरकांड-पद १७)। सूर ने कुण्डलों के लिए 'रंहट घंटिका' (३०६३) अप्रस्तुत लाया है। तुलसी ने भी इस अप्रस्तुत को अपनाया है, किन्तु नेत्रों के वर्णन के लिए (गीतावली-सुन्दर काण्ड-पद ४९)। कृष्ण के शरीर पर सुशोभित श्रमकणों का वर्णन सूर ने 'उड्गन' (२०८८) अप्रस्तुत द्वारा किया गया है। गोस्वामी जी ने भी राम के मुख पर सुशोभित श्रमकणों के लिये इस अप्रस्तुत का प्रयोग किया है (गीतावली-उत्तरकांड-पद १८)। कृष्ण की शोभा का रंच मात्र भाग कामदेव को मिला है। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने कृषि जगत से एक नितान्त मौलिक अप्रस्तुत 'सिलबार्‌यो' (३१३७) प्रयुक्त किया है। सिलवारना खेत में गिरे दाने की बिनाई को कहते हैं और सिलवारयो बिनाई में प्राप्त अन्नकण को। फसल कटने पर कुछ दाने खेत में गिर जाते हैं, बाद में किसान उनकी बिनवाई कराता है। फसल की अपेक्षा बिनवाई में जो अन्न किसान को मिलता है, कृष्ण के सामने उतना

ही रूप कामदेव को मिला है। तुलसीदास ने भी इस अप्रस्तुत को सूर से ग्रहण किया है। रामरूप के सामने काम और रति को केवल 'सिलालवनि' ही मिली है (गीतावली-बालकाण्ड-पद १०६)। इसी प्रकार गजमुक्ता माल के लिये सूर ने 'बगपंक्ति' (३४६२) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। तुलसीदास ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण किया है (गीतावली-उत्तरकाण्ड-पद ६)।

कवितावली में भी प्रयुक्त अनेक अप्रस्तुतों के लिये तुलसी के ऋणी हैं। सूर ने भजनहीन नर को 'सूकर-स्वान-सियार' (४१) कहा है। गोस्वामी जी ने भी लिखा है कि राम ऐसे बालक से जिनका स्नेह नहीं है वे 'खर-सूकर-स्वान' समान हैं (कवितावली-बालकाण्ड पद ६)। कृष्ण का अवलोकन गोपियों के मन को अपनी ओर खींच लेता है। सूर ने लिखा है मानो अवलोकनि मन को 'ओल' (१२४८) में माँग रही है। ओल का अर्थ है गिरवी रखना। सूर के इस मौलिक अप्रस्तुत को गोस्वामी जी ने भी अपनाया है (कवितावली-सुन्दरकांड-पद २१)। इसी प्रकार कंस को सूर ने 'कसाई' (२१२९) कहा है। गोस्वामी जी ने भी कलियुग को 'कसाई' कहा है (कवितावली-उत्तरकाण्ड-पद १८१)। सूर ने दांतों के लिए 'कुन्दकली' (३३८६) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। गोस्वामी जी ने भी इस अप्रस्तुत को इस अर्थ में ग्रहण किया है (कवितावली-बालकाण्ड-पद ५)। वियोग में गोपियों के शरीर के गलने के लिये सूर ने 'ओला' (४९२१) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। गोस्वामी जी ने भी इस अप्रस्तुत को राम के प्रताप से शत्रुओं के गलने के लिये लाया है (कवितावली-लंकाकांड-पद ५७)। विरह गोपियों के शरीर को नष्ट कर रहा है। विरह और गोपी शरीर के लिये सूर ने एक सर्वथा नवीन अप्रस्तुत का प्रयोग किया है 'दर्जी और ब्यौंत' (४०१९) अर्थात् दर्जी जैसे कपड़े को ब्यौंतता है, उसी प्रकार विरह भी शरीर को ब्यौंत रहा है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण कर लिया है (कवितावली-उत्तरकांड-पद १३३)। कृष्ण कुब्जा से जा बिधे। कुबरी कुब्जा का भाग्य खुल गया। वह गोपियों की सौति बन बैठी। कृष्ण के इस अंधेर के वर्णन के लिये सूरदास ने एक नितांत मौलिक और ऐतिहासिक अप्रस्तुत लाया है 'चमड़े का सिक्का चलाना' (४२५७) अर्थात् कृष्ण ने कुब्जा से प्रेम करके चमड़े का सिक्का चला दिया है। इस अप्रस्तुत से हुमायूँ के समय में एक दिन के शासन में भिश्ती द्वारा चमड़े का सिक्का चला देने के ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत है। गोस्वामी जी ने भी इस अप्रस्तुत को रामनाम महात्म्य के चित्रण के लिये प्रयुक्त किया है, अर्थात् रामनाम ने अधर्मों को भी तार कर मानो चमड़े का सिक्का चला दिया है (कवितावली-उत्तरकांड-पद ७०)। इस प्रकार हम देखते है कि गोस्वामी जी की अप्रस्तुत योजना पर सूर का पर्याप्त प्रभाव है।

नन्ददास

काव्य कला की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नन्ददास का स्थान है। नन्ददास के काव्य कौशल पर सूर का पर्याप्त प्रभाव है। नन्ददास साहित्य में अप्रस्तुतों का प्राचुर्य नहीं है। वास्तव में नन्ददास का ध्यान जितना नाद-सौन्दर्य पर था उतना अप्रस्तुत संचयन पर नहीं, फिर भी जो अप्रस्तुत आये है उन पर सूर्य का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। सूर न नाभि के लिए "ह्रद" (३०७) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है, नन्ददास ने भी नाभि के लिए "कुण्डिका" अप्रस्तुत अपनाया है (रासपंचाध्यायी सं० केशनी प्रसाद चौरसिया—पृ० ५४)। मानव की विषयों के प्रति प्रीति के वर्णन के लिए सूर ने "लम्पट प्रेम" (३२५) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। नन्ददास जी ने "लम्पट प्रेम" को मानव के कृष्ण प्रेम का अप्रस्तुत बनाया है (रासपंचाध्यायी—पृ० ७०)। सूर ने "बिछुड़ी हुई हिरनी" (५१७) को बियुक्ता सीता का अप्रस्तुत बनाया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत द्वारा बियुक्ता गोपियों का वर्णन किया है (रासपंचाध्यायी—पृ० ७३)। माखन चोरी में पकड़े गए कृष्ण के झुके हुए मुख के लिए सूर ने "वायु के कारण झुका हुआ कमल" (९६८) अप्रस्तुत लाया है। नन्ददास ने इसी अप्रस्तुत द्वारा कृष्ण से अलग हुई गोपियों के मुख का वर्णन किया है। (रासपंचाध्यायी—पृ० ७३)। गोपी-कृष्ण के एकत्र भाव के लिए सूर ने "कीट भृंग न्याय" (१७३२) का प्रयाग किया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण कर लिया है (रासपंचाध्यायी पृ० ८६)। रासलीला में गोपियो के साथ बिहार करते हुए कृष्ण के लिए सूर ने "करनीयूथ के साथ मत्त गजराज" (१७५३) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत का प्रयोग इसी प्रसंग में गोपियों के साथ बिहार करते हुए कृष्ण के लिए किया है (रासपंचाध्यायी, पृ० १०८)। सूर ने गोपियो के लिए "मधुमक्खी" (१८४१) अप्रस्तुत लाया है। नन्ददास ने भी लिखा है कि "गोपियो ने कृष्ण को मधुमक्खी की तरह घेर लिया" (रासपंचाध्यायी, पृ० ९६)। कृष्ण के गले की मोती माला के लिए सूर ने "गंगा" (२३७३) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। नन्ददास ने भी सुरति के बाद टूटी हुई कृष्ण के गले की मोती माला के लिए "दो धारा में आती हुई गंगा" अप्रस्तुत लाया है (रासपंचाध्यायी पृ० १०७)। सूरने "मरकतमणि" (२४५०) अप्रस्तुत कृष्ण के साँवले शरीर के लिए जुटाया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत को कृष्ण-शरीर के लिए ग्रहण कर लिया है (रास पंचाध्यायी पृ० १०८)। सूरदास ने "लट्टू" (२५३१) अप्रस्तुत का प्रयोग कृष्णानुरक्ता गोपियों के लिए किया है। नन्ददास ने नाचती हुई गोपियों को लट्टू कहा है (रासपंचाध्यायी पृ० १०२)। सूर ने कृष्ण में समा गए गोपी नेत्रों के वर्णन के लिए "समुद्र में सरिता मिलन" (२८३४) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। नन्ददास ने भी गोपी कृष्ण मिलन को 'नदी का समुद्र मिलन' कहा है (रास-पंचाध्यायी पृ० ७९)। बनाने वाले कृष्ण के लिए सूर ने "नट का मुर

३९२६) अप्रस्तुत लाया है। नन्ददास ने भी रासलीला में कभी प्रकट और कभी दुरते हुए कृष्ण के लिए 'नट की कला' अप्रस्तुत का प्रयोग किया है (रास पंचाध्यायी—पृ० ९४)। गोपी-नेत्र कृष्ण को पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं—इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने 'भूख में भोजन' (९४८) अप्रस्तुत लाया है। नन्ददास ने इस अप्रस्तुत का प्रयोग कृष्ण को पाकर सन्तुष्ट गोपी के लिए किया है (रास पंचाध्यायी—पृ० ९५)। घूँघट के भीतर अकुलाते हुए नेत्रों के वर्णन के लिए सूर ने 'जलहीन मीन' (२९७८) अप्रस्तुत लाया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत का प्रयोग वियोगी नेत्रों के लिए किया है (नन्ददास ग्रंथावली—पद ११६)। सूर ने 'वर्षा की नदी' (३२०९) अप्रस्तुत यौवन के लिए प्रयुक्त किया है, किन्तु नन्ददास ने 'सावन की सरिता' अप्रस्तुत कृष्ण की ओर भागती हुई गोपियों के लिए ग्रहण किया है (रास पंचाध्यायी—पृ० ९९)। सूर ने 'भ्रमर' (३२९२) अप्रस्तुत मुनिजनों के लिए लाया है। नन्ददास ने भी 'मधुकर' अप्रस्तुत मुनिजन के लिए प्रयुक्त किया है (रास पंचाध्यायी, पृ० ५५)। कृष्ण को पाकर गोपियों के हर्ष की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने 'निर्धनी का धन पाना' (३५१०) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण किया है (रास पंचाध्यायी—पृ० ८२)। कृष्ण के सामने कंस की आकुलता के लिए सूर ने 'पिंजड़े में बन्द नया पक्षी' (३६७८) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। नन्ददास ने घर छोड़कर कृष्ण की ओर भागती हुई गोपियों के लिए 'पिंजड़े से छूटकर भागता हुआ पक्षी' अप्रस्तुत ग्रहण किया है (रास पंचाध्यायी—पृ० ९८)। इसी प्रकार सूर ने 'आँख की पुतरी' (४२००) को कृष्ण का अप्रस्तुत बनाया है। नन्ददास ने भ्रमर के लिए 'गोलक' अप्रस्तुत लाया है (रास पंचाध्यायी—पृ० १०५)। सूर ने विरह के लिए 'पटपुट' अप्रस्तुत ग्रहण किया है (ज्यों बिनु पुटपट गहत न रंग को, रंग न रसै परै—४६०४)। नन्ददास ने भी इस अप्रस्तुत को विरह के लिए अपनाया है (ज्यों पट पुट के दिये निपट ही परत सरस रंग—रास पंचाध्यायी—पृ० ८२)। सूर और नन्ददास में इसी प्रकार का कुछ और अप्रस्तुत साम्य ढूंढ़ा जा सकता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि नन्ददास के ऊपर सूर की अप्रस्तुत योजनाओं का पर्याप्त प्रभाव है।

बिहारी

रीतिकालीन कवियों में बिहारी का प्रमुख स्थान है। बिहारी के एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' में सात सौ पच्चीस चुने हुए दोहे हैं। अधिकांश दोहों का विषय कृष्ण कथा है। बिहारी के दोहे छोटे होते हुए भी कला की दृष्टि से बड़े मार्मिक हैं। अप्रस्तुत-योजना के क्षेत्र में बिहारी का विशेष महत्व है। बिहारी की काव्य प्रतिभा चतुर्दिक विचरण करके अनेक नवीन और मौलिक अप्रस्तुतों का संचयन करती है। इतने छोटे ग्रंथ में जितने मौलिक अप्रस्तुत आ गये हैं, वह उल्लेखनीय

है। इतना होते हुए भी बिहारी के कुछ अप्रस्तुतों पर सूर का स्पष्ट प्रभाव है। सूर ने भक्तों के द्वार पर अष्ट महासिद्धियों के लिये 'ढ़ाढ़ी' (४०) अप्रस्तुत लाया है, अर्थात् हरि के जनों के द्वार पर अष्ट सिद्धियाँ ढ़ाढ़ी की तरह खड़ी यशोगान करती रहती हैं। ढ़ाढ़ी एक जाति है जो बधाई-गान का व्यवसाय करती है। बिहारी ने भी विरहिणी को 'ढ़ाढ़ी' कहा है अर्थात् विरहिणी यहाँ-वहाँ ढ़ाढ़ी की तरह दौड़ती फिरती है (बिहारी बोधिनी-लाला भगवानदीन दोहा—२०३)। सूर ने भगवान् की कड़ी दृष्टि के लिये 'किलकिला पक्षी' (१०७) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। बिहारी ने भी नायिका की दृष्टि के लिये 'कुही पक्षी' अप्रस्तुत अपनाया है (बिहारी-बोधिनी दोहा—७५)। जहाँ तक मैं समझता हूँ किलकिला और कुही दोनों एक ही पक्षी हैं। सूरदास ने राधा-रूप के लिये 'चपला' (१३३६) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। बिहारी ने भी नायिका के शरीर को 'बिज्जुछटा' कहा है (बिहारी-बोधिनी दोहा ५६६)। सूरदास ने सजी-धजी गोपियों के लिये 'इन्द्रवधू' (१४४७) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। बिहारी ने भी चटकीली स्त्रियों के लिए 'वीरबहूटी' का प्रयोग किया है (बिहारी बोधिनी—५७१)। सूरदास ने कृष्ण-रूप चित्रण में भी भौंहों के लिये 'धनुष', नेत्रों के लिए 'प्रत्यंचा' और तिलक के लिए 'बाण' अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है (भौंह धनुष दृग पनच सखी री, भाल तिलक जनु बान—१८८२)। बिहारी ने भी भौंहों को धनुष, खौरि को प्रत्यंचा और तिलक को बाण कहा है (बिहारी बोधिनी—४६)। इसी प्रकार सूर ने 'सीढ़ी' (१८२२) अप्रस्तुत त्रिवली के लिए प्रयुक्त किया है। बिहारी ने भी इस अप्रस्तुत को त्रिवली के लिए ही ग्रहण किया है (बिहारी-बोधिनी—३६२)। सूरदास ने घूँघट के लिए 'जल' (२७३१) अप्रस्तुत लाया है। बिहारी ने भी घूँघट के लिए 'गंगा का निर्मल जल' अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है (बिहारी-बोधिनी—८२)। सूर ने लाल रंग या लाल रत्न के लिए 'मंगल' और पीले रंग या पीले रत्न के लिए 'गुरु' अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है (२७३६)। बिहारी ने भी बिन्दु और टीका के लिए मंगल और गुरु अप्रस्तुतों को अपनाया है (बिहारी-बोधिनी—१२४)। सूरदास ने कृष्ण अनुरक्त गोपी नेत्रों के लिए 'नट का बटा' (३००७) अप्रस्तुत लाया है। यह सूर का मौलिक अप्रस्तुत है। बिहारी ने भी नायक में अनुरक्त नायिका को 'नट का बटा' कहा है (बिहारी-बोधिनी—१६५)। सूर ने यौवन के लिए 'वर्षा की नदी' (३२०६) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। बिहारी ने भी यौवन को 'चढ़ती नदी' कहा है (बिहारी-बोधिनी—२८)। सूर ने मान के लिए 'गढ़' (३३२०) अप्रतुस्त का प्रयोग किया है। बिहारी ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण कर लिया है (बिहारी-बोधिनी—४४७)। सूरदास ने आँसू ढ़ारते हुए नेत्रों के लिए मौलिक अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है 'रहँट का घट' (३४२२)। बिहारी ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में सूर से ग्रहण कर लिया है (बिहारी-बोधिनी—१४२)। कृष्ण के मुखचन्द्र पर लटकती हुई अलकों के लिए सूर ने अप्रस्तुत लाया है 'राहु (३५२६)। बिहारी

ने भी खुली हुई लटों के लिए 'राहु' अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है (बिहारी-बोधिनी—४२)। सूरदास ने कृष्ण के वश में गोपियों के वर्णन के लिए 'डोरी के वश में पतंग' (३६७६) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। बिहारी ने भी नायक को 'पतंग' और नायिका के मन को 'डोरी' कहा है (बिहारी-बोधिनी—५०६)। गोपियाँ अपने नेत्रों को अंजन के साथ बाँधकर रखती हैं, जिससे नेत्र उड़ न जाँय। इस भाव की अभिव्यक्ति के लिये सूर ने 'खरी के साथ कपूर' (४१६१) अप्रस्तुत जुटाया है। कपूर को लौंग, मिर्च, गुंजा, खड़िया आदि के साथ बाँधकर रखा जाता है, जिससे वह उड़ने न पाये। बिहारी की नायिका भी अपने प्राण रूपी कपूर को नायक द्वारा दी गई गुंजामाला के साथ बाँधकर रखती है, नहीं तो वे अभी तक उड़ गये होते (बिहारी-बोधिनी—२६०)। दोनों कवियों के अप्रस्तुत एक ही हैं, भावाभिव्यक्ति में सफल भी है, किन्तु अप्रस्तुत का मूलरूप सूर का है। बिहारी ने इसे सूर से ग्रहण कर लिया है। कड़ुए योग के लिए सूर ने 'कटुक निबौरी' (४२८२) अप्रस्तुत लाया है। बिहारी ने भी नायिका के सामने अन्य स्त्रियों को 'निबौरी' कहा है (बिहारी-बोधिनी—४४०)। गोपियों के नेत्र निरन्तर अश्रुवर्षा कर रहे हैं, फिर भी कृष्ण आकर आँचल नहीं संम्भालते—इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए सूर ने अप्रस्तुत योजना प्रयुक्त की है 'कुपित इन्द्र जल बरसा रहा है, फिर भी कृष्ण गोवर्धन नहीं धारण करते' (४४०८)। बिहारी की नायिका के नेत्र भी अश्रुवृष्टि करके प्रलय मचा देना चाहते हैं, फिर भी कृष्ण कुचों का स्पर्श नहीं करते। कवि अप्रस्तुत योजना करता है 'इन्द्र जलवृष्टि द्वारा प्रलय कर रहा है, फिर भी कृष्ण गोवर्धन धारण नहीं करते' (बिहारी-बोधिनी—१४)। स्पष्ट है कि इस अप्रस्तुत योजना का मूल ढाँचा सूर का है, जिसे बिहारी ने भी अपना लिया है। सूर ने कृष्ण-रूप को 'ठग', गोपियों को 'पथिक', कृष्णप्रेम को 'फन्दा' कहा है (४४५०)। ठगी की इस पूरी प्रक्रिया को सूरसागर में अनेक बार अप्रस्तुत बनाया गया है। बिहारी ने भी नायिका के रूप को ठग, नायक के नेत्र को पथिक और हँसी को फन्दा कहा है। इस प्रकार बिहारी ने सूर की मौलिक अप्रस्तुत योजना को ग्रहण कर लिया है (बिहारी-बोधिनी—६६)। सूर के उर के लिए 'आलबाल (थाल्हा)' (४५३५) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। बिहारी ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में सूर से ग्रहण कर लिया है (बिहारी-बोधिनी—२१५)। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि बिहारी की अप्रस्तुत योजना पर सूर का पर्याप्त प्रभाव है।

देव

देव बिहारी के समकालीन थे। कला की दृष्टि से बिहारी और देव में कौन श्रेष्ठ है —यह विवाद का प्रश्न है? इस प्रश्न को लेकर काफी विवाद हो चुका है। इतना तो निश्चित है कि कल्पना की ऊँची उड़ान में देव, बिहारी से कहीं बढ़-चढ़कर हैं। देव की अप्रस्तुत योजनाएँ बड़ी रमणीक और महत्वपूर्ण हैं। उनके अनेक अप्रस्तुतों पर सूर का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। सूर ने कृष्ण को शोभासिन्धु ६४७ कहा है। देव ने भी कृष्ण के लिए अपार अप्रस्तुत

लाया है (देव रत्नावली—पृ० ४८)। सूर का शोभासिन्धु ब्रज-वीथियों में बहता फिर रहा है, देव का अपार पारावार भी ब्रज की गलियों में फैला है। कृष्ण के वियोग में गोपी-शरीर के गलने के लिए सूर ने 'ओला' अप्रस्तुत का प्रयोग किया है (गरत गात जैसे ओरें—३९२१)। देव ने भी इस अप्रस्तुत को मुख के गलने के लिए प्रयुक्त किया है ('गोरो गोरो मुख आजु औरों सौं बिलानो जात'—देव और उनकी कविता—नगेन्द्र—पृ० १८३)। इसी प्रकार सूर ने भौंहों के लिए 'संसार को जीतकर उतार कर रखा हुआ कामधनुष' (२७३२) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। देव ने भी इस अप्रस्तुत को इसी रूप में भौंहों के लिए ग्रहण कर लिया है (नारि हिये त्रिपुरारि बँधि सुनि हारि के मैन उतारि धर्यो धनु'—देव और उनकी कविता—नगेन्द्र (पृ० १९१)। स्पष्ट है कि भौंहों के लिए 'कामधनुष' अप्रस्तुत के लिए देव सूर के ऋणी हैं। ऊधौ गोपियों को बारम्बार योग का उपदेश देते हैं, जिस पर खीझ कर गोपियाँ कहती हैं कि हम तो सदा से योग कर रही है। गोपियों के इस कथन का वर्णन सूरदास ने योग के सांगरूपक द्वारा इस प्रकार किया है—'ऊधौ! हम तो योग ही कर रही है। सिर के केश ही सेल्ही हैं, ताटंक ही मुद्रा है, विरह विरह भस्म है, चीर ही कथरी है, मुरली की टेर सिंगी है, नेत्र खप्पर हैं जिसमे दर्शन की भिक्षा माँग रही हैं (४३१२)। यहाँ सेल्ही, मुद्रा, भस्म, कथरी, खप्पर, भिक्षा आदि यौगिक सामग्रियों को अप्रस्तुत बनाया गया है। देव की विरहिणी आँखें ही योगिनी बनकर योग-साधना कर रही हैं—'बरौनी बाघम्बर है, पलकें गुदड़ी हैं, पुतलियाँ लाल वस्त्र हैं, आँसू जल है—जिसमें डूबी रहती हैं। विरह अग्नि हैं, आँसू स्फटिक माला है, नेत्र की लाल डोरी सेल्ही है—इस प्रकार वियोगिनी की आँखें ही योग कर रही हैं (देव रत्नावली, पृ० ४७)। देव के इस पद मे बाघम्बर, गुदड़ी, लाल वस्त्र, अग्नि, माला, सेल्ही आदि योग की सामग्रियों को अप्रस्तुत बनाया गया है। योग सम्बन्धी इन समस्त अप्रस्तुतों को देव ने सूर से ही ग्रहण किया है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि देव की भी अप्रस्तुत योजना पर सूर का प्रभाव है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द

आधुनिक युग के ब्रज भाषा के कृष्ण भक्त कवियों में भारतेन्दु जी का पहला नाम आता है। आपकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी। काव्य के क्षेत्र में आपकी सरलता और सरसता उल्लेखनीय है। अप्रस्तुत योजनाओं में भी आपका यह गुण-द्रष्टव्य है। अत्यन्त सरल और सीधे अप्रस्तुतों द्वारा आपने भावों की मार्मिक और सरस अभिव्यक्ति कर दी है। भारतेन्दु जी की अप्रस्तुत योजना पर भी सूर का बहुत अधिक प्रभाव दिखाई देता है। सूर ने कृष्ण के साँवले शरीर पर पीताम्बर की शोभा के वर्णन के लिए 'बादल में विज्जुलता' (७२५) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। भारतेन्दु जी ने भी कृष्ण के पीताम्बर के लिए 'घन में बिजली' अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है ('जनु घन में दामिनि लपटानी' भारतेन्दु ग्रन्थावली—राग संग्रह,

पद १७) सूर ने कृष्ण के माथे पर शोभित मसि बिन्दी के लिए 'सोया हुआ अलि-शावक' (७५५, ७५७) अप्रस्तुत लाया है। भारतेन्दु जी ने भी डिठौना के लिए 'कमल पर बैठा भ्रमर' अप्रस्तुत का प्रयोग किया है (मानहुँ स्याम कमल पै इक अलि बैठो है रंग भीनो री'—भारतेन्दु ग्रंथावली-राग संग्रह—पद १५)। सूर ने गोपी नेत्रों को 'बिगड़ा हुआ' (२९७३) कहा है। भारतेन्दु जी ने भी आँखों को 'बिगरैल' कहा है (भारतेन्दु ग्रंथावली—भाग २, प्रेम फुलवारी पद २३)। सूरदास ने सज-धज कर आती हुई राधा का वर्णन गंगा के सांगरूपक द्वारा इस प्रकार किया है—'अनुपम अंगों वाली रमणीक राधिका चली आ रही है, मानों गिरिवर से गंगा चली आ रही हों। राधा का गोरा शरीर गंगा का निर्मल जल है, कटि ही तट है और त्रिवली गंगा की तरंग है। रोमराजि मानों जमुना मिल रही है और राधा का भ्रूभंग ही मानो भंवर है। दोनों भुजाओं के पुलिन पर चारु कुच रूपी चक्रवाक बैठे हैं। मुख, नेत्र, चरण, कर गंगा में खिले हुए कमल हैं और राधा की गुरु गति ही मानो हंस है। आभूषण ही गंगा का तीर है और मुक्तामय माँग ही गंगा की मध्य धारा है। ऐसी राधा-सुरसरी, कृष्ण-सागर से मिलने चली जा रही है (३०७२)। यहाँ राधा के विभिन्न अंगों के लिए जल, तट, तरंग, जमुना, भंवर, पुलिन, चक्रवाक, कमल, हंस, तीर मध्य धारा आदि अप्रस्तुत आये हैं। भारतेन्दु जी ने भी राधा का सौन्दर्य-वर्णन नदी के साँगरूपक द्वारा इस प्रकार किया है—'प्यारी का रूप नदी की छवि दे रहा है। यह नदी सुषमा का जल भरकर प्रिय के हेतु बढ़ गई है। नेत्र ही नदी के मीन हैं, कर-पद ही नदी में खिले कमल हैं, केश सिवार हैं, कुच, तट पर बैठे चक्रवाक हैं और गले का हार ही नदी की लहर है' (भारतेन्दु ग्रंथावली-प्रेमाश्रु-वर्णन, पद १८)। भारतेन्दु के इस नदी रूपक पर सूर के गंगा रूपक का स्पष्ट प्रभाव है। ऊधौ के योग-उपदेश से खीझकर सूर की गोपियाँ कहती हैं—हे ऊधौ! हम सब तो कृष्ण की प्रेम-साधना कर रही हैं और आप योग-साधना का उपदेश दे रहे हैं, आप ही बताइये 'एक म्यान में दो खाँड़े कैसे समायेंगे' (४२२२)? भारतेन्दु जी ने भी सूर के इस दृष्टान्त को अपनाया है 'रहैं क्यों एक म्यान असि दोय' (भारतेन्दु-ग्रंथावली—भाग २, प्रेम फुलवारी पद २०)। इसी प्रकार भ्रमर गीत प्रसंग में ही सूर की गोपियाँ कहती हैं—इनसे कौन कहे, कौन बहकावे, ऐसी अनाड़ी कौन है? 'अपना दूध छोड़कर कोई खारे कूप का जल पीता है' (४५८३)। भारतेन्दु ने भी इस दृष्टान्त को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है (भारतेन्दु ग्रंथावली—भाग २—प्रेम फुलवारी—पद २०)। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु जी की अप्रस्तुत योजना पर भी सूर का बहुत अधिक प्रभाव है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

रत्नाकर जी ब्रज भाषा के अन्तिम कवि हैं और इनकी कृति 'उद्धव शतक' ब्रज भाषा काव्य शृङ्खला की अन्तिम कड़ी है। कहा जाता है कि रत्नाकर ने कई सौ पद लिखा था, जिसमें से एक सौ सत्रह रमणीय पदों को छाँटकर उद्धव शतक में

संग्रहीत कर दिया है। इसीलिए इस ग्रन्थ का प्रत्येक पद कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अप्रस्तुत योजना के क्षेत्र में रत्नाकर की मौलिकता सराहनीय है। मानव जीवन के आस-पास से अनेक नवीन अप्रस्तुतों को लाकर आपने भावाभिव्यक्ति की है। स्नेह रूपक (उद्धव शतक-मंगलाचरण), कांटा रूपक (पद ६) जहाज रूपक (पद ११), वर्षा रूपक (पद १२), हाथी फंसाने का रूपक (पद १४), रस रसायन रूपक (पद ३४, १०१, १०४) आदि सांगरूपक आपके मौलिक अप्रस्तुतों की एक झांकी प्रस्तुत करते हैं। इतना होते हुए भी रत्नाकर की अप्रस्तुत योजना पर जाने-अनजाने में सूर का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। सूर ने अज्ञान या जड़ता को 'अधकार' (४७) कहा है। रत्नाकर जी ने भी जड़ता के लिए इस अप्रस्तुत को ग्रहण किया है (उद्धव शतक-मंगलाचरण)। भुक्ति के लिए सूर ने 'मोती' (३२८) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। रत्नाकर जी ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण किया है (उद्धव शतक पद ४२)। सूर ने संसार को 'स्वप्न' (३८७) कहा है। रत्नाकर ने भी इस अप्रस्तुत को संसार के लिए अपनाया है (उद्धव शतक पद १६)। सूर ने 'कर्णधार' (५३३) अप्रस्तुत को सीता सत्य के लिए लाया है। रत्नाकर जी ने इस अप्रस्तुत को विचार के लिए अपनाया है (उद्धव शतक पद ११)। 'कदली वन में मस्त हाथी' (५४०) अप्रस्तुत को सूर ने अशोक वाटिका में हनुमान के लिए प्रयुक्त किया है। रत्नाकर जी ने भी इस अप्रस्तुत को अपनाया तो है किन्तु गोपियों के बीच विहरते कृष्ण के लिए (उद्धव शतक पद २)। दोनों कवियो के प्रस्तुत प्रसंगों को देखते हुए स्पष्ट है कि सूर की अप्रस्तुत योजना अधिक सटीक है। इसी प्रकार 'कमल के भीतर भ्रमर गुंजार' (७२५) अप्रस्तुत को सूर ने बालक कृष्ण की अस्फुट वाणी के लिए लाया है। रत्नाकर जी ने भी 'भ्रमर गुंजार' को गुनगुनाहट के लिए प्रयुक्त किया है (उद्धव शतक, पद ७५)। सूर ने कृष्ण के लिए 'घन' (७५२) अप्रस्तुत लाया है। रत्नाकर जी ने भी इस अप्रस्तुत को कृष्ण के लिए अपनाया है (उद्धव शतक पद २३)। सूर ने कृष्ण के लिए 'गज' (१७६८) और राधा के लिए 'करिनी' (२५१०) अप्रस्तुत जुटाया है। रत्नाकर ने भी हाथी और हाथिनी अप्रस्तुत कृष्ण और राधा के लिए ग्रहण किया है (उद्धव शतक पद १४)। सूर ने कृष्ण के लिए 'सागर' और मानसा के लिए 'बूंद' अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है (२२७४) रत्नाकर ने इन अप्रस्तुतों को कृष्ण तथा गोपियों के लिए अपनाया है (उद्धव शतक पद ३७)। सूर ने 'लंगर' (२४१५) अप्रस्तुत अलकों के लिए लाया है। रत्नाकर जी ने इस अप्रस्तुत को धैर्य के लिए अपनाया है (उद्धव शतक पद ११)। सूरदास ने कठोर वाणी के लिए 'पाहन' (३४४४) अप्रस्तुत का प्रयोग किया है। रत्नाकर जी ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण कर लिया है (उद्धव शतक पद ४०)। सूर ने वियोग के लिए 'ज्वर' तथा बालू के लिए 'सुदर्शन सूर्य' अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है ३८०६। रत्नाकर जी ने भी विरह के लिए

'ज्वर' तथा दर्शन के लिए 'सुदर्शन चूर्ण' अप्रस्तुत अपनाया है (उद्धव शतक पद ३४)। सूरदास ने 'लता' (३९२९) अप्रस्तुत गोपियों के लिए प्रयुक्त किया है। रत्नाकर ने भी इस अप्रस्तुत को इसी अर्थ में ग्रहण किया है (उद्धव शतक पद १२)। कृष्ण के वियोग में पूरे ब्रज की दशा सोचनीय हो गई है ऐसे ब्रज की दशा के वर्णन के लिए सूरदास ने 'षड्ऋतु' (३९६३) अप्रस्तुत अपनाया है, अर्थात् षड्ऋतु का आरोप ब्रज दशा पर किया है तथा इन ऋतुओं को एक साथ ब्रज में प्रस्तुत करके चमत्कृत कर दिया है। रत्नाकर जी ने भी षड्ऋतुओं को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण करके ब्रज की दशा का वर्णन किया है (उद्धव शतक पद ८७-९२)। इसी प्रकार सूर ने यौगिक क्रियाओं और सामग्रियों को अप्रस्तुत बनाया है (४३११, ४३१२)। रत्नाकर जी ने भी 'त्रिकुटी' (उद्धव शतक पद २९), 'प्रत्याहार' (उद्धव शतक पद २७) आदि को अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण किया है। सूरदास ने स्नेह के लिए 'नग' और पुरानी प्रीति के लिए 'कथरी' अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है ('खोयौ गयौ नेह नग उनपे प्रीति काथरी भई पुरानी'—४३३२)। सूर के समय में नगों को कथरी के भीतर सीकर रक्खा जाता था, क्योंकि चोरी का भय आये दिन बना रहता था। सूर की इस अप्रस्तुत योजना को रत्नाकर जी ने भी इसी रूप में ग्रहण कर लिया है ('प्रेमरस रुचिर विराग तूमड़ी में पूरि, ज्ञान गूदड़ी में अनुराग सौं रतन ले उद्धव शतक पद १०५)। कृष्ण के वियोग में जलते हुये ब्रज के लिए सूरदास ने 'अवा' (४३९९) अप्रस्तुत लाया है। रत्नाकर ने भी इस अप्रस्तुत को विरह की स्मृति के लिए ग्रहण कर लिया है (उद्धव शतक पद ७)। सूरदास ने आंचल के लिए 'गोवर्द्धन' (४४०८) अप्रस्तुत प्रयुक्त किया है। रत्नाकर जी ने भी इस अप्रस्तुत को ज्यों का त्यों अपना लिया है (उद्धव शतक पद ७२), किन्तु यहाँ रत्नाकर के वर्णन में अप्रस्तुत-शैली सूर की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ और प्रभावोत्पादक है।

इन अप्रस्तुत सामग्रियों के अतिरिक्त सूर की कुछ अप्रस्तुत शैलियों का भी स्पष्ट प्रभाव रत्नाकर की वर्णन-प्रणाली पर पड़ा है। सूर की विरहिणी गोपियों के सन्देशों से मधुवन के कूप भर गये। 'कागज बादलों के कारण गल गए, स्याही समाप्त हो गई और दावाग्नि लाने से सरकण्डे जल गए' ('कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे'—३९१८)। इस वर्णन शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव रत्नाकर पर पड़ा है। रत्नाकर लिखते है—'सूखि जात स्याही, लेखनी कौ नेकु डंक लागे, अक लागै कागद बर्रि बरि जात है' (उद्धव-शतक-पद ९१)। इसी प्रकार सूर की गोपियाँ ऊधौ से पूँछती हैं कि कृष्ण कुबड़ी कुब्जा के साथ कैसे भोग करते हैं ? 'भोग के समय पलंग को काट देते हैं अथवा गड्ढा खोद देते हैं' (काटत हैं परजंक ताहि छिन, कैधौं खोदत खाड़े—४२६०)। इसी प्रसंग में ठीक इसी प्रकार रत्नाकर की गोपियाँ कहती हैं 'काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है' (उद्धव शतक-पद ७६)।

इस प्रकार हम देखते है कि की अप्रस्तुत-योजना पर सूरदास का

यथेष्ट प्रभाव है। इस तुलनात्मक अध्ययन क्रम को और आगे बढ़ाकर वर्तमान युग तक लाया जा सकता है और अनेक कवियों की अप्रस्तुत योजना पर सूर का प्रभाव कम-बेश मात्रा में ढूँढ़ा जा सकता है। रत्नाकर के बाद काव्य क्षेत्र में ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली का एकाधिकार हो गया। भाषा परिवर्तन के साथ अप्रस्तुत योजना के रूप में भी कुछ परिवर्तन आया। कहा जाता है कि ब्रजभाषा की सुरसरी रत्नाकर में आकर विलीन हो गई अतः अप्रस्तुत योजना की इस धारा को भी रत्नाकर में ही समाप्त किया जाता है।

टिप्पणी

(क) सूरसागर के अप्रस्तुत

१. अंगीठी-४२६०
२. अंकुर-६०,१७७६,३५६४
३. अंगूर-६१
४ अंजन-३३१८,४३८६
५. अंधकार-६०,३०६३,४७२२
६. अंबा-८४,४४१२
७. अक्रूर-४२०२
८. अकृतज्ञ-२८७६
६. अग्नि-५०,३३२०,४७३६
१०. अग्नि में जलना-४०४५
११. अघासुर-४२३८
१२. अर्घ्य-२४६,४७६२
१३. अच्छुत-१८२०
१४. अजा-२०१;४५२०
१५. अतिचार-३६६०
१६. अतिथि-३४४०
१७. अधर्मी-६४
१८. अधिकारी-१८५,२८८१
१९. अना-३६२,४२२७
२०. अनार-१२४४,३०५४,४७१२
२१. अविश्वासी-२८६३
२२. अबीर-३६७७
२३. असल-१४३
२३. असीन-६४
२५. अमृत-७२,१२६६,४२२६
२६. अर्जुन-३८३०
२७. अरसी का फूल-१७७७,४१२३
२८. अरि-३६३१,३६४४
२९. अस्त्र-२६०५,३६३१
३०. अहदी-६५
३१. आंख-४४४३
३२. आकाश-१२५२,१८१२,२४२५
३३. आकाशगंगा-३४१४
३४. आखेट-४०६
३५. आम-७२३,४२४७
३६. आरती-३७१,४७६८
३७. आलबाल-२७६१,३३६०
३८. आशा-८२३
३९. आसन-२४६८,४६११
४०. इजै-बिजै-२६१७
४१. इन्द्र-३६,४७३२
४२. इन्द्रधनुष-७२६,१८०७,२७६५
४३. इन्द्राणी-१३२४
४४. ईंधन-४८३५
४५. ईख-५१,४४५०,४६५३
गाढ़ा-४२२२
आग-४२७०
४६. उच्चस्थली-३२३१,४७३२
४७. उच्चैश्रवा-४७८४
४८. उर्वशी-१३२४,३७२१
४९. उल्लू-१००,२०१
५०. ऊँट-३५७
५१. ऊसर-४६६
५२. ऋचायें-१७६३
५३. ऋणी-४०४६
५४ ऐरावत ३ ६५ ४८१२

११२. कुड-२४५६
११३. कुत्ता-४१,१० ,३२८
११४. कुदाल-४६५६
११५. कुल्ह-१८१५,३०५३,३३८६
११६. कुपथ्य-४०१६
११७. कुमुदिनी-७३५,१२६०,३४४४
११८. कुम्हड़ा-४२२२,४५२०
११९. कुरुक्षेत्र-४०११,४७५६
१२०. कुलटा-१७३,१९२७
१२१. कुसुमरंग-३४४४,४५३७
१२२. कुहरा-५३ ,१०५५,१७५२
१२३. कूप-४८,३९४,३०६३
१२४. कूल-४७३१,४७८०
१२५. कृपण-१६४८,४५३८
१२६. कृष्ण-३९२६,४३७८
१२७. केंचुल-१६२,२८३४,४३३२
१२८. केतकी-१९२५,३८६२
१२९. केला-८५२,२३७३,३८५१
१३०. कैलाश-४८५५
१३१. कोठरी-३३८०
१३२. कोठी-१६४८
१३३. कोढ़ी-४१६८
१३४. कोड़ा-३९८८
१३५. कोतवाल-६४
१३६. कोयल-५०७,१२७७,२७९१
१३७. कोयला-४४६१
१३८. कौरव-१६५
१३९. खंजन-८४३,२५८५,३८५९
१४०. खम्भा-१२५०,१७९८
१४१. खटाई-४५७५
१४२. खर-२०३,४८०६
१४३. खरिहान-१४२
१४४. खरी-४०३६,४४८७
१४५. खवास-१४१
१४६. खानाबदोष-४००१
१४७. खिलौना-४५८४
१४८. खीरा-४५३८,४६५९
१४९. खेत-२२१,३११
मूड़ का खेत-४२:४
नील का खेत-३५८
१५०. खेती-३११,३९१४,४४५०
१५१. गंगा-३०७,२३७६,३४५९
१५२. गंधिनि-१६९३
१५३. गठरी-९९,४५४७
१५४. गणिका-४४,३४७१
१५५. गरुड़-३३९४,३६७७
१५६. गांठ-२२७८,३४४१
१५७. गांव-६४,१४२,१८५
१५८. गाय-५१,२९०,४५७५
१५९. गारुड़ी-१३६५,३९४५,४२१०
१६०. गांहक-३१०
१६१. गीता-४१२१,४६९७
१६२. गीध-३५७,६०३
१६३. गुब्जा-१९८,७५३,३२३१
१६४. गुजरिनि-२२१८,
१६५. गुड़-४४०६
गुड़ निर्माण प्रक्रिया-६३
१६६. गुप्तचर-३३९३
१६७. गुफा-१०४५,३८१५,४३५४
१६८. गुरिया-४३०८
१६९. गुलाम-२८५७,३०१५
१७०. गुलर-१११०,४२१८
१७१. गेंद-३६७७
१७२. गेरू-३७७०

३७७. पार्बती-१३२४
३७८. पाल-३१९३
३७९. पिंजड़ा-३७८९,४८३४
३८०. पिटारी-२०३
३८१. पितज्वर-४४०६
३८२. पीतल-३७६५
३८३. पुट-४६०४
३८४. पुतरी-४२००
३८५. पुतली-६५८,२४०६,४६६२
३८६. पूंजी-१८५,१६४८
३८७. पृथ्वी-७८२,३३६५
३८८. पैदल-२७३४,३९२२
३८९. पौरिया-४०,३८४५
३९०. प्रकाश-४८
३९१. प्रजा-४०,४६०९,४६५६
३९२. प्रतिहारी-१४४,३००६,४००५
३९३. प्राण-५०९,३८९८
३९४. प्रातः-२६१५
३९५. प्रेत-३५८
३९६. प्रेमिका-१९४२,१९८२
३९७. प्याज-३९९०
३९८. फंदा-७१,२७३३,४९१९
३९९. फन-५७५,२७३७
४००. फागुन-३८१४
४०१. फुलझड़ी-३८९३
४०२. फूल-१४१७,३३०३
४०३. फेन-८२१,१२५५
४०४. बन्दीजन-४०,१६९०,४३८६
४०५. बन्दूक-२७३४
४०६. बन्धूक-७२२,१८१५,२१५५
४०७. बकासुर-४२३८
४०८. बकी-४२३८
४०९. बगुला-३५७,१२८३,४९
४१०. बट्टा-१४२
४११ बटेर १००७,३००९
४१२. बछड़ा-६१३,४८९६
४१३. बज्र-५५१,३४५०,४८०६
४१४. बड़वानल-४८७४
४१५. बधू-९०,२९३४
४१६. बन-४०६,४५२१
४१७. बनजारा-१९६१,४२२२
४१८. बबूल-४५६९
४१९. बनमुर्गा-३५२
४२०. बरगद-२२७८,४०२२
४२१. बराह-७८२
४२२. बरुण-४०५
४२३. बर्तन-३०६,२९३०
४२४. बर्रे-४४४९
४२५. बरषा-३८५२,३८५४
४२६. बवन्डर-१६२,२९०४
४२७. बसन्त-२९४७
४२८. बस्त्र-१४१,३४६६,४८३५
४२९. बहिरी-४१६८
४३०. बही-१४२,१८५
४३१. बहेलिया-३२१,२८९८,४१००
४३२. बांस-१५९२
४३३. बाकी-१४३
४३४. बाग-२७२८,४२७०
४३५. बाज-९७,३६७२
४३६. बाजार-३१०
४३७. बाण-३०७,२०५६,२७४३
४३८. बाणिज्य-३१०,१६४८
४३९. बादल-३७३,१३५०,३८४०
४४०. बादल गर्जना-१८०७,४७८०
४४१. बायु-६०२,३८५२
४४२. बारहखड़ी-४७४४
४४३. बारूद-४८८५
४४४. बालक-२४८२,३८४३
४४५. बालसंघाती-२९१२,२९४५
४४६ बालि ४३५४

(ख) सूरसागर के मुहावरे

३७०. मोल बिकाना-२५१३
३७१. मोहिनी डालना-२८६८
३७२. मोहनी मेलना-१२७५
३७३. म्यों म्यों करना-१५१
३७४. यहै बात की ओर-४१६२
३७५. रंग काछना-२१९८
३७६. रंग में आना-१९२२
३७७. रंग में रंग जाना-१८४९
३७८. रंगी बुद्धि-४१२९
३७९. रसना तारु से लगाना-२९५०
३८०. राई लोन उतारना-७४७
३८१. राज होना-८९५
३८२. लात मारना-४९४७
३८३. लाली देकर पीली लाना-३१२४
३८४. लीक खींच कर कहना-२५१५
३८५. लीक चहूँ जुग खाँची-१८,२३६७
३८६. लीक करौ-२५५
३८७. लेखा पड़ना-४३५३
३८८. लेना न देना-२८६९
३८९. लूट पाना-३१४६
३९०. सपने की सम्पत्ति-४२,३६१५
३९१. सरै न एकौ काज-३२०९
३९२. साचे में काढ़ी हुई-९१८,४२०७
३९३. साँठ होना-४०३०
३९४. सात पीढ़ी का-१३४
३९५. सातो सुधि भूलना-४५५१,४६२७
३९६. सिधु का खग-३७७६
३९७. सिर ढोंकी लकरी-७१
३९८. सिर ढोरना-५९५,३४५७
३९९. सिर धुनना-२८५१,३५४३
४००. सिर पड़ना-२६६८
४०१. सिर पर टीका लगाना-३३५६
४०२. सिर पर लेना-४०६५
४०३. सिर बाधे फिरना-४३६४
४०४. सिर मारना-१४२५
४०५. सिर मूड़ना-४३०५
४०६. सीर निबेरना-७७९
४०७. सूम का संसार-२७५०
४०८. सूल रहना-३९१७
४०९. सैंत रखना-२५९२
४१०. सौ बात की एक बात-३४८,४२९
४११. स्वप्न का सुख-३०१
४१२. स्वप्न की पहचान-४२६५
४१३. स्वप्न होना- ९९८
४१४. स्वांग काछना-१३६
४१५. हम सौं मिलवत सातैं-४५७९
४१६. हाथ आना-३३५
४१७. हाथ देना-१८९४
४१८. हाथ बिकना-२५०१,२८४०
४१९. हाथ मलना-६२५,२४९४
४२०. हाथ मारना-४०३५
४२१. हाथ में कर पाना-२५१३
४२२. हाथ रहना-२८४८
४२३. हाथों में खाज पैदा होना-२५५
४२४. हृदय टूटना-१५६०

(ग) सूर सागर की लोकोक्तियाँ

१. अन्ध अन्ध टेकि चलैं, क्यों न परै गाड़े-१२४
२. अन्तहु सूर सोइपै, प्रगटै, होइ प्रकृति जो जामैं-३८५०
३. अपने किये फलहि पावैंगे-२८७७
४. अपने स्वारथ के सब कोई-२८५२, ४५९३
५. अपनौ कीन्हौं पैहौं-४२२७
६. अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै खारे कूप को बारी-४५८३
७. अपनौ बोय आप लुनौ तुम, आपै ही निरवारौ-४५२२
८. अपनौ भाग् नहीं काहू सो आपु आपनैं पास-१९५४
९. अब क्यों मिटति हांथ की रेखैं-४-४६
१०. अम्ब सुफल छाँड़ि कहा सैंमर को धाऊं-१६६
११. अमृत कहा अमृत गुन प्रगटै-२६८४
१२. अरावती को नीर बड़ेरी-२८५५
१३. अलि अनुराग उड़त मन बांध्यो, बैर सुनत नहि काने-४५९
१४. आगैं बृच्छु फरै जो विषफल, बृच्छ बिना किन सरई-६२२
१५. आपन कीयो आपहीं भुगतहि-४१६१
१६. आपु देखि पर देखि रे मधुकर-४२३१
१७. आपु भलाई सबै भले री-१९०३
१८. इत की भई न उतकी सजनीं-२९३५
१९. उड़गन उदित तिमिर नहि नासत, बिन रवि रूप धरें-४३:
२०. उलटौ न्याउ सूर के प्रभु को बही जाति मांगत उतराई-४
२१. ऊधौ काल चाल औरासी- १७३
२२. एक आंधरी हिय की फूटी, दौरत पहिरि खराऊँ-४७४४
२३. एक समय मोतिनि कै धोरवैं हंस चुनत हैं ज्वारि-३२०९
२४. ऐसी जियन दसौ दिन जीजैं-३२१६
२५. ओछी पूँजी हरै जो तस्कर रंक मरै पछताई-४४११
२६. कंचन को मृग कौनैं देख्यो, किन बांध्यों गहि डोरी-४१७१
२७. कंचन खोई कांच लै आए बिढ़तौ कियौ फबायौ-३१२९
२८. कंचन मनि डारि, कांच गर बंधाऊं-१६६
२९. कठिन कुराज राज की नीति-३३९३
३०. कठिन परे जो कुशल रिपु पूछै- २०१
३१. कठिन है करन निदान-३६०२
३२. कत स्वान सिंह बलि खाई-४९१
३३. कबहुँ बालक मुंह न दीजिये, मुंह न दीजिय नारी २१ १

३४. करनी भली भलेई जानै, कुटिल कपट की बानि-४१४१
३५. कहत आगि चंदन सी सीरी सती जानि उमहैं-३८००
३६. कहबहिं सुगम सबै कोउ जानत कठिन होत निरबाहे-४४८०
३७. कहा कथत मासी के आगै जानत नानी नान न-४५६४
३८. कहा करम कौ चारौ-४१३७
३९. कहा करौं जो विधि न बसहिं-४१५२
४०. कहा करौं मन प्रेम पूरन घटनसिंधु समाई-४३५०
४१. कहा कांच के संग्रह कीन्हैं, डारि अमोल मनी-२०७६
४२. कहा कीजै सो नफा जेहिं होय जिय की हानि-२०७७
४३. कहा जानै दिनकर की महिमा, अंध नयन बिन देखे-३६८
४४. कहि धौं मधुप बारि तैं माखन कौनै भरो कमौरी-४१७
४५. कहि मारै सो सूर कहावै-४४७१
४६. कहुँ बछड़ा कहुँ धेनु चुराये-९२७
४७. कहु षट्पद कैसे खँयतु है हाथिन कै संग गाड़े-४२२२
४८. कहौं कौन पै कढ़त कनूका जिन हठि भुसी पछोरी-४१७१
४९. कहौं मधुप कैसे समाहिंगे एक म्यान दो खाँड़े-४२२२
५०. कांच के बदलैं को दैं है बैरागर-४१११
५१. काकी भूख गई बयारि भषि, बिना दूध घृत मांड़े-४२२२
५२. काकी भूँख गई मन लाडू, सो देखहु चित चेति-४४७६
५ . काग हंसहिं संग जैसो-४०३८, ४०३६
५४. काटहु अम्ब बबूर लगावहु, चन्दन की करि बारि-४५२७
५५. काटे नाक पिछौरे पोंछत-४५९०
५६. कामधेनु छांड़ि कहाँ अजा लै दुहाऊँ-१६६
५७. कायर बकै लोह तैं भागै लरै सो सूर बखानै-४५७८
५८. काहू के मन की कोउ जानत-४१७६
५९. काहू कौ षटरस नहिं भावत, कोउ भोजन कहं फिरत बिहाल-२४०४
६०. कित पट पर गोता मारत हौ आप भूड़ के खेल-४२१४
६१. कीजै कहा कृपन की सम्पत्ति, बिना भोग बिनु दान-३२१७
६२. कीजै कहा समय बिनु सुन्दरि, भोजन पीछे अचवन घी को-३३५६
६३. कीरी तनु ज्यौं पंख उपाई-१५४१
६४. कुंमकुंम कौ लेपि मेटि काजर मुख लाऊँ-१६६
६५. कुटिल कुटिल पहिचानै-१९२०
६६. कुटिल कुटिल मिलि चलैं एक ह्वै-१८९७
६७. कुटिल तुरत फल पावत-२९५३
६८. कूप खनि कतजाइ रे नर, जरत भवन बुझाइ-`१५, ३१६८

६९. कूप रतन घट कहि क्यो निकसै बिन गुन बहुतै वितकौ-४५
७०. कोऊ कोटि करै नहि छूटै, जो जेहिं घरनि धरीरी-३०१४
७१. कोउ खनि कूप मरै बालू थल, छांड़ि सूर सर पावै-४३१६
७२. कोटि बार पीतरि जौदाहौ, कोटि बार जो कहाँ कसै-३७६
७३. क्यौं करि रहै कंठ मैं मनियाँ बिना पिरोये धागै-४५९६
७४. क्यों जु ओस कन प्यास बुझाई-४५ ८
७५. क्यों मधुकर मधुकमल कोष तजि, रुचि मानत है आकै-२९९
७६. खाटी मही कहाँ रुचि मानै, सूर सवैया घी कौ-४४७६
७७. गगल कूप खनि खोरै-४२१८
७८. गयबर मेटि चढ़ावत रासभ, प्रभुता मेटि करत हिनती-२ ०
७९. घर तजि कै कोउ रहत पराये-२१०८
८०. चाहति हुतीं गुहारि जितहिं तै उत तैं धार बही-४५८८
८१. चिरिया कहा समुद्र उलीचे-२३४
८२. चोर चोरी करै आपने जंघ ब[illegible]-२६७१
८३. चोर जुवार संग वरु करियै, झूठे कौं नहि कोउ पतियाई-२३
८४. चोर सबनि चोरै करि जानै, ज्ञानी मन सब ज्ञानी-२३६६
८५. छांड़ि राजमार यह लीला कैसे चलहिं कुपैड़े-४२३३
८६. छिनु-छिनु घटत बढ़त नहि रजनी ज्यों-ज्यों कलाचन्द्र की छीज
८७. छोटी करनी जाहि की सोई करै उपादि-२२३६
८८. जल बूड़त अवलम्ब फेन को फिरि फिरिकहा कहत हौ-४२३६
८९. जलधि थकित जनु काग पोत को कूल न कबहूं आयोरी-७५५
९०. जस राजा तस प्रजा बसीति-३३९३
९१. जहीं व्याह तंह गीत-४४०१
९२. जांचक पै जांचक कह जाचे-३४
९३. जाकी जहाँ प्रतीति सूर सो सर्बस जहाँ सचेरी-३४३९
९४. जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोच न भली बुरी कौ-४१३२
९५. जाकी बानि परी सखि जैसी सो तिहि टेक रह्यौ-२९३२
९६. जाकी मनि सिर तैं हरि लीन्हीं कहा करै अहि मूक-३८३८
९७. जाकैं लागी होइ सु जानैं-४५६८
९८. जाकै हाथ पेड़ फल ताको-१६५१
९९. जाको नयन जल मैं तिहि अनल कैसैं भावैं-४३१८
१००. जाको मन मानत है जासों सो तहंई सुख मानै-१९२२
१०१. जाको राज रोग कफ व्यापत दह्यौ खवावत ताको-४३४३
१०२. जानै कहा बांझ ब्यावर दुख, जातक जनै न, पीर है कैसी-४५
१०३ जासौं उपजी प्रीति रीति मलि, तासौं बनै निबाहैं-४२४३

१०४. जाहि लगै सोई पै जानै, प्रेम बान अनियारी-३९४५
१०५. जाहि लगै सोई पै जानै, विरह पीर अति भारी-३८२४
१०६. जिनि अधरनि अमृत चाख्यौ, ते क्यौं कटु फल खात-४५४०
१०७. जिहिं दुहि धेनु औटि पय चाख्यौ, ते क्यौं निरसे छाकै-२९०४
१०८. जिहिं मधुकर अम्बुज रस चाख्यौ, क्यौं करील फल भावै-१६८
१०९. जिहिं मुख अमृत पियौ रसना भरि, तिहिं क्यौं विषहिं पियावैं-४२७३
११०. जीवन सुफल सूर ताही कौ, काज पराए आवत-३९५२
१११. झूठौ खैये मीठैं कारन-२९५९
११२. जे अनभले बड़ाई तिनकी, मानै जोई सोई-२८७३
११३. जे गुरुजन के वचन न मानत ते ऐसेहिं डहकात-४२३२
११४. जे भयभीत होंहि सक देखैं क्यौं डब छुवति अहि कारौ-४३६०
११५. जे षटरस-सुख भोग करत हैं, ते कैसैं खरि खात-२९७५
११६. जैसी काँछ वैसी नाच-३४२८
११७. जैसी बहै बयारि तैसी दीजै पीठि-३१८६
११८. जैसी संगति बुद्धि तैसीयै-१९८०
११९. जैसे घट पूरन न डालै, अधभरो डगडोर-२४६१
१२०. जैसैं अपने मेर मते मैं चोर मोर निखत निसि चोरी-३४८६
१२१. जैसैं उड़ि जहाज कौ पंछी फिरि जहाज पै आवै-१६८
१२२. जैसैं चोर चोर सौं रातै ठठा ठठा एकै जानि-१८९७
१२३. जैसैं चोर तजै नहिं चोरी बरजै दहै करीरी-२९७९
१२४. जैसैं छीप अमोल रतन भरि कह जानैं जो कूर-३७०२
१२५. जैसैं बहुत दिननि की बिछुरी एक बाप की बेटी-४९०६
१२६. जैसैं बास बसत है कोऊ तैसौ होत सयानौ-४६४५
१२७. जैसैं सूर ब्याल रस चाखैं मुख नहिं होत अमीकौ-४१३२
१२८. जैसोइ बोइयै, तैसोइ लुनियै-६१, २४०३
१२९. जोइ लीजै सोइ है अपनौ जैसैं चोर भगात-२८८२
१३०. जो कुछु लिख्यौ सोइ माथे पर-४११९
१३१. जो कोउ काज करै बिनु बूझै पेलनि लहत हरीरी-२९१८
१३२. जोगी जहाँ होइ अगवानी तुम्बा तहाँ बुआवै-४४५९
१३३. जो छोटी तेई हैं खोटी-२६६६
१३४. जो जाकौ जैसैं करि सो तैसैं हित मानै-३२०४
१३५. जो जिहिं भाव ताहिं हरि तैसैं-३५४०
१३६. जो जैसौ तासौं त्यौं चलियै-२९३८
१३७. जो तुम करौ भलाई कोटिक सो नहिं मानै कोई-२८७३
१३८. जोवन रूप दिवस दस ही कौ-३२१०

१३९. जो लिखे दरस सुख रेखें-४२०३
१४०. जौ कोउ परहित कूप खनावै परै सो कूपहिं माहीं-४३०५
१४१. ज्यों ऊजर खेरे की पुतली को पूजै को मानै-४६६२
१४२. ज्यौं गजराज काज के औरै, औरै दसन दिखावत-४२६५, ४
१४३. ज्यौं ज्यौं दिनी भई त्यौं निपजी-१००६
१४४. ज्यौं सावन की बेलि फैलि कै फूलति है दिन चारी-३५६७
१४५. झारि झूरि मन कन तौ लै गए, बहुरि पयारहिं गाहत-४२२
१४६. तहनिनि की यह प्रकृति अनैसी थोरिहि बात खिसावैं-२१६
१४७. ता मुख सेमपात क्यों परसत, जा मुख खाये पान-४४४४
१४८. ताकै बड़ौ बड़ी सरनागत, बैर बड़ो सौं कीजै-३४४४
१४९. ताकौ कहा परेखौ कीजे, जानै छाछ न दूधौ-४५०८
१५०. तारी एक बजत कै दोऊ-२५७२
१५१. ताहि कैं हाथ निरमोल नग दीजियै जोइ नीकै परखि ताहि
१५२. तिनकौ कठिन करेजौ रे सखि जिनकौ पिय परदेस-३८४२
१५३. तुमसौं प्रेम कथा कौ कहिबौ, मानौ कटिबौं घास-४५७७
१५४. दई न जात खेवट उतराई चाहत चढ़न जहाज-१०८
१५५. दाई आगे पेट दुरावति-२३४१
१५६. दाख छांड़िकै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै-४२८२
१५७. दादुर बसें निकट कमलनि के जनम न रस पहिचानैं-४५७८
१५८. दियौं आपनौ लहै सोई-२४४९
१५९. दीरघ नदी नाव कागर की किहि देख्यौ चढ़ि जात-४५११
१६०. देखी सुनी न अब लगि कबहूँ जल मथि माखन आवै-४३१९
१६१. द्वै तरंग हो नाव पांव धरि ते कहि कौन न मूठे-४५०६
१६२. द्वै नृप लरत प्रजा इन्द्री गति, सूर कौन यह नीति-४६५६
१६३. धरनि पत्ता गिरि परे तैं, फिरि न लागै डारि-८८
१६४. धान कौ गांव पयार तैं जानौ ४२१८
१६५. धोयो चाहत भरौ पट जल सौं की रुचि नहिं मानो-१६४
१६६. धोखैं ही बिरवा लगाई कै काटत नाहिं बहोरी-३२१०
१६७. नवसै नदी चलति मरजादा सूधियै सिन्धु समानी-२१०
१६८. नाक बुद्धि तिय सबै कह्यौ री-७०८
१६९. नीम लगाइ आम को खावै-१५४२
१७०. नीर नारी नीच ही कौं चलै जैसैं धाइ-१८८९
१७१. पग तर जरत न जानै मूरख घर तजि धूर बुझावै-३५६
१७२. परम गंग को छाड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै-१६८
१७३. परी जो रेख ललाट-४२४२

१७४. पवन कहा परवत टरैं-२३४
१७५. पाटम्बर अम्बर तजि, गूदरि पहिराऊँ-१६६
१७६. पावैगो पुनि कियौ आपनौ-४२४६
१७७. पुरुष कौं रीसबै सोहैं-३७६८
१७८. पूरब कर्म लिखे बिधि अच्छर-४२७२
१७९. प्रेमकथा सोई पै जानै जापै बीती होई-४१६०
१८०. प्याले प्रान जाइ जौ जल बिनु पुनि कह कीजै सिन्धु अमीकौ-३३५६
१८१. बड़ी निदरै नाहिं काहूँ ओछोई इतराइ-१८६
१८२. बरु मरि जाइ चरै नहिं तिनुका सिंह को यहै स्वभाव रे-४२३४
१८३. बांह थकी बायसहिं उड़ावत-३८६१
१८४. बाजी तांति राग हम बूझौ-४२६८
१८५. बातई पै रहति कहन कौं सब जग जात काल की खाजी-३७५१
१८६. बारू बूँद कहा करै-बसीठि-३१८६
१८७. बालि छांड़िकै सूर हमारैं अब नरवाई को लुनै-४३५८
१८८. बिना जोर अपनी जांघनि के कैसैं सुख कीन्हौ तुम चाहत-३४३०
१८९. बिनु अपराध दास को त्रासैं कौं सब सोहै-३४४४
१९०. बिनु निज जंघहिं चलहिं लला रे-३४४६
१९१. बिनु ही भीत चित्र किन कीन्हौं किन नभ बाल्यौ भोरी-४१७१
१९२. बिरथ समय की हरत लकुटिया-३५९८
१९३. बिरह बिथा अंतर की बेदन सो जानै जिहिं होई-३९९८
१९४. बिष कौ कीट बिषहिं रुचि मानै, कहा सुधा रसहीं री-३५४२
१९५. बिषकौ बृच्छ बिषहिं फल फलिहैं-१५४२
१९६. बिष सुमेरु कछु काज न आवै अमृत एक कनी-२०७६
१९७. बीना नांद संगीत सुधानिधि-मूढ़हिं कहा सुनैयै-४४२८
१९८. बीस बिरियां चोर की तौ कबहुँ मिलिहै साहु-२३५९
१९९. बुध जन कहत दुबल घातक बिधि-४८५५
२००. बैंद आपैं भेद कैसौ ४४८३
२०१. बैरहिं पीठ न दीजै- ४४४
२०२. बोवत बुबुर दाख फल चाहत-६१
२०३. ब्यावर व्यथा न बंध्या जानै-४७१२
२०४. भई रीति हरि उरग छछूंदरि छाड़े बनै न खात-४३५७
२०५. भली अनभली करतूति संगतिहिं तैं-१९८१
२०६. भाग आपनौ अपने माथैं-१९६७
२०७. भाग बिना कछु नहीं पाइयै-२६४४
२०८. भामिनि और भुअंगिनि कारी इनके बिषहिं डरैयै ३४४४

२४३. सुधारस जिन स्वाद चाख्यौ तिन्हैं और न भावई-४४८३
२४४. सुनि सठ नीति सुरभि पै दायक क्यौं जु लेति हल भारी-४३६०
२४५. सुर सरिता जल होम किये तैं कहा अगिनि सचु पायौ-४३६१
२४६. सूर अनल कर जो गहै डाढ़ै पुनि सोई-२८६१
२४७. सूर इतर ऊसर के बरषैं थोरैहिं जल इतरानी-३२१०
२४८. सूर करम की रेख मिटै नहिं—४०५८
२४९. सूर कहाँ ऐसौ को त्रिभुवन आवै सिन्धु थहाइ-२९२६
२५०. सूर गढ़ी जोरी बिधना की जैसी तैसी ताहि-१८६७
२५१. सूर ग्रहन देखै बिनु भोर-३२९९
२५२. सूरजदास दिगम्बरपुर तैं रजक कहा ब्यौसाइ-४५७५
२५३. सूरजदास पपीहा कै मुख कैसें सिन्धु समाइ-३३९१
२५४. सूरदास कंचन अरु कांचहिं एकहिं धगा पिरायौ-४३
२५५. सूरदास इन्द्र सदन मैं पैठ्यौ बड़ौ भुजंग-३०२८
२५६. सूरदास कारी कामरि पै चढ़त न दूजौ रङ्ग-३३
२५७. सूरदास कहा लै कीजै थाहिल नदिया नाव रे-४२३४
२५८. सूरदास कहु कैसें निबहै एक ओर को नेहा-३८४७
२५९. सूरदास कहुँ सुनी न देखीपोत सूतरी पोहत-.३०८
२६०. सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ-४७
१६१. सूरदास की भली बनी है गजी गई अरु पौ-१५१
२६२. सूरदास गथ खोटौं काहै पारखि दोष धरे-२९५८
२६३. सूरदास गोपाल छाँड़ि को चूसै टैंटा खारे-४१९७
२६४. सूरदास जिहि सब जग डहक्यौ ते उनको डहँकात-४६७०
२६५. सूरदास जे मन के खोटे अवसर परें जाहिं पहिचाने-४३६९
२६६. सूरदास जे रङ्गी स्याम रंग फिरि न चढ़ै रंग यातैं-४१६५
२६७. सूरदास तिल तेल सवादी कहा जानै घृत हौं री-२५४१
२६८. सूरदास तिहिं बनिक कौन गुन मूलहुँ माँझ गंवाये-४४०९
२६९. सूरदास तीनौ नहिं उपजत धनिया, धान, कुम्हाड़े-४२२२
२७०. सूरदास प्रभु ऊख छांड़िकै चतुर चचोरत आग-४२७०, ४३५१
२७१. सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै-१६८
२७२. सूरदास प्रभु दुरत दुराए डुगरनि ओट सुमेरु-२०७६
२७३. सूरदास प्रभु सीरव बतावैं सहद लाइ कै चाटौ-४५४४
२७४. सूरदास मानिक परिहरि कै छार गाठि कौ बाँधै-४५१३
२७५. सूरदास मुक्ताहल भोगी हंस ज्वारि क्यौं चुनिहै-४१७०
२७६ सूरदास सिर देत सूरमा सोइ जानैं ब्यौहार-३८००

२७७. सूरदास सो समाइ कहाँ लौ छेरी बदन कुम्हैड़ो-४५४३
२७८. सूर परेखो काको कीजै बाप कियौजिन दूजौ-४२६८
२७९. सूर भले को भलो होइगौ-२८७२
२८०. सूर मिलै मन जाहिसौं ताकौ कहा करै काजी-३७६५
२८१. सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ-४५०८
२८२. सूर सब दिन चोर कौ कहुँ होत है निरबाहु- ३५९
२८३. सूर सु औषध हमैं बतावहु पितजुर ऊपर गुरसी-४४०६
२८४. सूर सुकत हठि नाव चलावत ने सरिता है सूखी-४१७५
२८५. सूर सुगन्ध चुरावन हारो कैसैं दुरत दुरायौ-२३१३
२८६. सूर सुजीवन सफल दसौ दिसि वैरी बस करि जौ जग जीo
२८७. सूर सु बहुत कहे न रहै रस गूलर कौ फल फोरे-४२१८
२८८. सूर सु वैद कहा लै कीजै कहैं न जानै रोग-४२०८
२८९. सूर सुमेरु समाइ कहा लौं बुधि बासनी पुरानी-२४०२
२९०. सूर स्वभाव परैयौ जिहि जैसो सो वैसैं बिसरावत-४१४३
२९१. सूर स्वान के पालनहारैं आवति है नित गारि-१५०
२९२. सूर स्याम वैसेहिं चलौ, ज्यौं चलत तुम्हारो बाप-२१२५
२९३. सेवक जूझि मरै रन भीतर ठाकुर तउ घर आवै-५९८
२९४. सोइ अति रूप सुलच्छनि नारी रीझैं जाहि भावतौ जी कौ
२९५. सो को जो अपने सुख खैहै मीठे तजि फल खारे-४१४५
२९६. स्वाति बूंद इक सीप सु मोती बिष भयौ कदली पात-३९०२
२९७. स्वान पूंछ कोउ कोटिक लागै सूधी कहुँ न करी-४१४४
२९८. स्याम रूप अवगाह सिंधु तैं पार होत चढ़ि डोगनिकेरैं-२४०
२९९. हम गयंद उतरि कहा गर्दभ चढ़ि धाऊँ-१६६
३०० हम तन हेरि चितै अपनौ पट, देखि पसारहिं लात-८५११
३०१. हानि लाभ काकौं कहियतु है लोभ सदा जिय मैं जिनकैं-३०१
३०२. होत दिन चा र चाव री-८२१५
३० . होनहारी होइहै सोइ-३७५६
३०४. ह्वै गज चल्यौं स्वान की चालहिं-७४
३०५ ह्वै बो सु होई कर्मबस-४१८२

(घ) सूरसागर में शकुन-विचार

शुभ शकुन

(१) कुच, भुज, नेत्रों का फड़कना ४८६४, ४८६५
(२) कौवे का उड़ाने पर उड़ जाना ६०८, ४०७१, ४८७४, ४०७०
(३) कौओं का बोलना ४८६४, ३६०१
(४) दाहिनी ओर मृगपंक्ति देखना ३५६२, ३५६३, ३५६४
(५) भुजा फड़कना ४०७२

अशुभ शकुन

(१) कुत्ते का द्वार पर कान पटकना ११५६
(२) कौवे का रात में बोलना २८६
(३) गरुड़ पक्षी का लड़ना ११५६
(४) घोड़ों का रोना २८६
(५) छींक होना ११५८, ११६०, १२०७, १२१३, २१००
(६) दाहिने गधा बोलना ११५८
(७) परिवा का प्रस्थान ४४४६
(८) पीपल का पेड़ बाएँ पड़ना २१०६
(९) बायें की छींक ११४२, ११५६
(१०) बायें कौवा बोलना ११५८
(११) बिल्ली का आगे से निकलना ११५८, ११६०
(१२) बिल्ली का रास्ता काटना १२०७
(१३) बैल का रोना २८६
(१४) बुरी चीजों का सुबह नाम लेना २५४४
(१५) माथे पर से कौवा का उड़ जाना ११५६
(१६) भद्रा, भरणी में चलना ४४४६
(१७) मेष राशि में चलना ४४४६
(१८) हाथी का रोना २८६
(१९) सियार का दिन में बोलना २८६

(ङ) सूरसागर में सूक्ष्म अलंकार

(१) आंचल से पुष्प दिखाना-३२२०,३२२१
(२) कमल को गले लगाना-२४६६
(३) चरण छूकर आँखों से लगाना-२४९७,२५००
(४) चन्द्रमा की ओर देखना-३२२१
(५) तृन चीर कर दिखाना-४८३३
(६) तृन तोड़ना-३२२०,३२ १
(७) पाग मसकना-२४९६,२४९७,२५००
(८) बेंदी सँवारना २४९६, २४९७, २५००
(९) भुजाओं के द्वारा गोद भरना-२४९७
(१०) भूमि पर तीन रेखा खीचना-३२२१
(११) मुख में अंगुली डालना-३२२१
(१२) हाथ के कमल को हृदय पर रखना-२४९६,२५००
(१३) हाथ के कमल को अधर से छुआना-२४९७
(१४) हाथ से सिर छूना-३२२०,३२२१

सहायक ग्रन्थों की सूची

ग्रन्थ	लेखक / प्रकाशक
अष्ट छाप और बल्लभ सम्प्रदाय	—डॉ० दीनदयाल गुप्त हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० २००४
अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डॉ० मायारानी टन्डन —हिन्दी साहित्य भंडार,लखनऊ,सन् १९६०
आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान	डॉ० जगदीश नारायण त्रिपाठी अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, सन् १९६२
आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य	डॉ० रामेश्वर लाल खन्डेलवाल —नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
काव्य दर्पण	—पं० राम दहिन मिश्र ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, सन् १९४७
काव्य में अप्रस्तुत योजना	—पं० राम दहिन मिश्र ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, सं० २००५
कूटकाव्य-एक अध्ययन	—डॉ० रामधन शर्मा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् १९६३
कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत	—डॉ० श्यामसुन्दर लाल दीक्षित विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९५८
खड़ी बोली काव्य में अभिव्यन्जना	—डॉ० आशा गुप्त नेशनल पब्लिसिंग हाउस,दिल्ली, सन् १९६१
गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	—डॉ० जगदीश गुप्त हिन्दी परिषद्,प्रयाग वि०विद्यालय,सन् १९५८
जायसी ग्रन्थावली	—श्री रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००६
तुलसी शब्द-सागर	—डॉ० भोलानाथ तिवारी हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, सन् १९५४
प्रबोध चन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परम्परा	—डॉ० श्रीमती सरोज अग्रवाल हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९६२
ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास	—प्रभुदयाल मीतल राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६६
ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प	डॉ० सावित्री सिन्हा नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली सन् १९६१
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका	प्रभुदयाल मित्तल

भेद	अग्रवाल प्रेस, मथुरा, सं० २००७
ब्रजभाषा सूर-कोष	प्रेमनारायण टन्डन लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २००७
भारतीय साधना और सूर साहित्य	डॉ० मुन्शीराम शर्मा आचार्य शुक्ल, साधना-सदन-कानपुर सं २०१०
भ्रमरगीत-सार	—रामचन्द्र शुक्ल साहित्य सेवासदन, काशी, सं० १९८८
भ्रमरगीत सार (व्याख्या और विवेचन)	डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९५५
भ्रमरगीत सार-समीक्षा एवं व्याख्या	प्रो० पुष्पपाल सिंह अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६१
मुहावरा मीमांसा	—डॉ० ओम प्रकाश गुप्त बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना सन् १९६०
रस-मीमांसा	—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २००६
राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन	डॉ० कन्हैया सहल भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली,सन् १९५८
सूर और उनका साहित्य	—डॉ० हरवंश लाल शर्मा भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, सं० २०१५
सूर का श्रृंगार-वर्णन	—डॉ० रमाशंकर तिवारी अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सन् १९६६
सूर की काव्य कला	—डॉ० मनमोहन गौतम भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली,सन् १९५८
सूर की झाँकी	—डॉ० सत्येन्द्र शिवलाल अग्रवाल एन्ड कम्पनी आगरा सन् १९ ६
सूर की भाषा	—डॉ० प्रेमनारायण टण्डन हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, सन् १९५७
सूर के सौ कूट	—चुन्नीलाल 'शेष' अशोक प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६१
सूरदास	—डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा हिन्दी परिषद प्रयाग वि०विद्यालय,सन् १९५९
सूरदास और उनका भ्रमरगीत	दामोदर प्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, सन् १९६३

सूरदास का काव्य-वैभव —डॉ० मुन्शीराम शर्मा
ग्रंथम, कानपुर सन् १९६५

सूर-निर्णय —द्वारिका प्रसाद परीख और प्रभुदयालमीतल
अग्रवाल प्रेस, मथुरा सं० २००८

हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य —डॉ० ओम प्रकाश
—भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली सन् १९५७

हिन्दी काव्य में अन्योक्ति —डॉ० संसारचन्द्र
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् १९६०

हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा डॉ० स्नेहलता श्रीवास्तव
—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

अंग्रेजी ग्रन्थ

History of Sanskrit Poetics —P. V. Kane
Motilal Banarsidass, Delhi, 1961

Philosophy of Poetry (Kavya Tatsva Samiksha) —Narendra Nath Chaudhary.
—Motilal Banarsidass, Delhi,

Similes in Manusmrti —Dr. M. D. Paradkar
Motilal Banarsidass, Delhi, 1960

Similes of Kalidas —K. C. Pillai
Visva-Bharti Grandhama, Calcuta, 1945

Some concepts of Alankara-Sastra. V. Raghavan.
The Adyar Literary, Adyar, 1942

Some Problems of Sanskrit-Poetics —S.K.De
Firm K. L. Mukhopdhay, Calcutta, 1959

पत्र-पत्रिकाएँ-हिन्दी

अजन्ता —वर्ष ८, अंक १२, दिसम्बर १९५६, पृ० ४३
वेदों और उपनिषदों की रूपक शैली का महाभारत और पुराणों पर प्रभाव-रूपनारायण शास्त्री।
वर्ष ९, अंक ६, जून १९५७, पृ० १७
कमल-एक आदिपुष्प—कृष्णकुमार

अवन्तिका —वर्ष २, अंक १ (काव्यालोचनांक) जनवरी १९५४, पृ० ८३
साधर्म्य अथवा उपमा—ओमप्रकाश

	वर्ष २, अंक ३, मार्च १९५४, पृ० १०
	सौन्दर्य की उपयोगिता—डॉ० रामविलास
आजकल	—वर्ष ९, अंक १, मई १९५३, पृ० १४
	वैदिक कविता—वासुदेव शरण अग्रवाल
आलोचना	—वर्ष २, अंक ३, अप्रैल १९५२, पृ० १०
	भारतीय सौंदर्य चिन्तन का क्रमिक विकास —डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा
	वर्ष ५, अंक ३, अप्रैल १९५७ पृ० २४
	काव्य में प्रतीक विधान—डॉ० रामअवध द्विवेदी
कल्पना	—वर्ष ३, अंक १०, अक्टूबर १९५२, पृ० ९९३
	साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य की समस्या—नामवर सिंह
	वर्ष ५, अंक ९, सितम्बर १९५४, पृ० ९
	सिद्ध साहित्य के प्रतीकों का उद्गम—डॉ० धर्मवीर भारतीय
चांद	—वर्ष ५, खंड १, नवम्बर-अप्रैल १९३६-३७, पृ० ६७
	काव्य में अस्पष्टता तथा रूपकरस—श्री इलाचन्द्र जोशी
नईधारा	—वर्ष ४, अंक ४, जुलाई १९५३, पृ० ३
	रवि बाबू की कला का लोकवादी स्वरूप—ज्वालाप्रसाद सिंह
नयापथ	—वर्ष ४, अंक २-३, दिस०-जन० १९५६-५७ (लोक-साहित्य विशेषांक) पृ० ११३
	महामहिम लोकजीवन—वासुदेवशरण अग्रवाल
नागरी प्रचारिणी	—भाग १२, अंक १, सं० १९८८, पृ० १४७
पत्रिका	तुलसी का अलंकार-विधान—श्री मोहन वल्लभ पन्त
माधुरी	—वर्ष २, खंड १, अगस्त-जनवरी १९२३-२४, पृ० ७२
	तुलसीदास की उपमाएँ—अयोध्या सिंह उपाध्याय
	वर्ष १५ खंड १, अगस्त १९३६, पृ० ३
	अलंकारों का क्रम-विकास—कन्हैयालाल पोद्दार
राष्ट्र-भारती	—वर्ष ८, अंक ९, सितम्बर १९५८, पृ० ५७५
	उपमा कालिदासस्य—श्री बलदेव प्रसाद मिश्र
ब्रज-भारती	—वर्ष १२, सं० २-३, सं० २००१, पृ० ३५
	सूर का काव्य सौंदर्य—श्री गंगा प्रसाद
विशाल भारत	—भाग ३२, जुलाई १९४३, पृ० ३८
	ऋग्वेद का काव्य—श्री यशवन्त सिंह नेगी
	भाग ४२, नवम्बर १९४८, पृ० २७९
	महाकवि कालिदास की कुछ उपमाएँ रामप्रसाद दुबे

भाग ६१, फरवरी १९५८, पृ० १५५
सौंदर्य-एक विश्लेषण-गोपालजी
भाग ६०, अगस्त १९५८, पृ० ६७
ब्रज संस्कृति की विशेषताएँ—श्रीराम शर्मा
भाग ७३, दिसम्बर १९६१, पृ० ६१
ऋग्वेद की सौंदर्य-प्रतिमा-उषस्—महावीर प्रसाद लखेड़ा
—वर्ष ७, भाग १३, जन०-जून १९४७, पृ० १७
जायसी का नखशिख वर्णन—कमलकुलश्रेष्ठ
वर्ष ६, भाग १८, जुलाई १९४६, पृ० २७१
ब्रज साहित्य—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल
—वर्ष १५, संख्या ८, अगस्त-सितम्बर १९४७, पृ० ७७
कहावतें—श्री श्याम परमार
—वर्ष ६, अंक ८, जून १९३६, पृ० २०७
वैदिक साहित्य में काव्य सौन्दर्य—प्रो० सूर्यकिरण पारीक
वर्ष २७, अंक ६, जुलाई १९५४ पृ० ५०८
सूर की काव्य-सुषमा—कालिका प्रसाद दीक्षित
वर्ष ३०, अंक १०, अगस्त १९५७, पृ० ४८१
सूर और लोकचेतना—प्रो० देवेन्द्र कुमार
—भाग २६, संख्या ८, ६, सं० १९९५, पृ० १
सूर का शृंगार—श्री गौरीशंकर त्रिपाठी
भाग ४६, संख्या १, शक १८८१, पृ० ९२
सौन्दर्य की नवीन भूमिका—डॉ० रामानन्द तिवारी
—भाग ५४, खंड १, जून १९५३, पृ० ३७४
सौंदर्य पर भारतीय दृष्टिकोण—पं० रामप्रिय देव भट्ट
भाग ५६, खण्ड १, मई १९५५, पृ० ३२६
सूर का काव्य-सौष्ठव—सीतला प्रसाद मिश्र
—वर्ष १, अंक २, १९५२-५३, पृ० ४७
सूर की सरसता—प्रो० गोपीनाथ तिवारी
वर्ष २, अंक ३, १९५३, पृ० १०८
सूर की सामाजिकता—श्री कैलाशचन्द्र
—वर्ष १०, अंक ३, अक्टूबर १९५६, पृ० ६
पाश्चात्य सौंदर्य-चिन्तन—प्रो० कुमार विमल
—भाग ४, अंक ७, मार्च १९४१, पृ० ३२५
सूर का वियोग शृ   श्री

भाग ७, अंक १२, मार्च १९४६, पृ० ४३०
भ्रमरगीत सम्बन्धी कुछ बातें—शिवनारायण शर्मा

सुधा —भाग १, खंड २, जुलाई १९२८, पृ० ५७०
मैथिल कवि विद्यापति और उनका कवित्व—परशुराम चतुर्वेदी

हंस —वर्ष ६, अंक २, नवम्बर १९३५, पृ० २
काव्य और कला—जयशंकर प्रसाद

हिन्दी अनुशीलन —वर्ष ३, अंक २, सं० २००७, पृ० १
सूफियों की अलंकार योजना—श्री ओम प्रकाश
वर्ष ४, अंक २, सं० २००८, पृ० ९
वैष्णव काव्य में दृष्टकूट का प्रयोग—श्री हरिमोहन दास जीटंडन

हिन्दुस्तानी —भाग ४, अंक १, सन् १९३४, पृ० २२१
सूरसागर और भागवत—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
भाग १४, अंक ३, सन् १९४४, पृ० १५५
कवि और काव्य—डॉ० उमेश मिश्र

पत्र-पत्रिकाएँ-अंग्रेजी

1. All India Oriental Conference.

   Volume XII-Summaries-1943-44, page-75

   Epic Similies—S. N. Gagendragadkar.

2. Bulletin of the School of Oriental studies Lo ndon Institute.

   Volume I-1917, page 87

   The Populas Literature of Northern India—Sir George A.

3. Journal of Asiatic Society of Bengal.

   Volume 38-1869, page 1

   Notes on Prithiraj Raso—F. S. Grose.

4. Journal of the Bihar and Orissa Research Society.

   Volume 2, 1916, Page-179

   Kalidas-Mahamahopadhyay Har Prasad Shastri.

5. Journal of the Department of Letters.

   Volume XVII-1923, Page-198

   Kabir-Rai Bhadur Lala Sitaram.

6. Journal of the Oriental Research Madras.

   Volume 6, 1932, Page-83

   Definition of Poetry or Kavya—D. T. Tatacharya.

   Volume 3, 1929, Page 292.

   Studies in Imagery of the Ramayana—Prof. K. A. Subrah many

   Volume 18, 1950, Page 157.

   The Ramayana—T. R. Venkatarama Shastri.

7. Journal of the Aesthetics and Art Criticism.

   Volume 12-1953-54-Page 83

   Sex and H beauty Hugo G Beige

8. The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireand.

1932, Page 345
The Usas Hymns of the Rigveda—A. A. Macdonell.

9. The Visva-Bharti Quarterly.

Volume-1-1935-Page 63
The similes of Dharmadasa—Vidhushekhara Bhattachayarya.